।। पूर्ण परमात्मने नमः।।

श्रीमद्भगवत् गीता

गीता तेरा ज्ञान अमृत

जीव हमारी जाति है, मानव (Mankind) धर्म हमारा।
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।

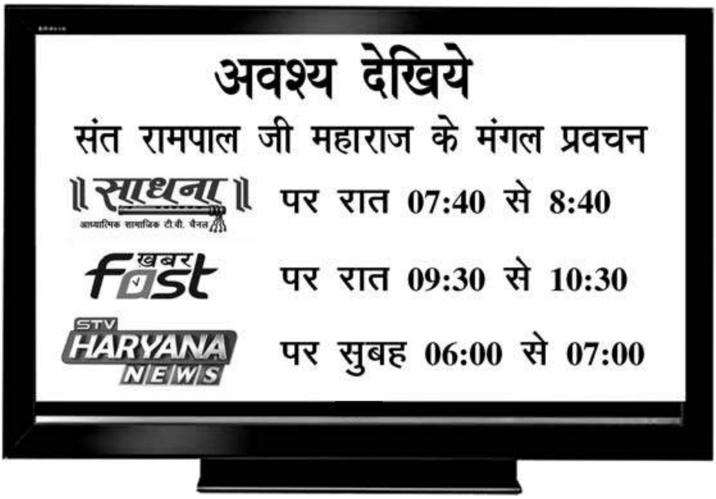

कुल लागत - 98 रूपये

धर्मार्थ मूल्य - 30 रूपये

लेखक :- संत रामपाल जी महाराज

प्रकाशक :- प्रचार प्रसार समीति तथा सर्व संगत
सतलोक आश्रम, हिसार-टोहाना रोड़ बरवाला
जिला-हिसार (प्रान्त-हरियाणा) भारत।

मुद्रक :- कबीर प्रिंटर्स
C-117, सैक्टर-3, बवाना इन्डस्ट्रियल ऐरिया, नई दिल्ली।

सम्पर्क सूत्र :- 08222880541, 08222880542, 08222880543
08222880544, 08222880545

e-mail :- jagatgururampalji@yahoo.com
visit us at :- www.jagatgururampalji.org

विषय सूची

क्रम सं.	विवरण	पष्ठ सँख्या
1.	भूमिका	I-III
2.	दो शब्द	1
	● मक्का महादेव का मंदिर है	8
3.	गीता का सत्य सार	10
	● श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी के माता-पिता कौन हैं?	14
4.	शंका समाधान	17
	● गीता में दो प्रकार का ज्ञान है	44
	● पांडवों द्वारा की गई यज्ञ	44
	● किस-किसको मिला परमात्मा?	57
	● व्रत करना गीतानुसार कैसा है?	61
	● श्राद्ध-पिण्डदान गीतानुसार कैसा है?	61
	● श्राद्ध-पिण्डदान के प्रति रूची ऋषि का मत	61
	● जिंदा बाबा का दूसरी बार अन्तर्ध्यान होना	68
	● धर्मदास जी की अन्य संतों से ज्ञान चर्चा	70
	● हरण्यकशिपु की कथा	80
	● रावण तथा भस्मासुर की कथा	80
	● हरिद्वार में साधुओं का कत्लेआम	81
	● ऋषि चुणक तथा मानधाता की कथा	83
	● चौरासी लाख प्रकार के जीवों से मानव देह उत्तम है	90
	● कथनी और करनी में अन्तर	96
	● धर्मदास जी को सतलोक में ले जाना	99
	● क्या गुरू बदल सकते हैं?	102
5.	वेद मंत्रों की फोटोकापियाँ (प्रमाण सहित)	104
6.	संक्षिप्त सष्टि रचना	120
	● हम काल के लोक में कैसे आए?	122
	● श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शंकर जी की उत्पत्ति	126
7.	सम्पूर्ण सष्टि रचना	130
	● आत्माएं काल के जाल में कैसे फँसी?	133

- श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शंकर जी की उत्पत्ति 137
- तीनों गुण क्या हैं? प्रमाण सहित 139
- काल (ब्रह्म) की अव्यक्त रहने की प्रतिज्ञा 140
- ब्रह्मा का अपने पिता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न 142
- माता (दुर्गा) द्वारा ब्रह्मा को श्राप देना 143
- विष्णु का अपने पिता की प्राप्ति के लिए प्रस्थान व माता का आशीर्वाद पाना 144
- परब्रह्म के सात शंख ब्रह्माण्डों की स्थापना 151
- पवित्र अथर्ववेद में सृष्टि रचना का प्रमाण 154
- पवित्र ऋग्वेद में सृष्टि रचना का प्रमाण 160
- पवित्र श्रीमद् देवी महापुराण में सृष्टि रचना का प्रमाण 165
- पवित्र शिव महापुराण में सृष्टि रचना का प्रमाण 167
- श्रीमद्भगवत गीता जी में सृष्टि रचना का प्रमाण 168
- पवित्र बाईबल पवित्र कुरान शरीफ में सृष्टि रचना का प्रमाण 171
- पूज्य कबीर परमेश्वर (कविर् देव) जी की अमृतवाणी में सृष्टि रचना का प्रमाण 172
- आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमृतवाणी में सृष्टि रचना का प्रमाण 175
- आदरणीय नानक साहेब जी की अमृतवाणी में सृष्टि रचना का प्रमाण 182
- अन्य संतों द्वारा सृष्टि रचना की दन्त कथा 186

8. ''शास्त्रों में परमात्मा'' 188

- माँस खाना बाईबल में निषेध 189
- हजरत मुहम्मद जी माँस नहीं खाते थे 194
- संत जम्भेश्वर महाराज जी के विचार 195
- ''परमात्मा साकार है'' यह निष्कर्ष है सर्व सद्ग्रन्थों तथा परमात्मा प्राप्त संतों का 201
- बिश्नोई धर्म की भक्ति 202
- सतगुरू से दीक्षा लेकर भक्ति करें 202
- हरियाणा में हरि आऐंगे 203

9. इसी पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमृत'' से संबंधित श्रीमद्भगवत गीता के श्लोकों की फोटोकापियाँ 204

भूमिका

''गीता'' एक पवित्र सत्य ग्रन्थ है जो अध्यात्म ज्ञान का कोष है। इसे वर्तमान में हिन्दुओं के ग्रन्थ के नाम से जाना जाता है। वास्तव में पवित्र गीता विश्व का ग्रन्थ है। इसकी उत्पत्ति आज सन् 2012 से लगभग 5550 (पाँच हजार पाँच सौ पचास) वर्ष पूर्व महाभारत के युद्ध के समय हुई थी। उस समय कोई धर्म नहीं था। एक सनातन पंथ था यानि मानव धर्म था। शब्द खण्ड नहीं होता। यह उन पुण्यात्माओं के मस्तिष्क रूपी वॉट्सऐप (WhatsApp) में पहुँच जाता है जिनका नेटवर्क सही होता है। यह महर्षि व्यास जी (श्री कष्ण द्वैपायन) के मस्तिष्क रूपी WhatsApp में लोड हो गया था। उसी से श्री वेद व्यास जी ने पवित्र ''श्रीमद्भगवत गीता'' को कागज पर लिखा या ताड़ वक्ष के पत्तों पर खोदा जो आज अपने पास पवित्र गीता उपलब्ध है। गीता शास्त्र में कुल 18 (अठारह) अध्याय तथा 700 (सात सौ) श्लोक हैं। मैंने इस पवित्र पुस्तक से आवश्यकता अनुसार विवरण लेकर ग्रन्थ ''गीता तेरा ज्ञान अमत'' की रचना की है। जैसे वन (Forest) में जड़ी-बूटियाँ होती हैं। वैद्य उस वन से आवश्यक जड़ी निकाल लेता है। उससे जीवनदायनी औषधि तैयार कर लेता है। वन फिर भी विद्यमान रहता है।

इसी प्रकार पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमत'' एक औषधि जानें और इसको पढ़कर ज्ञान की घूँट पीकर अपना जरा-मरण का रोग नाश करायें।

अध्यात्म ज्ञान के बिना मनुष्य जीवन अधूरा है। यदि किसी के पास अरबों-खरबों की सम्पत्ति है, फिर भी वह अपने जीवन में कुछ कमी महसूस करता है। उसकी पूर्ति के लिये मनुष्य पर्यटक स्थलों पर जाता है। उस समय उसको कुछ अच्छा लगता है परन्तु उससे पूरा जीवन अच्छा नहीं हो सकता, न ही इससे आत्मकल्याण हो सकता। दो-तीन दिन के पश्चात् पुनः वही दिनचर्या प्रारम्भ हो जाती है। फिर भी कुछ अधूरा-सा लगता है। वह कमी परमात्मा की भक्ति की है। उसकी पूर्ति के लिए विश्व का धार्मिक मानव अपनी परंपरागत साधना करता है। यदि उस साधक की वह साधना शास्त्रों के अनुकूल है तो लाभ होगा। यदि शास्त्रविधि को त्यागकर मनमाना आचरण अर्थात् मनमानी साधना करते हैं तो वह गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 के अनुसार व्यर्थ है। न साधक को सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि प्राप्त होती है, न परम गति प्राप्त होती है अर्थात् व्यर्थ साधना है। कुछ श्रद्धालु किसी गुरू से दीक्षा लेकर भक्ति करते हैं। यदि गुरू पूर्ण है तो लाभ होगा नहीं तो वह साधना भी व्यर्थ है।

आप जी को इस पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमत'' में जानने को मिलेगा कि प्रमाणित शास्त्र कौन से हैं जिनके अनुसार साधना करें? शास्त्रविधि अनुसार

साधना कौन सी है? उस साधना को करने की विधि क्या है, किस महात्मा से प्राप्त होगी, पूर्ण गुरू की क्या पहचान है?, वह भी इसी पुस्तक में पढ़ेंगे।

यह पुस्तक विश्व के मानव को एक करेगी जो धर्मों में बँटकर आपस में लड़-लड़कर मर रहा है। गीता शास्त्र किसी धर्म विशेष का नहीं है। यह तो मानव कल्याण के लिए उस समय प्रदान किया गया था जब कोई धर्म नहीं था, केवल ''मानव'' धर्म था। मेरा नारा है :-

जीव हमारी जाति है, मानव (Mankind) धर्म हमारा।
हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।

जैसे बाबा नानक जी का जन्म पवित्र हिन्दू धर्म में श्री कालूराम मेहता के घर खत्री (अरोड़ा) कुल में हुआ था। श्री ब्रजलाल पांडे से श्री नानक देव जी ने गीता का ज्ञान समझा और उनके द्वारा बताई भक्ति कर रहे थे। श्री विष्णु तथा श्री शंकर जी की पूजा करते थे। अन्य सर्व देवों की भी भक्ति करते थे जो हिन्दू धर्म में वर्तमान में चल रही है। श्री नानक जी सुल्तानपुर शहर में वहाँ के नवाब के यहाँ मोदीखाने में नौकरी करते थे। शहर से लगभग आधा-एक कि.मी. दूर बेई नदी बहती थी। प्रतिदिन श्री नानक देव साहेब जी उस दरिया में स्नान करने जाते थे। परमात्मा अच्छी आत्माओं को जो दृढ़ भक्त होते हैं, उनको मिलता है। अधिक प्रमाण आप जी इसी पुस्तक में पढ़ेंगे। उसी विधान अनुसार परमात्मा श्री नानक देव साहेब जी को मिले। उनको तत्वज्ञान बताया। सत्य साधना जो शास्त्रानुकूल है, उसका ज्ञान कराया। श्री नानक देव जी की संतुष्टि के लिए उनको अपने साथ ऊपर अपने शाश्वत् स्थान अर्थात् सच्चखण्ड में लेकर गए। सर्व ब्रह्माण्डों का भ्रमण कराकर यथार्थ भक्तिविधि बताकर "सनातन भक्ति" को पुनः स्थापित करने का आदेश दिया। तीन दिन पश्चात् श्री नानक जी को वापिस जमीन पर छोड़ा। उसके पश्चात् श्री नानक जी ने हिन्दू धर्म में चल रहा मनमाना आचरण बंद करके गीता (सप्तश्लोकी गीता) शास्त्र अनुसार साधना का प्रचार करके यथार्थ भक्ति का प्रचार किया।

परमात्मा की सत्य साधना करने के लिए सर्वप्रथम ''गुरू'' का होना अति अनिवार्य है। इसी का पालन करते हुए श्री नानक जी ने ''शिष्य'' बनाने शुरू किए, स्वयं वे गुरू पद पर विराजमान थे। श्री नानक जी के शिष्यों को (पंजाबी भाषा में) सिक्ख कहते हैं। जिस कारण से उनकी अलग पहचान बन गई और वर्तमान में उन अनुयाईयों के समूह ने धर्म का रूप ले लिया। हिन्दू तथा सिक्ख आपस में धर्म के नाम पर लड़-मरते हैं, यह विवेक की कमी है।

विवेचन :- भक्ति कोई करो, उसको गुरू बनाना आवश्यक है। गुरू भी वक्त गुरू हो जो अपने मुख कमल से तत्वज्ञान तथा साधना विधि बताए। गुरू शरीर का ही नाम नहीं है। उस शरीर में जो आत्मा है, वह गुरू है। शरीर पाँच तत्व

का हो या इलैक्ट्रोनिक (Video) का हो, वह वक्त गुरू कहा जाता है। हिन्दुओं में अधिकतर बिना गुरू के ही अपनी परंपरागत साधना करते हैं। उसी बिगड़े रूप को श्री नानक जी ने परमात्मा से प्राप्त ज्ञान से ठीक किया था। वर्तमान में सिक्खों में भी वक्त गुरू का अभाव है। जैसे सूक्ष्म वेद में कहा है (सूक्ष्म वेद क्या है, यह आप इसी पुस्तक से जानें) कि :-

राम–कृष्ण से कौन बड़ा, उन्होंने ने भी गुरू कीन्ह।
तीन लोक के वे धनी, गुरू आगे आधीन।।

भावार्थ :- जो हिन्दू श्रद्धालु बिना गुरू के मनमाना आचरण करते हैं, उनको कहा है कि आप जी श्री राम तथा श्री कृष्ण जी से बड़ा तो किसी को नहीं मानते हो। वे तीन लोक के धनी अर्थात् मालिक होते हुए भी गुरू धारण करके भक्ति किया करते थे तथा अपने-अपने गुरूदेव के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया करते थे। {श्री रामचन्द्र जी के गुरू जी ऋषि वशिष्ठ जी थे तथा श्री कृष्ण चन्द्र जी के गुरू जी ऋषि दुर्वासा जी थे। संदीपनी ऋषि तो अक्षर ज्ञान कराने वाले अध्यापक थे। ऋषि दुर्वासा जी आध्यात्मिक गुरू श्री कृष्ण जी के थे।} आप की क्या बुनियाद है, आप बिना गुरू के भक्ति करके कल्याण चाहते हैं। सूक्ष्मवेद में फिर कहा है :-

कबीर, गुरू बिन माला फेरते, गुरू बिन देते दान।
गुरू बिन दोनों निष्फल हैं, भावें पूछो वेद पुराण।।

इस पुस्तक में आप जी को और भी अनेक भक्ति के गुर मिलेंगे तथा यथार्थ अध्यात्म ज्ञान व साधना की भी जानकारी होगी। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक मानव कल्याण करेगी। मेरी परमेश्वर से विनय है कि हे परमात्मा! मुझ दास के इस प्रयत्न को सफल करना। सर्व प्राणी आप जी के बच्चे हैं, आप जी की आत्मा हैं। इनको यथार्थ भक्ति मार्ग समझ में आए और सर्व मानव अपना जीवन धन्य बनाऐं। विश्व में शान्ति हो।

''सत्य साहिब''

दिनाँक - 08-09-2012 **लेखक**

संत रामपाल दास महाराज
सतलोक आश्रम बरवाला, हरियाणा (भारत)।

दो शब्द

जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा।
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।

श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान जिस समय (सन् 2012 से लगभग 5550 वर्ष पूर्व) बोला गया, उस समय कोई धर्म नहीं था। हिन्दू धर्म यानि आदि शंकराचार्य द्वारा चलाई गई पाँच देव उपासना वाली परंपरा को अपनाने वाले हिन्दू कहे जाने लगे। (वास्तव में यह सनातन पंथ है जो लाखों वर्षों से चला आ रहा है।) उस (हिन्दू धर्म) की स्थापना आदि (प्रथम) शंकराचार्य जी ने सन् 2012 से 2500 वर्ष पूर्व की थी। आदि शंकराचार्य जी का जन्म ईसा मसीह से 508 वर्ष पूर्व हुआ था। आठ वर्ष की आयु में उन्हें उपनिषदों का ज्ञान हो गया। सोलह वर्ष की आयु में आदि शंकराचार्य जी ने एक विरक्त साधु से दीक्षा ली जो गुफा में रहता था। कई-कई दिन बाहर नहीं निकलता था। उस महात्मा ने आदि शंकराचार्य जी को बताया कि ''जीव ही ब्रह्म है।'' (अयम् आत्मा ब्रह्म) का पाठ पढ़ाया तथा चारों वेदों में यही प्रमाण बताया। लोगों ने आदि शंकराचार्य जी से पूछा कि यदि जीव ही ब्रह्म है तो पूजा की क्या आवश्यकता है? आप भी ब्रह्म, हम भी ब्रह्म (ब्रह्म का अर्थ परमात्मा) इस प्रश्न से आदि शंकराचार्य जी असमंजस में पड़ गए। आदि शंकराचार्य जी ने अपने विवेक से कहा कि श्री विष्णु, श्री शंकर की भक्ति करो।

फिर पाँच देवताओं की उपासना का विधान दृढ़ किया - 1. श्री ब्रह्मा जी 2. श्री विष्णु जी 3. श्री शिव जी 4. श्री देवी जी 5. श्री गणेश जी। परंतु मूल रूप में इष्ट रूप में तमगुण शंकर जी को ही माना है। यह विधान आदि शंकराचार्य जी ने 20 वर्ष की आयु में बनाया अर्थात् 488 ईशा पूर्व हिन्दू धर्म की स्थापना की थी। उसके प्रचार के लिए भारत वर्ष में चारों दिशाओं में एक-एक शंकर मठ की स्थापना की। आदि शंकराचार्य जी ने 1. गिरी साधु बनाए जो पर्वतों में रहने वाली जनता में अपने धर्म को दृढ़ करते थे। 2. पुरी साधु बनाए जो गाँव-2 में जाकर अपने धर्म को बताकर क्रिया कराते थे। 3. सन्यासी साधु बनाए जो विरक्त रहकर जनता को प्रभावित करके अपने साथ लगाते थे। 4. वानप्रस्थी साधु बनाए जो वन में रहने वाली जनता को अपना मत सुनाकर अपने साथ जोड़ते थे। वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) तथा गीता व पुराणों, उपनिषदों को सत्यज्ञानयुक्त पुस्तक मानते थे जो आज तक हिन्दू धर्म के श्रद्धालु इन्हीं धार्मिक ग्रन्थों को सत्य मानते हैं। इस प्रकार हिन्दू धर्म की स्थापना ईसा से 488 वर्ष पूर्व (सन् 2012 से 2500 वर्ष पूर्व) हुई थी। आदि शंकराचार्य जी 30 वर्ष की आयु में असाध्य रोग के कारण शरीर त्यागकर भगवान शंकर के लोक में चले गए क्योंकि वे शंकर जी के उपासक थे, उन्हीं के लोक से इसी धर्म की स्थापना के लिए आए माने गए हैं।

उस समय बौद्ध धर्म तेजी से फैल रहा था। उसको उन्होंने भारत में फैलने से रोका था। यदि बौद्ध धर्म फैल जाता तो चीन देश की तरह भारतवासी भी नास्तिक हो जाते।

2. ईसाई धर्म की स्थापना :- श्री ईसा मसीह जी से ईसाई धर्म की स्थापना हुई। ईसा जी की जब 32 वर्ष की आयु थी, उनको क्रश पर कीलें गाढ़कर विरोधी धर्म गुरूओं ने गवर्नर पर दबाव बनाकर मरवा दिया था।

ईसा जी को उसी प्रभु ने ''इंजिल'' नामक ग्रन्थ देकर उतारा था जिसने गीता तथा वेदों का ज्ञान दिया था। ''इंजिल'' पुस्तक में भिन्न ज्ञान नहीं है क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान तो पहले गीता, वेदों में बताया जा चुका था। वह किसी धर्म विशेष के लिए नहीं है। वह गीता तथा वेदों वाला ज्ञान मानव मात्र के लिए है। ईसा जी के लगभग छः सौ वर्ष पश्चात् हजरत मुहम्मद जी ने इस्लाम धर्म की स्थापना की। मुहम्मद जी को पवित्र ''कुर्आन् शरीफ'' ग्रन्थ उसी ब्रह्म ने दिया था। इसमें भी भक्ति विधि सम्पूर्ण नहीं है, सांकेतिक है क्योंकि भक्ति का ज्ञान वेदों, गीता में बता दिया था। इसलिए कुर्आन् शरीफ ग्रन्थ में पुनः बताना अनिवार्य नहीं था। जैसे गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा जिसने सर्व सष्टि की रचना की है, उसके विषय में किसी तत्वदर्शी सन्त से पूछो, वे ठीक-ठीक ज्ञान तथा भक्तिविधि बताऐंगे। जो सन्त उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान जानता है तो वह सत्य साधना भी जानता है।

बाईबल ग्रन्थ का ज्ञान भी गीता ज्ञान दाता ने ही दिया है, (बाईबल ग्रन्थ तीन पुस्तकों का संग्रह है - 1. जबूर, 2. तौरत, 3. इंजिल) बाईबल ग्रन्थ के उत्पत्ति ग्रन्थ में प्रारम्भ में ही लिखा है कि परमेश्वर ने मनुष्यों को अपनी सूरत अर्थात् स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया है, नर-नारी करके उत्पत्ति की है। छः दिन में सष्टि की रचना करके परमेश्वर ने 7वें दिन विश्राम किया।

कुर्आन् शरीफ :- पुस्तक कुर्आन् शरीफ में सूरति फूर्कानि नं. 25 आयत नं. 52 से 59 में कहा है कि अल्लाह कबीर ने छः दिन में सष्टि रची, फिर ऊपर आकाश में तख्त (सिंहासन) पर जा विराजा। उस परमेश्वर की खबर किसी बाहखबर अर्थात् तत्वदर्शी सन्त से पूछो। कुर्आन् के लेख से स्पष्ट है कि कुर्आन् शरीफ का ज्ञान दाता भी उस पूर्ण परमात्मा अर्थात् अल्लाहु अकबर (अल्लाह कबीर) के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं रखता।

कुर्आन् शरीफ की सूरति 42 की प्रथम आयत में उन्हीं तीन मन्त्रों का सांकेतिक ज्ञान है जो गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में हैं। कहा है कि ब्रह्मणः अर्थात् सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की भक्ति के ''ॐ-तत्-सत्'' तीन नाम के स्मरण करो।

कुर्आन् शरीफ में सूरति 42 की प्रथम आयत में इन्हीं को सांकेतिक इस प्रकार लिखा है:- ''ऐन्-सीन्-कॉफ''

''ऐन्'' हिन्दी का ''अ'' अक्षर है जिसका संकेत ओम् की ओर है। ऐन् का भावार्थ ओम् से है, सीन् = स अर्थात् जो गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में दूसरा तत् मन्त्र है, उसका वास्तविक जो मन्त्र है, उसका पहला अक्षर ''स'' है, यही ओम + सीन् या तत् मिलकर सतनाम दो मन्त्र का बनता है और कुर्आन् शरीफ में जो तीसरा मन्त्र ''काफ'' = ''क'' है जो गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में लिखे तीन नामों में अन्तिम ''सत्'' मन्त्र है। (जैसे गुरू मुखी में क को कका, ख को खखा तथा ग को गगा, ऊ को ऊड़ा, ई को इड़ा कहते तथा लिखते हैं। इसी प्रकार कुरान में अ, स, क को लिखा है।)

''सत्'' मन्त्र सांकेतिक है परन्तु वास्तविक जो नाम है, उसका पहला अक्षर ''क'' है, (वह ''करीम'' मंत्र है) जिसे सारनाम भी कहते हैं। जिन भक्तों को मेरे (संत रामपाल दास) से तीनों मन्त्रों का उपदेश प्राप्त है, वे उन दोनों सांकेतिक मन्त्रों के वास्तविक नामों को जानते हैं।

''सर्व ग्रन्थों में कुछ समानता''

बाईबल ग्रन्थ में उत्पत्ति ग्रन्थ में यह भी कहा है कि ''जब आदम जी तथा उनकी धर्मपत्नी 'हव्वा' ने वाटिका के बीच वाले वृक्षों के फल खा लिए तो उनको भले-बुरे का ज्ञान हो गया। शाम के समय प्रभु वाटिका में सैर करने आए तो पता चला कि आदम तथा हव्वा ने भले-बुरे का ज्ञान कराने वाले वृक्ष के फल खा लिए तो उस प्रभु ने कहा कि ''भले-बुरे'' का ज्ञान होने से आदम तथा उसकी पत्नी हममें से एक के समान हो गए हैं। कहीं ऐसा न हो जाए कि ये उन वृक्षों का फल खा लें जो अमर करते हैं और अमर हो जाऐं। इसलिए आदम जी तथा उनकी पत्नी को स्वर्ग की वाटिका से निकालकर पृथ्वी पर छोड़ दिया।'' (लेख समाप्त)

विवेचन :- इससे सिद्ध हुआ कि ''प्रभु एक से अधिक हैं'' क्योंकि प्रभु ने ऊपर कहा कि ये भले-बुरे का ज्ञान होने से हम में से एक के समान हो गए हैं। फिर बाईबल ग्रन्थ में कहा है कि ''अब्राहिम'' मामरे के वृक्षों के नीचे बैठा था। उसको तीन प्रभु दिखाई दिए, उनको खाना खिलाया, दण्डवत् प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। इससे सिद्ध हुआ कि बाईबल में तीन प्रभु माने हैं।

मुसलमान धर्म में ''चार यारी'' माने गए हैं जो बालक रूप में रहते हैं, सूक्ष्म वेद अर्थात् तत्वज्ञान में कहा है कि :-

वही सनक सनन्दना, वही चार यारी। तत्वज्ञान जाने बिना, बिगड़ी बात सारी।।

भावार्थ :- हिन्दू धर्म में जो सनक, सनन्दन, सनातन तथा सन्तकुमार बालक रूप में रहते हैं, वे ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। मुसलमान धर्म में उन्हीं को ''चार यारी'' चार बालक मित्र कहते हैं।

फिर सूक्ष्म वेद में कहा है कि :-

वही मोहम्मद वही महादेव, वही आदम वही ब्रह्मा।
दास गरीब दूसरा कोई नहीं, देख आपने घरमा।।

भावार्थ :- मुसलमान धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद जी भगवान शिव के लोक से आए, पुण्यकर्मी आत्मा थे जो परंपरागत साधना ही एक गुफा में बैठकर किया करते थे। शिव जी का एक गण जो ग्यारह रूद्रों में से एक है, वह मुहम्मद जी से उस गुफा में मिले। उन्हीं की भाषा (अरबी भाषा) में काल प्रभु अर्थात् ब्रह्म का संदेश सुनाया। उसी रूद्र को मुसलमान जबरिल फरिस्ता कहते हैं जो नेक फरिस्ता माना जाता है।

भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद भी शिव के बच्चे हैं जो मुसलमान धर्म का पवित्र तीर्थ स्थल ''काबा'' है, उसमें भगवान शंकर के लिंग के आकार का पत्थर लगा है, उसको मुसलमान श्रद्धालु सिजदा अर्थात् प्रणाम करते हैं।

2. आदम बाबा :- पुराणों में तथा जैन धर्म के ग्रन्थों में प्रसंग आता है जो इस प्रकार है:- ऋषभदेव जी राजा नाभिराज के पुत्र थे। नाभिराज जी अयोध्या के राजा थे। ऋषभदेव जी के सौ पुत्र तथा एक पुत्री थी। एक दिन परमेश्वर एक सन्त रूप में ऋषभ देव जी को मिले, उनको भक्ति करने की प्रेरणा की, ज्ञान सुनाया कि मानव जीवन में यदि शास्त्रविधि अनुसार साधना नहीं की तो मानव जीवन व्यर्थ जाता है। वर्तमान में जो कुछ भी जिस मानव को प्राप्त है, वह पूर्व जन्म-जन्मान्तरों मे किए पुण्यों तथा पापों का फल है। आप राजा बने हो, यह आप का पूर्व का शुभ कर्म फल है। यदि वर्तमान में भक्ति नहीं करोगे तो आप भक्ति शक्तिहीन तथा पुण्यहीन होकर नरक में गिरोगे तथा फिर अन्य प्राणियों के शरीरों में कष्ट उठाओगे। (जैसे वर्तमान में इन्वर्टर की बैटरी चार्ज कर रखी है और चार्जर निकाल रखा है। फिर भी वह बैटरी कार्य कर रही है, इन्वर्टर से पँखा भी चल रहा है, बल्ब-ट्यूब भी जग रहे हैं। यदि चार्जर को फिर से लगाकर चार्ज नहीं किया तो कुछ समय उपरान्त इन्वर्टर सर्व कार्य छोड़ देगा, न पँखा चलेगा, न बल्ब, न ट्यूब जगेंगीं। इसी प्रकार मानव शरीर एक इन्वर्टर है। शास्त्र अनुकूल भक्ति चार्जर (Charger) है, परमात्मा की शक्ति से मानव फिर से चार्ज हो जाता है अर्थात् भक्ति की शक्ति का धनी तथा पुण्यवान हो जाता है।

यह ज्ञान उस ऋषि रूप में प्रकट परमात्मा के श्री मुख कमल से सुनकर ऋषभदेव जी ने भक्ति करने का पक्का मन बना लिया। ऋषभदेव जी ने ऋषि जी का नाम जानना चाहा तो ऋषि जी ने अपना नाम ''कवि देव'' अर्थात् कविर्देव बताया तथा यह भी कहा कि मैं स्वयं पूर्ण परमात्मा हूँ। मेरा नाम चारों वेदों में ''कविर्देव'' लिखा है, मैं ही परम अक्षर ब्रह्म हूँ।

सूक्ष्म वेद में लिखा है :-

ऋषभ देव के आइया, कबी नामे करतार।

नौ योगेश्वर को समझाइया, जनक विदेह उद्धार।।

भावार्थ :- ऋषभदेव जी को ''कबी'' नाम से परमात्मा मिले, उनको भक्ति की प्रेरणा की। उसी परमात्मा ने नौ योगेश्वरों तथा राजा जनक को समझाकर उनके उद्धार के लिए भक्ति करने की प्रेरणा की। ऋषभदेव जी को यह बात रास नहीं आई कि यह कविर्देव ऋषि ही प्रभु है परन्तु भक्ति का दंढ़ मन बना लिया। एक तपस्वी ऋषि से दीक्षा लेकर ओम् (ॐ) नाम का जाप तथा हठयोग किया। ऋषभदेव जी का बड़ा पुत्र ''भरत'' था, भरत का पुत्र मारीचि था। ऋषभ देव जी ने पहले एक वर्ष तक निराहार रहकर तप किया। फिर एक हजार वर्ष तक घोर तप किया। तपस्या समाप्त करके अपने पौत्र अर्थात् भरत के पुत्र मारीचि को प्रथम धर्मदेशना (दीक्षा) दी। यह मारीचि वाली आत्मा 24वें तीर्थकर महाबीर जैन जी हुए थे। ऋषभदेव जी ने जैन धर्म नहीं चलाया, यह तो श्री महाबीर जैन जी से चला है। वैसे श्री महाबीर जी ने भी किसी धर्म की स्थापना नहीं की थी। केवल अपने अनुभव को अपने अनुयाईयों को बताया था। वह एक भक्ति करने वालों का भक्त समुदाय है। ऋषभदेव जी ''ओम्'' नाम का जाप ओंकार बोलकर करते थे। उसी को वर्तमान में अपभ्रंस करके ''णोंकार'' मन्त्र जैनी कहते हैं, इसी का जाप करते हैं, इसको ओंकार तथा ॐ भी कहते हैं।

हम अपने प्रसंग पर आते हैं। जैन धर्म ग्रन्थ में तथा जैन धर्म के अनुयाईयों द्वारा लिखित पुस्तक ''आओ जैन धर्म को जानें'' में लिखा है कि ऋषभदेव जी (जैनी उन्हीं को आदिनाथ कहते हैं) वाला जीव ही बाबा आदम रूप में जन्मा था। अब उसी सूक्ष्म वेद की वाणी का सरलार्थ करता हूँ :-

वही मुहम्मद वही महादेव, वही आदम वही ब्रह्मा।
दास गरीब दूसरा कोई नहीं, देख आपने घरमा।।

बाबा आदम जी भगवान ब्रह्मा जी के लोक से आए थे क्योंकि मानव जन्म में की गई साधना के अनुसार प्राणी भक्ति अनुसार ऊपर तीनों देवताओं के लोक में बारी-बारी जाता है, अपने पुण्य क्षीण होने पर पुनः पंथ्वी पर संस्कारवश जन्म लेता है।

संत गरीब दास जी (गाँव-छुड़ानी जिला-झज्जर हरियाणा प्रांत वाले) को स्वयं ही वही परमात्मा मिले थे जो ऋषभदेव जी को मिले थे। संत गरीब दास जी ने परमेश्वर के साथ ऊपर जाकर अपनी आँखों से सर्व व्यवस्था को देखा था। फिर बताया है कि आदम जी ब्रह्मा जी के लोक से आए थे, ब्रह्मा के अवतार थे। मुहम्मद जी तम्गुण शिव जी के अवतार थे। प्रिय पाठको! अवतार दो प्रकार के होते हैं, 1. स्वयं वह प्रभु अवतार लेता है जैसे श्री राम, श्री कंष्ण आदि के रूप में स्वयं श्री विष्णु जी अवतार धारकर आए थे। परन्तु कपिल ऋषि जी, परशुराम जी को भी विष्णु जी के अवतारों में गिना जाता है। ये स्वयं श्री विष्णु जी नहीं थे,

विष्णु लोक से आए देवात्मा थे। उनके पास कुछ शक्ति विष्णु जी की थी क्योंकि वे उन्हीं के द्वारा भेजे गए थे। इसी प्रकार हजरत मुहम्मद जी श्री शिव जी के (लोक से आए देव आत्मा) अवतार थे तथा बाबा आदम जी श्री ब्रह्मा जी के (लोक से आए देव आत्मा) अवतार थे। इसी प्रकार ईसा मसीह जी श्री विष्णु जी के (लोक से आए देव आत्मा) अवतार थे। ईसाई श्रद्धालु भी ईसा जी को प्रभु का पुत्र मानते हैं, प्रभु नहीं।

संत गरीब दास जी ने कहा है कि यदि आप जी को मेरी बात पर विश्वास नहीं होता तो मेरे द्वारा बताई शास्त्रविधि अनुसार भक्ति-साधना करके अपने घर में अर्थात् अपने मानव शरीर में अपनी आँखों देख लो।

भावार्थ है :- शरीर की रचना सर्व धर्मों के मनुष्यों की एक जैसी है। तत्वज्ञान न होने के कारण हम धर्मों में बँट गए। संत गरीब दास जी ने बताया है कि मानव शरीर में परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न अंग बनाए हैं, रीढ़ की हड्डी अर्थात् **Back Bone (Spine)** के अन्दर की ओर (कण्ठ तक) पाँच कमल चक्र बने हैं। कृप्या देखें यह चित्र:-

शरीर (पिण्ड) में कमलों (चक्रों) का चित्र

1. मूल चक्र :- यह चक्र रीढ़ की हड्डी के अन्त से एक इंच ऊपर गुदा के पास है। इसका देवता श्री गणेश है। इस कमल की 4 पंखुडियाँ हैं।

2. स्वाद चक्र :- यह मूल कमल से दो इंच ऊपर रीढ की हड्डी के अन्दर की ओर चिपका है। इसके देवता श्री ब्रह्मा जी तथा उनकी धर्मपत्नी सावित्री जी हैं। इस कमल की छः पंखुड़ियाँ हैं।

3. नाभि कमल चक्र :- यह नाभि के सामने उसी रीढ़ की हड्डी के साथ चिपका है। इसके देवता श्री विष्णु जी तथा उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी जी हैं। इस कमल की 8 पंखुड़ियाँ हैं।

4. हृदय कमल चक्र:- यह कमल सीने में बने दोनों स्तनों के मध्य में रीढ़ की

हड्डी के साथ चिपका है। इसके देवता श्री शिव जी तथा उनकी धर्मपत्नी पार्वती जी हैं। इस कमल की 12 पंखुड़ियाँ हैं।

5. कण्ठ कमल :- यह कमल छाती की हड्डियों के ऊपर जहाँ से गला शुरू होता है, उसके पीछे रीढ़ की हड्डी के साथ अंत में है। इसकी प्रधान श्री देवी अर्थात् दुर्गा जी हैं। इस कमल की 16 पंखुड़ियाँ हैं। शेष कमल चक्र ऊपर हैं।

6. संगम कमल या छठा कमल :- यह कमल सुष्मणा के ऊपर वाले द्वार पर है। इसकी तीन पंखुड़ियाँ हैं। इसमें सरस्वती रूप में देवी दुर्गा जी निवास करती हैं। एक पंखुड़ी में देवी दुर्गा सरस्वती रूप में रहती है। उसी के साथ में 72 करोड़ उर्वशी (सुंदर परियाँ) रहती हैं जो ऊपर जाने वाले भक्तों को अपने जाल में फँसाती हैं। दूसरी पंखुड़ी में सुंदर युवा नर रहते हैं जो भक्तमतियों को आकर्षित करके काल जाल में रखते हैं। काल भी अन्य रूप में इन युवाओं का संचालक मुखिया बनकर रहता है। तीसरी पंखुड़ी में स्वयं परमात्मा अन्य रूप में रहते हैं। अपने भक्तों को उनके जाल से मुक्त कराते हैं। ज्ञान सुनाकर सतर्क करते हैं।

7. त्रिकुटी कमल चक्र :- यह दोनों आँखों की भौंहों (सेलियों) के मध्यम में सिर के पिछले हिस्से में अन्य कमलों की ही पंक्ति में ऊपर है। इसका देवता सतगुरू रूप में परमेश्वर ही है। इस कमल की दो पंखुड़ियाँ हैं। एक सफेद (वर्ण) रंग की दूसरी काले (भंवर = भंवरे) के रंग की पंखुड़ियाँ हैं। सफेद पंखुड़ी में सतगुरू रूप में सत्यपुरूष का निवास है। काली पंखुड़ी में नकली सतगुरू रूप में काल निरंजन का वास है।

8. सहंस्र कमल चक्र :- यह कमल सिर के मध्य भाग से दो ऊंगल नीचे अन्य कमलों की ही पंक्ति में है। हिन्दू धर्म के व्यक्ति सिर पर बालों की चोटी रखते थे, कुछ अब भी रखते हैं। इसके नीचे वह सहंस्र कमल दल है। इसका देवता ब्रह्म है, इसे क्षर पुरूष भी कहते हैं जिसने गीता व वेदों का ज्ञान कहा है। इस कमल की एक हजार पंखुड़ियाँ हैं। इनको काल ब्रह्म ने प्रकाश से भर रखा है, स्वयं इसी कमल चक्र में दूर रहता है। वह स्वयं दिखाई नहीं देता, केवल पंखुड़ियाँ चमकती दिखाई देती हैं।

{अष्ट कमल दल :- इस कमल का देवता अक्षर पुरूष है, इसे परब्रह्म भी कहते हैं, इसकी पंखुड़ियाँ भी 8 हैं। इसकी स्थिति नहीं बताऊँगा क्योंकि नकली गुरू भी इसको जानकर जनता को भ्रमित कर देंगे।}

9. संख कमल दल :- इस कमल में पूर्ण ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म का निवास है। इसकी शंख पंखुड़ियाँ है। इसकी स्थिति भी नहीं बताऊँगा, कारण ऊपर लिख दिया है।

{जो चित्र में दिखाए हैं। इनमें छठा कमल तथा नौंवा कमल नहीं दिखाया है। कारण यही है कि विद्यार्थियों की धीरे-धीरे ज्ञान वंद्धि की जाती है। कमलों का

गहरा रहस्य है। यह कबीर सागर के सारांश में लिखा है।}

शरीर में ये कमल ऐसा कार्य करते हैं, जैसे टेलीविजन में चैनल लगे हैं। उन चैनलों में से जिस भी चैनल को चालू करोगे, उस पर कार्यक्रम दिखाई देगा। वह कार्यक्रम चल तो रहा है स्टूडियो में, दिख रहा है टी.वी. में। इसी प्रकार प्रत्येक कमल का फंक्शन (Function) है। इन कमलों को चालू करने के मन्त्र हैं जो यह दास (संत रामपाल दास) जाप करने को देता है। प्रथम बार दीक्षा इन्हीं चैनलों को खोलने की दी जाती है। मन्त्रों की शक्ति से सर्व कमल On (चालू) हो जाते हैं, फिर साधक अपने शरीर में लगे चैनल में उस देव के धाम को देख सकता है, वहाँ के सर्व दृश्य देख सकता है। इसलिए संत गरीब दास जी ने कहा है कि आप अपने शरीर के चैनल On (चालू) करके स्वयं देख लो कि आदम जी आप को ब्रह्मा के लोक से आए दिखाई देंगे क्योंकि वहाँ पर सर्व रिकॉर्ड उपलब्ध है। जैसे वर्तमान में You Tube है, इसी प्रकार प्रत्येक देव के लोक में आप जो पूर्व में हुई घटना देखना चाहें, आप देख सकते हैं।

इसी प्रकार हजरत मुहम्मद जी आपको शिव जी के लोक से आए दिखाई देंगे। इसी प्रकार ईसा जी भी श्री विष्णु जी के लोक से आए दिखाई देंगे।

''मक्का महादेव का मंदिर है''

भाई बाले वाली जन्म साखी में प्रमाण है :-

''साखी मदीने की चली'' हिन्दी वाली के पृष्ठ 262 पर श्री नानक जी ने चार इमामों के प्रश्न का जवाब देते हुए कहा है :-

आखे नानक शाह सच्च, सुण हो चार इमाम।
मक्का है महादेव का, ब्राह्मण सन सुलतान।।

अब आप जी को अपने उद्देश्य की ओर ले चलता हूँ। आप जी को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि जो यथार्थ आध्यात्मिक ज्ञान सूक्ष्म वेद, गीता तथा चारों वेदों में है, वह न तो पुराणों में है, न कुर्आन् शरीफ में, न बाईबल में, न छः शास्त्रों तथा न ग्यारह उपनिषदों में। उदाहरण :- जैसे दसवीं कक्षा तक का पाठ्यक्रम गलत नहीं है, परंतु उसमें B.A. तथा M.A वाला ज्ञान नहीं है। वह पाठ्यक्रम गलत नहीं है, परन्तु पर्याप्त नहीं है। समझने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

अन्य उदाहरण :- गीता अध्याय 2 श्लोक 46 में कहा है कि अर्जुन! बड़े जलाशय (झील) की प्राप्ति के पश्चात् छोटे जलाशय (तालाब, जोहड़) में जितनी आस्था रह जाती है, उसी प्रकार पूर्ण परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान होने के पश्चात् अन्य ज्ञान तथा भगवानों में वैसी ही आस्था रह जाती है।

जिस समय गीता ज्ञान कहा गया था, उस समय सर्व मानव जलाशयों के आसपास बसते थे, वर्षा होती थी, तालाब भर जाते थे। पूरे वर्ष उसी जलाशय

से मानव स्वयं पानी पीते थे, पशुओं को उसी से पिलाते थे। उसके दो भाग कर लिए जाते थे। यदि एक वर्ष वर्षा न होती तो छोटे जलाशयों पर आश्रित व्यक्तियों को संकट हो जाता था, त्राहि-त्राहि मच जाती थी।

झील बहुत बड़ा गहरा जलाशय होता है जिसका पानी 10 वर्ष वर्षा न हो तो भी समाप्त नहीं होता। यदि किसी व्यक्ति को झील वाला जलाशय मिल जाए तो वह तुरंत छोटे जलाशय को छोड़कर उस झील के किनारे बसेरा कर लेता था। इसी प्रकार आप जी को इस पवित्र पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमत'' में वह झील वाला जलाशय प्राप्त है। अतिशीघ्र इसके किनारे आकर बसेरा करें और अपना मानव जीवन सुखी करें। कपा पीऐं इस ज्ञान अमत को और अमर हो जाऐं।

हिन्दू कहते हैं कि मुसलमान सर्व विपरीत साधना करते हैं। हम उदय होते सूर्य को प्रणाम करते हैं, मुसलमान अस्त होते सूर्य को सलाम करते हैं।

विवेचन :- दोनों का आशय सही है, परन्तु विवेक की कमी है। हिन्दू उदय होते सूर्य को धन्यवाद करते हैं कि हे प्रकाश के देवता! आपका धन्यवाद करते हैं, आप ने काली रात के पश्चात् उजाला दिया जिससे हम अपना निर्वाह कार्य कर सकेंगे। आप ऐसे ही हम पर कपा बनाए रखना।

मुसलमान जानते हैं कि सुबह तो सूर्यदेव का धन्यवाद हमारे बड़े भाईयों हिन्दुओं ने हम सबकी मंगल कामना करते हुए कर दिया। सूर्य अस्त होते समय हम सूर्य का धन्यवाद कर देते हैं कि हे प्रकाश करने वाले सूर्य! आपने हम सर्व जीवों को प्रकाश प्रदान करके हम पर बड़ा उपकार किया। हम आपका धन्यवाद करते हैं। आप कल फिर इसी प्रकार कपा करना, आप भी अल्लाह अकबीर की रचना हो और हम भी उसी की सन्तान हैं।

वास्तव में न तो मुसलमान सूर्य की पूजा करते हैं, न हिन्दू। दोनों पक्ष पूर्व-पश्चिम की ओर मुख करके सुबह हिन्दू तथा शाम को मुसलमान परमात्मा की भी पूजा करते हैं।

पूजा केवल पूर्ण परमात्मा की करनी चाहिए। अन्य देवों, फरिश्तों का आदर करना चाहिए। अधिक ज्ञान के लिए आगे पढ़ें ''गीता का सत्य सार'' इसी पुस्तक में।

निवेदन :- इसी पुस्तक के अंत में पष्ठ 204 पर गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री जयदयाल गोयन्दका जी द्वारा अनुवादित गीता के संबंधित अध्यायों के श्लोकों की फोटोकॉपी लगाई है ताकि आप जी सत्य को तुरंत जान सकें और आप जी को प्रमाण देखने के लिए अन्य गीता खरीदने की आवश्यकता न पड़े।

लेखक
संत रामपाल दास

"गीता का सत्य सार"

❖ <u>गीता = श्रीमद्भगवत् गीता।</u>

1. प्रश्न :- गीता का ज्ञान कब तथा किसने, किसको सुनाया, किसने लिखा? कृप्या विस्तार से बताऐं।

उत्तर :- श्री मद्भगवत् गीता का ज्ञान श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके काल भगवान ने (जिसे वेदों व गीता में "ब्रह्म" नाम से भी जाना जाता है) अर्जुन को सुनाया। जिस समय कौरव तथा पाण्डव अपनी सम्पत्ति अर्थात् दिल्ली के राज्य पर अपने-अपने हक का दावा करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गए थे, दोनों की सेनाऐं आमने-सामने कुरूक्षेत्र के मैदान में खड़ी थी। अर्जुन ने देखा कि सामने वाली सेना में भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य, रिश्तेदार, कौरवों के बच्चे, दामाद, बहनोई, ससुर आदि-आदि लड़ने-मरने के लिए खड़े हैं। कौरव और पाण्डव आपस में चचेरे भाई थे। अर्जुन में साधु भाव जागृत हो गया तथा विचार किया कि जिस राज्य को प्राप्त करने के लिए हमें अपने चचेरे भाईयों, भतीजों, दामादों, बहनोइयों, भीष्म पितामह जी तथा गुरूजनों को मारेंगे। यह भी नहीं पता कि हम कितने दिन संसार में रहेंगे? इसलिए इस प्रकार से प्राप्त राज्य के सुख से अच्छा तो हम भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह कर लेंगे, परन्तु युद्ध नहीं करेंगे। यह विचार करके अर्जुन ने धनुष-बाण हाथ से छोड़ दिया तथा रथ के पिछले भाग में बैठ गया। अर्जुन की ऐसी दशा देखकर श्री कृष्ण बोले :- देख ले सामने किस योद्धा से आपने लड़ना है। अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे कृष्ण! मैं किसी कीमत पर भी युद्ध नहीं करूँगा। अपने उद्देश्य तथा जो विचार मन में उठ रहे थे, उनसे भी अवगत कराया। उसी समय श्री कृष्ण जी में काल भगवान प्रवेश कर गया जैसे प्रेत किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके बोलता है। ऐसे काल ने श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश करके श्री मद्भगवत गीता का ज्ञान युद्ध करने की प्रेरणा करने के लिए तथा कलयुग में वेदों को जानने वाले व्यक्ति नहीं रहेंगे, इसलिए चारों वेदों का संक्षिप्त वर्णन व सारांश "गीता ज्ञान" रूप में 18 अध्यायों में 700 श्लोकों में सुनाया। श्री कृष्ण को तो पता नहीं था कि मैंने क्या बोला था गीता ज्ञान में?

{ब्रह्माकुमारी पंथ वाले इसी काल ब्रह्म को निराकार शिव बाबा कहते हैं। उनका भी कहना है कि गीता का ज्ञान शिव बाबा ने किसी वृद्ध के शरीर में प्रवेश करके बोला था। यह शिव बाबा ब्रह्माकुमारी वालों का पूज्य प्रभु है।}

❖ कुछ वर्षों के बाद वेदव्यास ऋषि ने इस अमृतज्ञान को संस्कृत भाषा में देवनागरी लिपि में लिखा। बाद में अनुवादकों ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस पवित्र ग्रन्थ का हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जो वर्तमान में गीता प्रैस गोरखपुर (U.P) से प्रकाशित किया जा रहा है। उसकी फोटोकापियाँ इसी पुस्तक के पृष्ठ 204 से 357 तक लगी हैं।

प्रश्न :- आज (सन् 2012) तक तो यह सुनने में आया है कि गीता जी का ज्ञान श्री कृष्ण ने बोला। आपने बताया कि श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश करके काल ने गीता ज्ञान कहा और श्री कृष्ण को तो पता ही नहीं था कि उन्होंने क्या ज्ञान कहा था? यह असत्य प्रतीत होता है, कोई प्रमाण बताएं।

उत्तरः- आपको ढ़ेर सारे प्रमाण देते हैं, जिनसे स्वसिद्ध हो जाता है कि गीता शास्त्र का ज्ञान "काल" ने कहा।

सर्व प्रथम गीता से ही प्रमाणित करता हूँ।

❖ प्रमाण नं. 1. :- गीता अध्याय 10 में जब गीता ज्ञान दाता ने अपना विराट रूप दिखा दिया तो उसको देखकर अर्जुन काँपने लगा, भयभीत हो गया। यहाँ पर यह बताना भी अनिवार्य है कि अर्जुन का साला श्री कृष्ण था क्योंकि श्री कृष्ण की बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था।

गीता ज्ञान दाता ने जिस समय अपना भयंकर विराट रूप दिखाया जो हजार भुजाओं वाला था। तब अर्जुन ने पूछा कि हे देव! आप कौन हैं? (गीता अध्याय 11 श्लोक 31)

❖ हे सहंस्राबाहु (हजार भुजा वाले) आप अपने चतुर्भुज रूप में दर्शन दीजिए (क्योंकि अर्जुन उन्हें विष्णु अवतार कृष्ण तो मानता ही था, परन्तु उस समय श्री कृष्ण के शरीर से बाहर निकलकर काल ने अपना अपार विराट रूप दिखाया था) मैं भयभीत हूँ, आपके इस रूप को सहन नहीं कर पा रहा हूँ। (गीता अध्याय 11 श्लोक 46)

❖ विचारें पाठक जन : क्या हम अपने साले से पूछेंगे कि हे महानुभाव! बताईए आप कौन हैं? नहीं। एक समय एक व्यक्ति में प्रेत बोलने लगा। साथ बैठे व्यक्ति ने पूछा आप कौन बोल रहे हो? उत्तर मिला कि तेरा मामा बोल रहा हूँ। मैं दुर्घटना में मरा था। क्या हम अपने भाई को नहीं जानते? ठीक इसी प्रकार श्री कृष्ण में काल बोल रहा था।

❖ प्रमाण नं. 2 गीता अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन ने कहा कि आप तो देवताओं के समूह के समूह को ग्रास (खा) रहे हैं जो आपकी स्तुति हाथ जोड़कर भयभीत होकर कर रहे हैं। महर्षियों तथा सिद्धों के समुदाय आप से अपने जीवन की रक्षार्थ मंगल कामना कर रहे हैं। गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में गीता ज्ञान दाता ने बताया कि हे अर्जुन! मैं बढ़ा हुआ काल हूँ। अब प्रवृत हुआ हूँ अर्थात् श्री कृष्ण के शरीर में अब प्रवेश हुआ हूँ। सर्व व्यक्तियों का नाश करूँगा। विपक्ष की सर्व सेना, तू युद्ध नहीं करेगा तो भी नष्ट हो जाएगी।

इससे सिद्ध हुआ कि गीता का ज्ञान श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रविष्ट होकर काल ने कहा है। श्री कृष्ण जी ने पहले कभी नहीं कहा कि मैं काल हूँ। श्री कृष्ण जी को देखकर कोई भयभीत नहीं होता था। गोप-गोपियाँ, ग्वाल-बाल, पशु-पक्षी सब दर्शन करके आनंदित होते थे। तो ''क्या श्री कृष्ण जी काल थे?'' नहीं।

इसलिए गीता ज्ञान दाता ''काल'' है जिसने श्री कष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके गीता शास्त्र का ज्ञान दिया।

❖ प्रमाण नं. 3 - गीता अध्याय 11 श्लोक 47 में गीता ज्ञानदाता ने कहा कि हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी शक्ति से तेरी दिव्य दष्टि खोलकर यह विराट रूप दिखाया है। यह विराट रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा है।

❖ विचारणीय विषय :- प्रिय पाठको! महाभारत ग्रन्थ में प्रकरण आता है कि जिस समय श्री कष्ण जी कौरवों की सभा में उपस्थित थे और उनसे कह रहे थे कि आप दोनों (कौरव और पाण्डव) आपस में बातचीत करके अपनी सम्पत्ति (राज्य) का बटँवारा कर लो, युद्ध करना शोभा नहीं देता। पाण्डवों ने कहा कि हमें पाँच (5) गाँव दे दो, हम उन्हीं से निर्वाह कर लेंगे। दुर्योधन ने यह भी माँग नहीं मानी और कहा कि पाण्डवों के लिए सुई की नोक के समान भी राज्य नहीं है, युद्ध करके ले सकते हैं। इस बात से श्री कष्ण भगवान बहुत नाराज हो गए तथा दुर्योधन से कहा कि तू पथ्वी के नाश के लिए जन्मा है, कुलनाश करके टिकेगा। भले मानव! कहाँ आधा, राज्य कहाँ 5 गाँव। कुछ तो शर्म कर ले।

इतनी बात श्री कष्ण जी के मुख से सुनकर दुर्योधन राजा आग-बबूला हो गया और सभा में उपस्थित अपने भाईयों तथा मन्त्रियों से बोला कि इस कष्ण यादव को गिरफ्तार कर लो। उसी समय श्री कष्ण जी ने विराट रूप दिखाया। सभा में उपस्थित सर्व सभासद उस विराट रूप को देखकर भयभीत होकर कुर्सियों के नीचे छिप गए, कुछ आँखों पर हाथ रखकर जमीन पर गिर गए। श्री कष्ण जी सभा छोड़ कर चले गए तथा अपना विराट रूप समाप्त कर दिया।

अब उस बात पर विचार करते हैं जो गीता अध्याय 11 श्लोक 47 में गीता ज्ञान दाता ने कहा था कि यह मेरा विराट रूप तेरे अतिरिक्त अर्जुन! पहले किसी ने नहीं देखा था। यदि श्री कष्ण गीता ज्ञान बोल रहे होते तो यह कभी नहीं कहते कि मेरा विराट रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा था क्योंकि श्री कष्ण जी के विराट रूप को कौरव तथा अन्य सभासद पहले देख चुके थे।

इससे सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान श्री कष्ण ने नहीं कहा, उनके शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके काल (क्षर पुरूष) ने कहा था। यह तीसरा प्रमाण हुआ।

❖ प्रमाण नं. 4- श्री विष्णु पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के पष्ठ 168 पर प्रमाण है कि एक समय देवताओं और राक्षसों का युद्ध हुआ। देवता पराजित होकर समुद्र के किनारे जाकर छिप गए। फिर भगवान की तपस्या स्तुति करने लगे। काल का विधान है अर्थात् काल ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि मैं अपने वास्तविक काल रूप में कभी किसी को दर्शन नहीं दूंगा। अपनी योग माया से छिपा रहूँगा। (प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में) इसलिए यह काल (क्षर पुरूष) किसी को विष्णु जी के रूप में दर्शन देता है, किसी को शंकर जी के रूप

में, किसी को ब्रह्मा जी के रूप में दर्शन देता है।

देवताओं को श्री विष्णु जी के रूप में दर्शन देकर कहा कि मैंने जो आप की समस्या है, वह जान ली है। आप पुरंज्य राजा को युद्ध के लिए तैयार कर लो। मैं उस राजा श्रेष्ठ के शरीर में प्रविष्ट होकर राक्षसों का नाश कर दूंगा, ऐसा ही किया गया। (अधिक ज्ञान के लिए आप जी विष्णु पुराण पढ़ सकते हैं।

❖ प्रमाण नं. 5- श्री विष्णु पुराण के पृष्ठ 173 पर प्रमाण है कि एक समय नागवंशियों तथा गंधर्वों का युद्ध हुआ। गंधर्वों ने नागों के सर्व बहुमूल्य हीरे, लाल व खजाने लूट लिए, उनके राज्य पर भी कब्जा कर लिया। नागाओं ने भगवान की स्तुति की, वही ''काल'' भगवान विष्णु रूप धारण करके प्रकट हुआ। कहा कि आप पुरूकुत्स राजा को गंधर्वों के साथ युद्ध के लिए तैयार कर लें। मैं राजा पुरूकुत्स के शरीर में प्रवेश करके दुष्ट गंधर्वों का नाश कर दूँगा, ऐसा ही हुआ।

उपरोक्त विष्णु पुराण की दोनों कथाओं से स्पष्ट हुआ (प्रमाणित हुआ) कि यह काल भगवान (क्षर पुरूष) इस प्रकार अव्यक्त (गुप्त) रहकर कार्य करता है। इसी प्रकार इसने श्री कृष्ण जी में प्रवेश करके गीता का ज्ञान कहा है।

❖ प्रमाण नं. 6- महाभारत ग्रन्थ में (गीता प्रैस गोरखपुर (U.P) से प्रकाशित में) भाग-2 पृष्ठ 800-801 पर लिखा है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् राजा युधिष्ठर को राजगद्दी पर बैठाकर श्री कृष्ण जी ने द्वारिका जाने की तैयारी की। तब अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से कहा कि आप वह गीता वाला ज्ञान फिर से सुनाओ, मैं उस ज्ञान को भूल गया हूँ। श्री कृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! आप बड़े बुद्धिहीन हो, बड़े श्रद्धाहीन हो। आपने उस अनमोल ज्ञान को क्यों भुला दिया, अब मैं उस ज्ञान को नहीं सुना सकता क्योंकि मैंने उस समय योगयुक्त होकर गीता का ज्ञान सुनाया था।

❖ विचार करें :- युद्ध के समय योगयुक्त हुआ जा सकता है तो शान्त वातावरण में योगयुक्त होने में क्या समस्या हो सकती है? वास्तव में यह ज्ञान काल ने श्री कृष्ण में प्रवेश करके बोला था।

❖ श्री कृष्ण जी को स्वयं तो वह गीता ज्ञान याद नहीं, यदि वे वक्ता थे तो वक्ता को तो सर्व ज्ञान याद होना चाहिए। श्रोता को तो प्रथम बार में 40 प्रतिशत ज्ञान याद रहता है। इससे सिद्ध है कि गीता का ज्ञान श्री कृष्ण जी में प्रवेश होकर काल (क्षर पुरूष) ने बोला था। उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हुआ कि श्रीमद् भगवत गीता का ज्ञान श्री कृष्ण ने नहीं कहा। उनको तो पता ही नहीं कि क्या कहा था, श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके काल पुरूष (क्षर पुरूष) ने बोला था।

प्रश्न 2 :- काल पुरूष कौन है?

उत्तर :- इसके लिए पढ़ें सृष्टि रचना जो पृष्ठ 120 पर लिखी है।

प्रश्न 3 : काल भगवान अर्थात् ब्रह्म अविनाशी है या जन्मता-मरता है?

उत्तर :- जन्मता-मरता है।

प्रश्न 4 :- कहाँ प्रमाण है?

उत्तर : श्री मद्भगवत गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता स्वयं स्वीकार करता है कि मेरी भी जन्म व मत्यु होती है, मैं अविनाशी नहीं हूँ। कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। तू, मैं और ये राजा लोग व सैनिक पहले भी थे, आगे भी होंगे, यह न जान कि हम केवल वर्तमान में ही हैं। मेरी उत्पत्ति को न तो देवता लोग जानते और न ही ऋषिजन क्योंकि यह सब मेरे से उत्पन्न हुए हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता काल पुरूष अविनाशी नहीं है। इसलिए इसको क्षर पुरूष कहा जाता है।

प्रश्न 5 : क्या ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव अविनाशी हैं?

उत्तर : नहीं। ये नाशवान हैं, इनकी भी जन्म-मत्यु होती है, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जी के माता-पिता भी हैं।

प्रश्न 6 : कोई प्रमाण बताओ, माता-पिता का नाम भी बताओ।

उत्तर : श्री देवी महापुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के तीसरे स्कंद पष्ठ 123 पर श्री विष्णु जी ने अपनी माता दुर्गा की स्तुति करते हुए कहा है कि हे मातः! आप शुद्ध स्वरूपा हो, सारा संसार आप से ही उद्भाषित हो रहा है, हम आपकी कपा से विद्यमान हैं, मैं, ब्रह्मा और शंकर तो जन्मते-मरते हैं, हमारा तो अविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मत्यु) हुआ करता है, हम अविनाशी नहीं हैं। तुम ही जगत जननी और सनातनी देवी हो और प्रकति देवी हो। शंकर भगवान बोले, हे माता! विष्णु के बाद उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा जब आप का पुत्र है तो क्या मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर तुम्हारी सन्तान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हो। इस देवी महापुराण के उल्लेख से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी को जन्म देने वाली माता श्री दुर्गा देवी (अष्टंगी देवी) है और तीनों नाशवान हैं।

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी का पिता कौन है?

प्रमाण :- श्री शिव महापुराण (गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) में इनके पिता का ज्ञान है, श्री शिव महापुराण के रूद्रसंहिता खण्ड में पष्ठ 100 से 110 तक निम्न प्रकरण है :-

अपने पुत्र नारद जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री ब्रह्मा जी ने कहा कि हे पुत्र! आपने सष्टि के उत्पत्तिकर्ता के विषय में जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुन।

प्रारम्भ में केवल एक "सद्ब्रह्म" ही शेष था। सब स्थानों पर प्रलय था। उस निराकार परमात्मा ने अपना स्वरूप शिव जैसा बनाया। उसको "सदाशिव" कहा

जाता है, उसने अपने शरीर से एक स्त्री निकाली, वह स्त्री दुर्गा, जगदम्बिका, प्रकति देवी तथा त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) की जननी कहलाई जिसकी आठ भुजाएं हैं, इसी को शिवा भी कहा है।

❖ ”श्री विष्णु जी की उत्पत्ति“:- सदाशिव और शिवा (दुर्गा) ने पति-पत्नी रूप में रहकर एक पुत्र की उत्पत्ति की, उसका नाम विष्णु रखा।

❖ ”श्री ब्रह्मा जी की उत्पत्ति“ :- श्री ब्रह्मा जी ने बताया कि जिस प्रकार विष्णु जी की उत्पत्ति शिव तथा शिवा के संयोग (भोग-विलास) से हुई है, उसी प्रकार शिव और शिवा ने मेरी भी उत्पत्ति की।

नोट :– यहाँ पर शिव को काल ब्रह्म जानें, शिवा को दुर्गा जानें, प्रिय पाठको! इस रूद्र संहिता खण्ड में शंकर जी की उत्पत्ति का प्रकरण नहीं है, यह अनुवादकर्ता की गलती है। वैसे देवी पुराण में शंकर जी ने स्वयं स्वीकारा है कि मेरा जन्म दुर्गा (प्रकति) से हुआ है।

❖ श्री शकंर जी भी शिव तथा शिवा का पुत्र है :- श्री शिव महापुराण के विध्वेश्वर संहिता खण्ड पष्ठ 24 से 30 पर प्रमाण :- एक समय श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी का इस बात पर युद्ध हो गया कि ब्रह्मा जी ने कहा मैं तेरा पिता हूँ क्योंकि यह संसार मेरे से उत्पन्न हुआ है, मैं प्रजापिता हूँ। विष्णु जी ने कहा कि मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरे नाभि कमल से उत्पन्न हुआ है। दोनों एक-दूसरे को मारने के लिए तत्पर हो गए। उसी समय सदाशिव अर्थात् काल ब्रह्म ने उन दोनों के बीच में एक सफेद रंग का प्रकाशमय स्तंभ खड़ा कर दिया, फिर स्वयं शंकर के रूप में प्रकट होकर उनको बताया कि तुम कोई भी कर्ता नहीं हो।

हे पुत्रो! मैंने तुमको जगत की उत्पत्ति और स्थिति रूपी दो कार्य दिए हैं, इसी प्रकार मैंने शंकर और रूद्र को दो कार्य संहार व तिरोगति दिए हैं, मुझे वेदों में ब्रह्म कहा है। मेरे पाँच मुख हैं, एक मुख से अकार (अ), दूसरे मुख से उकार (उ) तथा तीसरे मुख से मकार (म), चौथे मुख से बिन्दु (.) तथा पाँचवे मुख से नाद (शब्द) प्रकट हुए हैं, उन्हीं पाँच अववयों से एकीभूत होकर एक अक्षर ओम् (ऊँ) बना है, यह मेरा मूल मन्त्र है।

उपरोक्त शिव महापुराण के प्रकरण से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शकंर जी की माता श्री दुर्गा देवी (अष्टंगी देवी) है तथा पिता सदाशिव अर्थात् ”काल ब्रह्म“ है जिसने श्रीमद् भगवत गीता का ज्ञान श्री कष्ण जी में प्रवेश करके बोला था। इसी को क्षर पुरूष, क्षर ब्रह्म भी कहा गया है। यही प्रमाण श्री मद्भगवत गीता अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में भी है कि रज् (रजगुण ब्रह्मा), सत् (सतगुण विष्णु), तम् (तमगुण शंकर) तीनों गुण प्रकति अर्थात् दुर्गा देवी से उत्पन्न हुए हैं। प्रकति तो सब जीवों को उत्पन्न करने वाली माता है। मैं (गीता ज्ञान दाता) सब जीवों का पिता हूँ। मैं दुर्गा (प्रकति) के गर्भ में बीज

स्थापित करता हूँ जिससे सबकी उत्पत्ति होती है।

प्रश्न 7 : यह कहाँ प्रमाण है कि रजगुण ब्रह्मा है, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर है?

उत्तर : 1. श्री मार्कण्डेय पुराण (सचित्र मोटा टाईप गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) के 123 पष्ठ पर कहा है कि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर, तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ है, ये ही तीन देवता हैं। ये ही तीन गुण हैं।

2. श्री देवी महापुराण संस्कत व हिन्दी अनुवाद (श्री वैंकटेश्वर प्रैस बम्बई से प्रकाशित) में तीसरे स्कंद अध्याय 5 श्लोक 8 में लिखा है कि शंकर भगवान बोले, हे मातः! यदि आप हम पर दयालु हैं तो मुझे तमोगुण, ब्रह्मा रजोगुण तथा विष्णु सतोगुण युक्त क्यों किया?

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शंकर जी हैं।

प्रश्न 8 :- परमात्मा को अजन्मा, अजर-अमर कहते हैं। उपरोक्त प्रकरण तथा प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा श्री विष्णु तथा श्री शंकर तीनों नाशवान हैं, फिर अविनाशी परमात्मा कौन है, क्या ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर और काल ब्रह्म परमात्मा नहीं हैं? प्रमाण सहित बताऐं :-

उत्तर :- पहले स्पष्ट करते हैं कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शंकर तथा ब्रह्म परमात्मा है या नहीं। यह तो आपने अपने प्रश्न में ही सिद्ध कर दिया कि परमात्मा तो अजन्मा अर्थात् जिसका कभी जन्म न हुआ हो, वह होता है, पूर्वोक्त विवरण तथा प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के माता-पिता हैं। ब्रह्म भी नाशवान है, इसका भी जन्म हुआ है, इससे स्वसिद्ध हुआ कि ये परमात्मा नहीं हैं। अब प्रश्न रहा फिर अविनाशी कौन है? इसके उत्तर में श्री मद्भगवत गीता से ही प्रमाणित करते हैं कि अविनाशी परमात्मा गीता ज्ञान देने वाले (ब्रह्म) से अन्य है। श्री मद्भगवत गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी कि मेरी उत्पत्ति हुई है, मैं जन्मता-मरता हूँ, अर्जुन मेरे और तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, मैं भी नाशवान हूँ। गीता अध्याय 2 श्लोक 17 में भी कहा है कि अविनाशी तो उसको जान जिसको मारने में कोई भी सक्षम नहीं है और जिस परमात्मा ने सर्व की रचना की है, अविनाशी परमात्मा का यह प्रथम प्रमाण हुआ।

❖ प्रमाण नं. 2 : श्री मद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूष (प्रभु) कहे हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में कहा है कि इस लोक में दो पुरूष प्रसिद्ध हैं :- क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष। ये दोनों प्रभु तथा इनके अन्तर्गत

सर्व प्राणी नाशवान हैं, आत्मा तो सबकी अमर है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम तो कोई अन्य ही है, जिसे परमात्मा कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है, वह वास्तव में अविनाशी है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में कहा है कि जो साधक केवल जरा (वृद्धावस्था), मरण (मृत्यु), दुःख से छूटने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे तत् ब्रह्म को जानते हैं, सब कर्मों तथा सम्पूर्ण अध्यात्म से परिचित हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में अर्जुन ने पूछा कि "तत् ब्रह्म" क्या है? गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 8 श्लोक 3 में उत्तर दिया कि वह "परम अक्षर ब्रह्म'' है अर्थात् परम अक्षर पुरूष है। (पुरूष कहो चाहे ब्रह्म) गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में जो ''उत्तम पुरूषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः'' कहा है, वह "परम अक्षर ब्रह्म" है, इसी को पुरूषोत्तम कहा है।

शंका समाधान

गीता अध्याय 15 श्लोक 18 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं उन सर्व प्राणियों से उत्तम अर्थात् शक्तिमान हूँ जो मेरे 21 ब्रह्माण्डों में रहते हैं, इसलिए लोकवेद अर्थात् दन्त कथा के आधार से मैं पुरूषोत्तम प्रसिद्ध हूँ। वास्तव में पुरूषोत्तम तो गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में स्पष्ट कर दिया। उत्तम पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम तो क्षर पुरूष (गीता ज्ञान दाता) तथा अक्षर पुरूष (जो 7 शंख ब्रह्माण्डों का स्वामी है) से अन्य ही है, वही परमात्मा कहा जाता है। वह सर्व का धारण-पोषण करता है, वास्तव में अविनाशी है। वह "परम अक्षर ब्रह्म" है जो असंख्य ब्रह्माण्डों का मालिक है जो सर्व सृजनहार है, कुल का मालिक है अर्थात् परमात्मा है।

प्रश्न 9 :- अक्षर का अर्थ अविनाशी होता है। आपने गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में भी अक्षर पुरूष को भी नाशवान बताया है, कृप्या स्पष्ट करें।

उत्तर :- यह सत्य है कि "अक्षर" का अर्थ अविनाशी होता है, परन्तु प्रकरणवश अर्थ अन्य भी होता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में कहा है कि क्षर और अक्षर ये दो पुरूष (प्रभु) इस लोक में है, ये दोनों तथा इनके अन्तर्गत जितने जीव हैं, वे नाशवान हैं, आत्मा किसी की भी नहीं मरती। फिर गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में स्पष्ट किया है कि पुरूषोत्तम तो उपरोक्त दोनों प्रभुओं से अन्य है। वही अविनाशी है, वही सबका धारण-पोषण करने वाला वास्तव में अविनाशी है। गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में तत् ब्रह्म को परम अक्षर ब्रह्म कहा है। अक्षर का अर्थ अविनाशी है, परन्तु यहाँ परम अक्षर ब्रह्म कहा है। इससे भी सिद्ध हुआ कि अक्षर से आगे परम अक्षर ब्रह्म है, वह वास्तव में अविनाशी है।

❖ प्रमाण :- जैसे ब्रह्मा जी की आयु 100 वर्ष बताई जाती है, देवताओं का

वर्ष कितने समय का है? सुनो! चार युग (सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलयुग) का एक चतुर्युग होता है जिसमें मनुष्यों के 43,20,000 (त्रितालीस लाख बीस हजार) वर्ष होते हैं। इस प्रकार बने 1008 चतुर्युग का ब्रह्मा जी का दिन और इतनी ही रात्रि होती है, ऐसे 30 दिन-रात्रि का एक महीना तथा 12 महीनों का ब्रह्मा जी का एक वर्ष हुआ। ऐसे 100 (सौ) वर्ष की श्री ब्रह्मा जी की आयु है।

श्री विष्णु जी की आयु श्री ब्रह्मा जी से 7 गुणा है। = 700 वर्ष।

श्री शंकर जी की आयु श्री विष्णु जी से 7 गुणा अधिक = 4900 वर्ष।

ब्रह्म (क्षर पुरूष) की आयु = 70 हजार शंकर की मत्यु के पश्चात् एक ब्रह्म की मत्यु होती है अर्थात् क्षर पुरूष की मत्यु होती है। इतने समय का अक्षर पुरूष का एक युग होता है।

अक्षर पुरूष की आयु :- गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में कहा है:-

सहंस्र युग पर्यन्तम् अहः यत् ब्रह्मणः विदुः।
रात्रिम् युग सहंस्रान्तम् ते अहोरात्रा विदः जनाः।। (17)

अनुवाद :- आज तक सर्व अनुवादकर्ताओं ने उचित अनुवाद नहीं किया। सबने ब्रह्मा का एक हजार चतुर्युग लिखा है, यह गलत है। (देखें इसी पुस्तक के पष्ठ 204 से 357 तक में गीता अध्याय 8 श्लोक 17 के अनुवाद की फोटोकॉपी जो गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित है।)

मूल पाठ में "संहस्र युग" लिखा है, न कि संहस्र चतुर्युग। इसलिए गीता अध्याय 8 श्लोक 17 का अनुवाद ऐसे बनता है :- (ब्रह्मणः) अक्षर पुरूष का (यत) जो (अहः) दिन है वह (सहंस्रयुग प्रयन्तम्) एक हजार युग की अवधि वाला और (रात्रिम्) रात्रि को भी (युग संहस्रान्तम्) एक हजार युग की अवधि वाली जो पुरूष (विदुः) जानते हैं (ते) वे (जना) व्यक्ति (अहोरात्र) दिन-रात को (विदः) जानने वाले हैं।

भावार्थ :- इस श्लोक में "ब्रह्मा" शब्द मूल पाठ में नहीं है और न ही "चतुर युग" शब्द मूल पाठ में है, इसमें "ब्रह्मणः" शब्द है जिसका अर्थ सचिदानन्द ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म होता है, परंतु प्रकरण अनुसार ब्रह्मणः का अर्थ ब्रह्म से अन्य परब्रह्म (अक्षर ब्रह्म) भी होता है।

❖ प्रमाण :- गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ब्रह्मणः का अर्थ सचिदानन्द घन ब्रह्म किया है, वह अनुवादकों ने ठीक किया है। इस गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में आयु का प्रकरण है। इसलिए यहाँ पर "ब्रह्मण" का अर्थ "अक्षर ब्रह्म" बनता है, यहाँ अक्षर पुरूष की आयु की जानकारी दी है। अक्षर पुरूष का एक दिन उपरोक्त एक हजार युग का होता है। {70 हजार शंकर की मत्यु के पश्चात् एक क्षर पुरूष की मत्यु होती है, वह समय एक युग अक्षर पुरूष का होता है।} ऐसे बने हुए एक हजार युग का अक्षर पुरूष का दिन तथा इतनी ही रात्रि होती है, ऐसे 30 दिन रात्रि का एक महीना तथा 12 महीनों का अक्षर पुरूष का एक वर्ष

तथा ऐसे 100 वर्ष की अक्षर पुरूष की आयु है। इसके पश्चात् इसकी मृत्यु होती है, इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष दोनों नाशवान कहे हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में जो वास्तव में अविनाशी परमात्मा कहा है। यह परमात्मा सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नाश में नहीं आता।

प्रमाण :- गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में स्पष्ट है कि वह परम अक्षर ब्रह्म सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी कभी नष्ट नहीं होता।

उदाहरण :- जैसे सफेद मिट्टी के बने कप-प्लेट होते हैं, उनका ज्ञान है कि हाथ से छूटे और पक्के फर्श पर गिरे और टूटे अर्थात् नाशवान "क्षर" है, यह स्थिति तो क्षर पुरूष की जानो।

2. दूसरे कप-प्लेट स्टील (इस्पॉत) के बने हों, वे बहुत समय उपरान्त जंग लगकर नष्ट होते हैं, शीघ्र नहीं टूटते व नष्ट नहीं होते। मिट्टी के बने कप-प्लेट की तुलना में स्टील के कप-प्लेट चिर-स्थाई हैं, अविनाशी प्रतीत होते हैं, परन्तु हैं नाशवान। इसी प्रकार स्थिति "अक्षर पुरूष" की जानो।

3. तीसरे कप-प्लेट सोने के बने हों। वे कभी नष्ट नहीं होते, उनको जंग नहीं लगता। यह स्थिति "परम अक्षर ब्रह्म" की जानो। यह वास्तव में अविनाशी हैं, इसलिए प्रकरणवश "अक्षर" का अर्थ नाशवान भी होता है, वास्तव में अक्षर का अर्थ अविनाशी होता है।

उदाहरण के लिए :- गीता अध्याय 8 श्लोक 11 में मूल पाठ =

यत् अक्षरम् वेद विदः वदन्ति विशन्ति यत् यतयः बीतरागाः
यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यम चरन्ति तत् ते पदम् संग्रहेण प्रवक्ष्ये (11)

अनुवाद : इस श्लोक में "अक्षर" का अर्थ अविनाशी परमात्मा के लिए हैः-(वेद विदः) तत्वदर्शी सन्त अर्थात् वेद के तात्पर्य को जानने वाले महात्मा (यत्) जिसे (अक्षरम्) अविनाशी (वदन्ति) कहते हैं। (यतयः) साधना रत (बीतरागा) आसक्ति रहित साधक (यत्) जिस लोक में (विशन्ति) प्रवेश करते हैं और (यत्) जिस परमात्मा को (इच्छन्तः) चाहने वाले साधक (ब्रह्म चर्यम) ब्रह्मचर्य अर्थात् शिष्य परम्परा का (चरन्ति) आचरण करते हैं, (तत्) उस (पदम्) पद को (ते) तेरे लिए मैं (संग्रहेण) संक्षेप में (प्रवक्ष्ये) कहूँगा। इस श्लोक में "अक्षर" का अर्थ अविनाशी परमात्मा ठीक है।

कबीर जी ने सूक्ष्म वेद में कहा है कि -

गुरू बिन काहू न पाया ज्ञाना, ज्यों थोथा भुस छिड़े मूढ़ किसाना।
गुरू बिन वेद पढ़े जो प्राणी, समझे ना सार रहे अज्ञानी।।

प्रश्न 10 : आप पूर्ण मोक्ष किसे मानते हैं?

उत्तर :- गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में वर्णन है कि तत्वदर्शी सन्त की प्राप्ति के पश्चात् तत्वज्ञान रूपी शस्त्र से अज्ञान को काटकर अर्थात् अच्छी तरह ज्ञान

समझकर उसके पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की (सत्यलोक की) खोज करनी चाहिए। जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते अर्थात् उनका जन्म कभी नहीं होता। जिस परमात्मा ने सर्व रचना की है, केवल उसी की भक्ति पूजा करो। पूर्ण मोक्ष उसी को कहते हैं जिसकी प्राप्ति के पश्चात् पुनः जन्म न हो। जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाए।

प्रश्न 11 : क्या गीता ज्ञान दाता ब्रह्म की भक्ति से पूर्ण मोक्ष संभव है?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न 12 : गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! मुझे प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता। आप कैसे कहते हैं कि ब्रह्म भक्ति से पूर्ण मोक्ष संभव नहीं।

उत्तर : श्री देवी महापुराण (सचित्र मोटा टाईप केवल हिन्दी गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) के सातवें स्कंध पृष्ठ 562-563 पर प्रमाण है कि श्री देवी जी ने राजा हिमालय को उपदेश देते हुए कहा है कि हे राजन! अन्य सब बातों को छोड़कर मेरी भक्ति भी छोड़कर केवल एक ऊँ नाम का जाप कर, "ब्रह्म" प्राप्ति का यही एक मंत्र है, इससे संसार के उस पार जो ब्रह्म है, उसको पा जाओगे, तुम्हारा कल्याण हो। वह ब्रह्मलोक रूपी दिव्य आकाश में रहता है।

भावार्थ है कि ब्रह्म साधना का केवल एक ओम् (ऊँ) नाम का जाप है, इससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है और वह साधक ब्रह्म लोक में चला जाता है। इसी गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्म लोक सहित सर्व लोक पुनरावर्ती में हैं अर्थात् ब्रह्मलोक में गए साधक का भी पुनर्जन्म होता है। ब्रह्म की भक्ति से पूर्ण मोक्ष नहीं होता। इस गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का अनुवाद (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता में तथा अन्य प्रकाशन की गीता में) गलत किया है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 16 :-

आ ब्रह्म भुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः अर्जुन।
माम् उपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विधते।। (16)

इसका अनुवाद गलत किया है, जो इस प्रकार है :-

हे अर्जुन! ब्रह्म लोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती में हैं अर्थात् जहाँ जाने के पश्चात् पुनः संसार में लौटकर आना पड़े। परन्तु मुझे प्राप्त होकर पुनः जन्म नहीं होता। (यह अनुवाद गलत है।) देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ 204 से 357 पर अध्याय 8 श्लोक 16 का अनुवाद जो गीता प्रैस गोरखपुर वालों ने किया है, उसी की फोटोकापी लगाई है।

इसका वास्तविक अनुवाद इस प्रकार है :- ब्रह्म लोक तक सर्व लोक पुनरावर्ती में हैं अर्थात् ब्रह्म लोक में भी गए व्यक्तियों का पुनर्जन्म होता है जो यह नहीं जानते हैं। हे अर्जुन! मुझे प्राप्त होकर भी उनका पुनर्जन्म है, इस श्लोक में

"विद्यते" शब्द का अर्थ "जानना" बनता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 23 में ''विद्यात्'' शब्द का अर्थ जानना किया है। यहाँ इस श्लोक में भी ''विद्यते'' का अर्थ ''जानना'' बनता है। देखें इसी पुस्तक में इसी श्लोक की फोटोकापी में। अधिक स्पष्ट करने के लिए गीता अध्याय 8 श्लोक 15 पर्याप्त है।

मूल पाठ :—माम् उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम् अशाश्वतम्।
न आप्नुवन्ति महात्मनः संसिद्धिम परमाम् गताः।। (8/15)

अनुवाद :- (माम) मुझे प्राप्त होकर (पुनर्जन्म) पुनर्जन्म होता है जो (अशाश्वतम्) नाशवान जीवन (दुःखालयम) दुखों का घर है। (परमाम्) परम (संसिद्धिम् गता) सिद्धि को प्राप्त (महात्मयः) महात्माजन (न आप्नुवन्ति) पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते।(गीता अध्याय 8 श्लोक 15)

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मुझे प्राप्त होकर तो दुःखों का घर यह क्षणभंगुर जीवन जन्म-मरण होता है। जो महात्मा परम गति को प्राप्त हो जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

❖ विचारें :- यदि गीता अध्याय 8 श्लोक 1 से 10 तक का सारांश निकालें जो इस प्रकार है :- अर्जुन ने पूछा (गीता अध्याय 8 श्लोक 1) कि तत् ब्रह्म क्या है? गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में उत्तर दिया कि वह "परम अक्षर ब्रह्म" है।

फिर गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 8 श्लोक 5 व 7 में अपनी भक्ति करने को कहा है तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 8, 9, 10 में "परम अक्षर ब्रह्म" की भक्ति करने को कहा है। अपनी भक्ति का मन्त्र गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में बताया है कि मुझ ब्रह्म का केवल एक ओम् (ऊँ) अक्षर है। उच्चारण करके स्मरण करता हुआ जो शरीर त्याग कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। पूर्व में श्री देवी पुराण से सिद्ध कर आए हैं कि ऊँ का जाप करके ब्रह्म लोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में स्पष्ट है कि ब्रह्म लोक में गए साधक का भी पुनर्जन्म होता है। इसलिए गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में ऊँ नाम के जाप से होने वाली परम गति का वर्णन है, परन्तु गीता अध्याय 8 श्लोक 8, 9, 10 में जिस सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम दिव्य पुरूष की भक्ति करने को कहा है, उसका मन्त्र गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में लिखा है।

ऊँ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः
ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च विहिताः, पुरा।।

अनुवाद :- सचिदानन्द घन ब्रह्म की भक्ति का मन्त्र ''ऊँ तत् सत्'' है।

"ऊँ'' मन्त्र ब्रह्म यानि क्षर पुरूष का है। "तत्" यह सांकेतिक है जो अक्षर पुरूष का है। ''सत्'' मंत्र भी सांकेतिक मन्त्र है जो परम अक्षर ब्रह्म का है। इन तीनों मन्त्रों के जाप से वह परम गति प्राप्त होगी जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4

में कही है कि जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते।

यदि गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का यह अर्थ सही मानें कि मुझे प्राप्त होने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता तो गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5, गीता अध्याय 10 श्लोक 2, गलत सिद्ध हो जाते हैं जिनमें गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। मेरी उत्पत्ति को न देवता जानते, न महर्षिगण तथा न सिद्ध जानते। विचारणीय विषय यह है कि जब साध्य इष्ट का ही जन्म-मत्यु होता है तो साधक को वह मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है जिससे पुनर्जन्म नहीं होता है।

इसलिए गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का अनुवाद जो मैंने ऊपर किया है, वही सही है कि गीता ज्ञानदाता ने कहा है कि ब्रह्म लोक तक सब लोक पुनरावर्ती में हैं अर्थात् ब्रह्मलोक में गए प्राणी भी लौटकर संसार में जन्म को प्राप्त होते हैं। जो यह नहीं जानते, वे मेरी भक्ति करके भी पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। इसीलिए तो गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, उस परमेश्वर की कपा से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परमधाम अर्थात् सत्यलोक को प्राप्त होगा। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में है कि तत्वदर्शी सन्त से तत्वज्ञान प्राप्त करके उस तत्वज्ञान रुपी शस्त्र से अज्ञान को काटकर उसके पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते।

जिस परमेश्वर से संसार रुपी वक्ष की प्रवति विस्तार को प्राप्त हुई है अर्थात् जिस परमेश्वर ने संसार की रचना की है। गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि केवल उसी की भक्ति कर, सर्व का उसी से कल्याण सम्भव है।

❖ प्रमाणित हुआ कि ब्रह्म की भक्ति से पूर्ण मोक्ष सम्भव नहीं है। केवल पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) की भक्ति से ही पूर्ण मोक्ष सम्भव है।

प्रश्न 13 : ओम् (ॐ) यह मन्त्र तो ब्रह्म का जाप हुआ, फिर यह क्यों कह रहे हो कि ब्रह्म की भक्ति से पूर्ण मोक्ष नहीं होता। आपने बताया कि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''ॐ तत् सत्'' इस मन्त्र के जाप से पूर्ण मोक्ष होता है। इस मन्त्र में भी तो ओम् (ॐ) मन्त्र है।

उत्तर : जैसे इन्जीनियर या डॉक्टर बनने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। पहले प्रथम कक्षा पढ़नी पड़ती है, फिर धीरे-धीरे पाँचवीं-आठवीं, इस प्रकार दसवीं कक्षा पास करनी पड़ती है। उसके पश्चात् आगे पढ़ाई करनी होती है। फिर ट्रेनिंग करके इन्जीनियर या डॉक्टर बना जाता है। ठीक इसी प्रकार श्री ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश तथा देवी की साधना करनी पड़ती है, मैं स्वयं करता हूँ तथा अपने अनुयाइयों से कराता हूँ। यह तो पाँचवी कक्षा तक की पढ़ाई अर्थात् साधना जानें, दूसरे शब्दों में पाँचों कमलों को खोलने की साधना है और ब्रह्म की

साधना दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई जानें अर्थात् ब्रह्मलोक तक की साधना है जो ''ऊँ'' (ओम्) का जाप करना है और अक्षर पुरुष की साधना को 14वीं कक्षा की पढ़ाई अर्थात् साधना जानो जो ''तत्'' मन्त्र का जाप है। ''तत्'' मन्त्र तो सांकेतिक है, वास्तविक मन्त्र तो इससे भिन्न है जो उपदेशी को ही बताया जाता है।

परम अक्षर पुरुष की साधना इन्जीनियर या डॉक्टर की पढ़ाई अर्थात् साधना जानो जो ''सत्'' शब्द से करनी होती है। यह ''सत्'' मन्त्र भी सांकेतिक है। वास्तविक मन्त्र भिन्न है जो उपदेशी को बताया जाता है। इसको सारनाम भी कहते हैं।

इसलिए अकेले ''ब्रह्म'' के नाम ओम् (ऊँ) से पूर्ण मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। ''ऊँ'' नाम का जाप ब्रह्म का है। इसकी साधना से ब्रह्म लोक प्राप्त होता है जिसके विषय में गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्म लोक में गए साधक भी पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। पुनर्जन्म है तो पूर्ण मोक्ष नहीं हुआ जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि परमात्मा के उस परमपद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी लौटकर पुनर्जन्म में नहीं आता। वह पूर्ण मोक्ष पूर्ण गुरु से शास्त्रानुकूल भक्ति प्राप्त करके ही संभव है। विश्व में वर्तमान में मेरे (संत रामपाल दास) अतिरिक्त किसी के पास नहीं है।

प्रश्न 14 :- परमात्मा एक है या अनेक हैं?

उत्तर :- कुल का मालिक एक है।

प्रश्न 15 :- वह परमात्मा कौन है जो कुल का मालिक है, कहाँ प्रमाण है?

उत्तर :- वह परमात्मा ''परम अक्षर ब्रह्म'' है जो कुल का मालिक है।

प्रमाण :- श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में है। गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 का सारांश व भावार्थ है कि ''उल्टे लटके हुए वृक्ष के समान संसार को जानो। जैसे वृक्ष की जड़ें तो ऊपर हैं, नीचे तीनों गुण रुपी शाखाएं जानो। गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में यह भी स्पष्ट किया है कि तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है? तत्वदर्शी सन्त वह है जो संसार रुपी वृक्ष के सर्वांग (सभी भाग) भिन्न-भिन्न बताए।

विशेष :- वेद मन्त्रों की जो आगे फोटोकॉपियाँ लगाई हैं, ये आर्यसमाज के आचार्यों तथा महर्षि दयानंद द्वारा अनुवादित हैं और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा प्रकाशित हैं। जिनमें वर्णन है कि परमेश्वर स्वयं पृथ्वी पर सशरीर प्रकट होकर कवियों की तरह आचरण करता हुआ सत्य अध्यात्मिक ज्ञान सुनाता है। (प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 86 मन्त्र 26-27, ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 82 मन्त्र 1-2, सुक्त 96 मन्त्र 16 से 20, ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 94 मन्त्र 1, ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 95 मन्त्र 2, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 20 मन्त्र 1, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3 में) इन मन्त्रों में कहा है कि परमात्मा सर्व भवनों

अर्थात् लोकों के उपर के लोक में विराजमान है। जब-जब पृथ्वी पर अज्ञान की वृद्धि होने से अधर्म बढ़ जाता है तो परमात्मा स्वयं सशरीर चलकर पृथ्वी पर प्रकट होकर यथार्थ अध्यात्म ज्ञान का प्रचार लोकोक्तियों, शब्दों, चौपाईयों, साखियों, कविताओं के माध्यम से कवियों जैसा आचरण करके घूम-फिरकर करता है। जिस कारण से एक प्रसिद्ध कवि की उपाधि भी प्राप्त करता है। कृप्या देखें उपरोक्त मन्त्रों की फोटोकॉपी इसी पुस्तक के पृष्ठ 104-119 पर।

परमात्मा ने अपने मुख कमल से ज्ञान बोलकर सुनाया था। उसे सूक्ष्म वेद कहते हैं। उसी को 'तत्व ज्ञान' भी कहते हैं। तत्वज्ञान का प्रचार करने के कारण परमात्मा ''तत्वदर्शी सन्त'' भी कहलाने लगता है। उस तत्वदर्शी सन्त रूप में प्रकट परमात्मा ने संसार रुपी वृक्ष के सर्वांग इस प्रकार बताये:-

कबीर, अक्षर पुरुष एक वृक्ष है, क्षर पुरुष वाकि डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रुप संसार।।

भावार्थ : वृक्ष का जो हिस्सा पृथ्वी से बाहर दिखाई देता है, उसको तना कहते हैं। जैसे संसार रुपी वृक्ष का तना तो अक्षर पुरुष है। तने से मोटी डार निकलती है वह क्षर पुरुष जानो, डार के मानो तीन शाखाऐं निकलती हों, उनको तीनों देवता (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव) हैं तथा इन शाखाओं पर टहनियों व पत्तों को संसार जानों। इस संसार रुपी वृक्ष के उपरोक्त भाग जो पृथ्वी से बाहर दिखाई देते हैं। मूल (जड़ें), जमीन के अन्दर हैं। जिनसे वृक्ष के सर्वांगों का पोषण होता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरुष कहे हैं। श्लोक 16 में दो पुरुष कहे हैं ''क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष'' दोनों की स्थिति ऊपर बता दी है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में भी कहा है कि क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष दोनों नाशवान हैं। इनके अन्तर्गत जितने भी प्राणी हैं, वे भी नाशवान हैं। परन्तु आत्मा तो किसी की भी नहीं मरती। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम तो क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष से भिन्न है जिसको परमात्मा कहा गया है। इसी प्रभु की जानकारी गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में है जिसको ''परम अक्षर ब्रह्म'' कहा है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में इसी का वर्णन है। यही प्रभु तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। यह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। मूल से ही वृक्ष की परवरिश होती है, इसलिए सबका धारण-पोषण करने वाला परम अक्षर ब्रह्म है। जैसे पूर्व में गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 में बताया है कि ऊपर को जड़ (मूल) वाला, नीचे को शाखा वाला संसार रुपी वृक्ष है। जड़ से ही वृक्ष का धारण-पोषण होता है। इसलिए परम अक्षर ब्रह्म जो संसार रुपी वृक्ष की जड़ (मूल) है, यही सर्व पुरुषों (प्रभुओं) का पालनहार इनका विस्तार (रचना करने वाला = सृजनहार) है। यही कुल का मालिक है।

प्रश्न 16 : क्या रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर (शिव) की पूजा (भक्ति) करनी चाहिए?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न 17 : कहाँ प्रमाण है कि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर (शिव) की पूजा (भक्ति) नहीं करनी चाहिए?

उत्तर : श्री मद्भगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, 20 से 23 तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 23-24, गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में प्रमाण है कि जो व्यक्ति रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव की भक्ति करते हैं, वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मुझे भी नहीं भजते। (यह प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में है। फिर गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 20 से 23 तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 23-24 में यही कहा है और क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष तथा परम अक्षर पुरुष गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में जिनका वर्णन है), को छोड़कर श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी अन्य देवताओं में गिने जाते हैं। इन दोनों अध्यायों (गीता अध्याय 7 तथा अध्याय 9 में) में ऊपर लिखे श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो साधक जिस भी उद्देश्य को लेकर अन्य देवताओं को भजते हैं, वे भगवान समझकर भजते हैं। उन देवताओं को मैंने कुछ शक्ति प्रदान कर रखी है। देवताओं के भजने वालों को मेरे द्वारा किए विधान से कुछ लाभ मिलता है। परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान होता है। देवताओं को पूजने वाले देवताओं के लोक में जाते हैं। मेरे पुजारी मुझे प्राप्त होते हैं।

गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि शास्त्रविधि को त्यागकर जो साधक मनमाना आचरण करते हैं अर्थात् जिन देवताओं पितरों, यक्षों, भैरों-भूतों की भक्ति करते हैं और मनकल्पित मन्त्रों का जाप करते हैं, उनको न तो कोई सुख होता है, न कोई सिद्धि प्राप्त होती है तथा न उनकी गति अर्थात् मोक्ष होता है। इससे तेरे लिए हे अर्जुन! कर्तव्य (जो भक्ति करनी चाहिए) और अकर्त्तव्य (जो भक्ति न करनी चाहिए) की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। गीता अध्याय 17 श्लोक 1 में अर्जुन ने पूछा कि हे कृष्ण! (क्योंकि अर्जुन मान रहा था कि श्री कृष्ण ही ज्ञान सुना रहा है, परन्तु श्री कृष्ण के शरीर में प्रेत की तरह प्रवेश करके काल (ब्रह्म) ज्ञान बोल रहा था जो पहले प्रमाणित किया जा चुका है)। जो व्यक्ति शास्त्रविधि को त्यागकर अन्य देवताओं आदि की पूजा करते हैं, वे स्वभाव में कैसे होते हैं? गीता ज्ञान दाता ने उत्तर दिया कि सात्विक व्यक्ति देवताओं का पूजन करते हैं। राजसी व्यक्ति यक्षों व राक्षसों की पूजा तथा तामसी व्यक्ति प्रेत आदि की पूजा करते हैं। ये सब शास्त्रविधि रहित कर्म हैं। फिर गीता अध्याय 17 श्लोक 5-6 में कहा है कि जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित केवल मनकल्पित घोर तप को

तपते हैं, वे दम्भी (ढ़ोंगी) हैं और शरीर के कमलों में विराजमान शक्तियों को तथा मुझे भी क्रश करने वाले राक्षस स्वभाव के अज्ञानी जान।

सूक्ष्मवेद में भी परमेश्वर जी ने कहा है कि :-

''कबीर, माई मसानी सेढ़ शीतला भैरव भूत हनुमंत।
परमात्मा से न्यारा रहै, जो इनको पूजंत।।
राम भजै तो राम मिलै, देव भजै सो देव।
भूत भजै सो भूत भवै, सुनो सकल सुर भेव।।''

स्पष्ट हुआ कि श्री ब्रह्मा जी (रजगुण), श्री विष्णु जी (सत्गुण) तथा श्री शिवजी (तमगुण) की पूजा (भक्ति) नहीं करनी चाहिए तथा इसके साथ-साथ भूतों, पितरों की पूजा, (श्राद्ध कर्म, तेरहवीं, पिण्डोदक क्रिया, सब प्रेत पूजा होती है) भैरव तथा हनुमान जी की पूजा भी नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न 18 : क्या क्षर पुरुष (ब्रह्म) की पूजा (भक्ति) करनी चाहिए या नही?

उत्तर : यदि पूर्ण मोक्ष चाहते हो जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में बताया है कि ''तत्वज्ञान प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर फिर कभी संसार में जन्म नहीं लेता।'' तो क्षर पुरुष (ब्रह्म) ''जो संसार रुपी वृक्ष की डार है'' की पूजा (भक्ति) नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न 19 : पूर्व में जितने ऋषि-महर्षि हुए हैं, वे सब ब्रह्म की पूजा करते और कराते थे। ''ओम्'' (ॐ) नाम को सबसे बड़ा तथा उत्तम मन्त्र जाप करने का बताते थे, क्या वे अज्ञानी थे? यदि ब्रह्म की भक्ति उत्तम नहीं है तो गीता में कोई प्रमाण बताऐं।

उत्तर : पूर्व में बताया गया है कि यथार्थ अध्यात्म ज्ञान स्वयं परमेश्वर (परम अक्षर ब्रह्म) धरती पर सशरीर प्रकट होकर ठीक-ठीक बताता है। देखें प्रमाण वेद मन्त्रों में इसी पुस्तक के पृष्ठ 104 पर। परमेश्वर द्वारा बताए ज्ञान को सूक्ष्मवेद (तत्वज्ञान) कहा गया है। तत्वज्ञान में परमात्मा ने बताया है कि :-

गुरु बिन काहू न पाया ज्ञाना, ज्यों थोथा भुस छड़े मूढ़ किसाना।
गुरु बिन बेद पढ़ै जो प्राणी, समझे ना सार रहे अज्ञानी।।

जिन ऋषियों व महर्षियों को सत्गुरु नहीं मिला। उनकी यह दशा थी कि वेद पढ़ते थे परन्तु वेदों का सार नहीं समझ सके। उदाहरण के लिये श्री देवी पुराण (सचित्र मोटा टाईप, गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) के पृष्ठ 414 पर (चौथे स्कन्द में) लिखा है कि सत्ययुग के ब्राह्मण (महर्षि) वेद के पूर्ण विद्वान होते थे और श्री देवी (दुर्गा) की पूजा करते थे।

❖ **विचार करें :- श्रीमद्भगवत गीता चारों वेदों का सारांश है। आप जी गीता जी को तो जानते ही हो, पढ़ते भी होंगे। क्या गीता में कहीं लिखा है कि**

'श्री देवी' की पूजा करो? इसी प्रकार चारों वेदों में कहीं नहीं लिखा है कि दुर्गा (श्री देवी) की पूजा करो, तो क्या समझा वेदों को उन महर्षियों ने? क्या खाक विद्वान थे सत्ययुग के महर्षि? उन्हीं महर्षियों का मनमाना विधान है कि ऊँ (ओम्) नाम सबसे बड़ा अर्थात् उत्तम है जो कहते थे कि ब्रह्म पूजा (भक्ति) सर्वश्रेष्ठ है। प्रिय पाठको! जो ब्रह्म की पूजा इष्ट देव मानकर करते थे, वे अज्ञानी थे। उनकी ब्रह्म साधना अनुत्तम गति देने वाली है।

गीता में प्रमाण : श्रीमद्भगवत् अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में तो बताया है कि जो तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शंकर) की पूजा करने वाले राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मुझे भी नहीं भजते। यह गीता ज्ञान दाता ने कहा है। फिर गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 16 से 18 तक में गीता ज्ञान दाता (ब्रह्म) ने कहा है कि मेरी भक्ति चार प्रकार से करते हैं। अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु तथा ज्ञानी। फिर कहा कि ज्ञानी मुझे अच्छा लगता है, ज्ञानी को मैं अच्छा लगता हूँ। (गीता अध्याय 7 श्लोक 18) इस श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि ये ज्ञानी आत्मा हैं तो उदार (अच्छी) परन्तु ये सब मेरी अनुत्तम गति अर्थात् घटिया गति में आश्रित हैं। इस श्लोक (गीता अध्याय 7 श्लोक 18) में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म स्वयं स्वीकार कर रहा है कि मेरी भक्ति से होने वाली गति अनुत्तम (अश्रेष्ठ = घटिया) है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में कहा है कि :-

बहुनाम्, जन्मानाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः।।

अनुवाद :- गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने कहा है कि मेरी भक्ति बहुत-बहुत जन्मों के अन्त में कोई ज्ञानी आत्मा करता है अन्यथा अन्य देवी देवताओं व भूत, पितरों की भक्ति में जीवन नाश करते रहते हैं। गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति से होने वाले लाभ अर्थात् गति को भी गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम (घटिया) बता दिया है। इसलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में कह रहा है कि :-

यह बताने वाला महात्मा मुश्किल से मिलता है कि ''वासुदेव'' ही सब कुछ है। यही सबका सृजनहार है। यही पापनाशक, पूर्ण मोक्षदायक, यही पूजा के योग्य है। यही (वासुदेव ही) कुल का मालिक परम अक्षर ब्रह्म है। केवल इसी की भक्ति करो, अन्य की नहीं।

गीता ज्ञान दाता ने भी स्वयं कहा है कि ''हे अर्जुन! तू सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की कृपा से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परमधाम (सत्यलोक) को प्राप्त होगा।'' (यह गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में प्रमाण है) फिर गीता अध्याय 18 श्लोक 46 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि ''जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह समस्त जगत

व्याप्त है। उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्म करते-करते पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। फिर गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वज्ञान को समझकर उसके पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए। जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर संसार में नहीं आता, जिस परमेश्वर से संसार रुपी वक्ष की प्रवत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व की रचना की है, उसी की पूजा करो। इससे सिद्ध हुआ कि उन ऋषियों को वेद का गूढ़ रहस्य समझ नहीं आया। वे अज्ञानी रहे।

प्रश्न 20 : गीता ज्ञान दाता ने अपनी गति को अनुत्तम क्यों कहा?

उत्तर : गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 2 श्लोक 12 गीता अध्याय 4 श्लोक 5, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। मेरी उत्पत्ति को ऋषि-महर्षि तथा देवता नहीं जानते। तू और मैं तथा ये राजा व सैनिक बहुत बार पहले भी जन्मे हैं, आगे भी जन्मेंगे। पाठक जन विचार करें! जब ब्रह्म कह रहा है कि मेरा भी जन्म-मरण होता है तो ब्रह्म के पुजारी को गीता अध्याय 15 श्लोक 4 वाली गति (मोक्ष) प्राप्त नहीं हो सकती जिसमें जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाता है। जब तक जन्म-मरण है, तब तक परमशान्ति नहीं हो सकती। उसके लिए गीता ज्ञानदाता ने असमर्थता व्यक्त की है। गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि परमशान्ति के लिए उस परमेश्वर (परम अक्षर ब्रह्म) की शरण में जा, उसी की कप्या से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। गीता अध्याय 8 श्लोक 5 व 7 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरी भक्ति करेगा तो युद्ध भी करना पड़ेगा, जहाँ युद्ध है, वहाँ शान्ति नहीं होती, परम शान्ति का घर दूर है। इसलिए गीता ज्ञान दाता ने अपनी गति को (ॐ नाम के जाप से होने वाला लाभ) अनुत्तम (घटिया) बताया है।

प्रश्न 21 : आपने प्रश्न नं. 13 के उत्तर में कहा है कि पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश तथा देवी और क्षर ब्रह्म व अक्षर ब्रह्म की साधना करनी पड़ती है। दूसरी ओर कह रहे हो कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव अन्य देवता हैं, क्षर ब्रह्म भी पूजा (भक्ति) योग्य नहीं है। केवल परम अक्षर ब्रह्म की ही पूजा (भक्ति) करनी चाहिए?

उत्तर : मैं नहीं कह रहा, आपके सद्ग्रन्थ कह रहे हैं, पहले तो यह स्पष्ट करते हैं कि पूजा तथा साधना में क्या अन्तर है?

❖ प्राप्य वस्तु की चाह पूजा कही जाती है तथा उसको प्राप्त करने के प्रयत्न को साधना कहते हैं।

उदाहरण : जैसे हमें जल प्राप्त करना है। यह हमारा प्राप्य है। हमें जल की चाह है। जल की प्राप्ति के लिए हैण्डपम्प लगाना पड़ेगा। हैण्डपम्प लगाने के

लिए जो-जो उपकरण प्रयोग किए जाएंगे, बोकी लगाई जाएगी, यह प्रयत्न है। इसी प्रकार परमेश्वर का वह परमपद प्राप्त करना हमारी चाह है, जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर संसार में नहीं आता। हमारा प्राप्य परमेश्वर तथा उनका सनातन परम धाम है। उसको प्राप्त करने के लिए किया गया नाम जाप हवन-यज्ञ आदि-2 साधना है। उस साधना से पूज्य वस्तु परमात्मा प्राप्त होगा। जैसे प्रश्न 13 के उत्तर में स्पष्ट किया है, वही सटीक उदाहरण है। उस पूर्ण मोक्ष के लिए तीन बार में दीक्षा क्रम पूरा करना होता है।

1. प्रथम नाम दीक्षा = ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, देवी के मन्त्रों की साधना दी जाती है।

2. दूसरी बार में क्षर ब्रह्म तथा अक्षर ब्रह्म के दो अक्षर मन्त्र जाप दिए जाते हैं जिसको सन्तों ने ''सत् नाम'' कहा है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में तीन नाम हैं, ''ओम्-तत्-सत्'' इस सतनाम में दो अक्षर होते हैं, एक ''ओम्'' (ॐ) दूसरा ''तत्'' है। (यह सांकेतिक अर्थात् गुप्त नाम है जो उपदेश के समय उपदेशी को ही बताया जाता है)

3. तीसरी बार में सारनाम की दीक्षा दी जाती है जिस मन्त्र को गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''सत्'' कहा है, यह भी सांकेतिक है। उपदेश लेने वाले को दीक्षा के समय बताया जाता है। इस प्रकार पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रश्न 22 : जो साधना हम पहले कर रहे हैं, क्या वह त्यागनी पड़ेगी?

उत्तर : यदि शास्त्रविधि रहित है तो त्यागनी पड़ेगी। यदि अनाधिकारी से दीक्षा ले रखी है, उसका कोई लाभ नहीं होना। पूर्ण गुरु से साधना की दीक्षा लेनी पड़ेगी।

प्रश्न 23 : गीता अध्याय 18 श्लोक 47 में तथा गीता अध्याय 3 श्लोक 35 में कहा है :-

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मः, भयावहः।। (गीता अध्याय 3 श्लोक 35)

अच्छी प्रकार आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

उत्तर : यह अनुवाद गलत है। यदि यह बात सही है कि अपना धर्म चाहे गुणरहित हो तो भी उसे नहीं त्यागना चाहिए तो फिर श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान 18 अध्यायों के 700 श्लोकों में लिखने की क्या आवश्यकता थी? एक यह श्लोक पर्याप्त था कि अपनी साधना जैसी भी हो उसे करते रहो, चाहे वह गुणरहित (लाभ रहित) भी क्यों न हो। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में यह क्यों कहा कि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव की पूजा राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख लोग मुझे नहीं

भजते। गीता ज्ञान दाता ने उन साधकों से उनका धर्म अर्थात् धार्मिक साधना त्यागने को कहा है तथा गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 20 से 23 में कहा है कि जो मेरी पूजा न करके अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, वे अज्ञानी हैं। उनकी साधना से शीघ्र समाप्त होने वाला सुख (स्वर्ग समय) प्राप्त होता है। फिर अपनी धार्मिक पूजा अर्थात् धर्म भी त्यागने को कहा है। पूर्ण लाभ के लिए परम अक्षर ब्रह्म का धर्म अर्थात् धार्मिक साधना ग्रहण करने के लिए कहा है।

❖ गीता अध्याय 3 श्लोक 35 का यथार्थ अनुवाद इस प्रकार है :-

अनुवाद : (विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्) दूसरों के गुण रहित अर्थात् लाभ रहित अच्छी प्रकार चमक-धमक वाले धर्म अर्थात् धार्मिक कर्म से (स्वर्धमः) अपना शास्त्रविधि अनुसार धार्मिक कर्म (श्रेयान्) अति उत्तम है। (स्वधर्मे) अपने शास्त्रविधि अनुसार धर्म-कर्म के संघर्ष में (निधनम्) मरना भी (श्रेयः) कल्याणकारक है। (परधर्म) दूसरों का धार्मिक कर्म (भयावहः) भय को देने वाला है। भावार्थ है कि जैसे जागरण वगैरह होता है तो उसमें बड़ी सुरीली तान में सुरीले गीत गाए जाते हैं। तड़क-भड़क भी होती है। अपने शास्त्रविधि अनुसार धर्म-कर्म में केवल नाम-जाप या सामान्य तरीके से आरती की जाती है। किसी भी वेद या गीता में श्री देवी जी की पूजा तथा जागरण करने की आज्ञा नहीं है। जिस कारण शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण हुआ, इसलिए व्यर्थ है। दूसरों का शास्त्रविधि रहित धार्मिक कर्म देखने में अच्छा लगता है, उसमें लोग-दिखावा अधिक होता है तो सत्य साधना करने वाले को दूसरों के धार्मिक कर्म को देखकर डर बन जाता है कि कहीं हमारी भक्ति ठीक न हो। परन्तु तत्व ज्ञान को समझने के पश्चात् यह भय समाप्त हो जाता है। तत्व ज्ञान में बताया है कि :-

दुर्गा ध्यान पड़े जिस बगड़म, ता संगति डूबै सब नगरम्।
दम्भ करें डूंगर चढ़ै, अन्तर झीनी झूल।
जग जाने बन्दगी करें, बोवें सूल बबूल।।

इसलिए विगुण अर्थात् लाभरहित धार्मिक साधना को त्यागकर सत्य साधना शास्त्रविधि अनुसार करने से ही कल्याण होगा।

प्रश्न 24 :- मैंने पारखी संत श्री अभिलाष दास के विचार सुने थे। वे कह रहे थे कि संसार का कोई रचने वाला भगवान वगैरह नहीं है। यह नर-मादा के संयोग से बनता है। फिर समाप्त हो जाता है। कोई भगवान नहीं है। जीव ही ब्रह्म है, जीव ही कर्ता है, अभिलाष दास के ये विचार उचित हैं या अनुचित?

उत्तर :- इसका उत्तर श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 6 से 10 में विस्तार से दिया गया है। कहा है कि जो आसुरी प्रकति के लोग होते हैं, वे कहा करते हैं कि संसार बिना ईश्वर के है, स्त्री-पुरुष से उत्पन्न है अर्थात् नर-मादा से उत्पन्न है। इसका कोई कर्ता नहीं है। ऐसे व्यक्ति संसार का नाश अर्थात् बुरा

करने के लिए ही जन्म लेते हैं। वास्तविकता यह है कि परमात्मा सर्व संसार का सृजनहार है। जीव ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म का अर्थ प्रभु (स्वामी) होता है। जैसे (1) ब्रह्म (जिसको क्षर पुरुष भी कहा गया है) 21 ब्रह्माण्डों का स्वामी है। (2) अक्षर ब्रह्म (जिसको अक्षर पुरुष भी कहा गया है, गीता अध्याय 15 श्लोक 16) यह 7 शंख ब्रह्माण्डों का स्वामी है। (3) पूर्ण ब्रह्म (जिसको गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म कहा है) असंख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी है। यह कुल का मालिक है। यह कहना कि कोई भगवान नहीं है, संसार केवल स्त्री-पुरुष या नर-मादा से उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है। जीव ही कर्ता है अर्थात् जीव ही ब्रह्म है, यह पूर्णतया अनुचित है।

प्रश्न 25 : श्रीमद्भगवत् गीता में ज्ञान दाता ने अध्याय 8 श्लोक 5 तथा 7 में कहा है कि जो पुरुष अन्त काल में भी मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है, वह मुझे प्राप्त होता है। इसलिए अर्जुन! सब समय में मेरा स्मरण कर, युद्ध भी कर, मुझे ही प्राप्त होगा। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि उस परमात्मा की शरण में जा। गीता ज्ञान दाता ने घुमा-फिराकर कहा है कि मेरी ही साधना स्मरण कर, आप अन्य परमात्मा बता रहे हो, वह विश्वसनीय नहीं है। क्या गीता में कहीं और भी लिखा है गीता ज्ञान दाता से अन्य परमात्मा की भक्ति साधना करने के लिए?

उत्तर : गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में गीता ज्ञान दाता ने बताया है कि जो साधक केवल जरा (वृद्ध अवस्था) तथा मरण (मृत्यु) से छूटने के लिए प्रयत्नशील हैं, वे ''तत् ब्रह्म'' से परिचित हैं। अर्जुन ने गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में पूछा कि ''तत् ब्रह्म'' क्या है? गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 8 श्लोक 3 में बताया कि वह ''परम अक्षर ब्रह्म'' है। गीता अध्याय 8 श्लोक 5 व 7 में तो गीता ज्ञान दाता ने अपनी साधना यानि स्मरण करने को कहा है। (गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 2 श्लोक 12 तथा अध्याय 4 श्लोक 5 व अध्याय 10 श्लोक 2 में अपना जन्म-मरण भी कहा है। कहा है कि मेरी भक्ति से परमशान्ति नहीं हो सकती, युद्ध भी करना पड़ेगा। गीता ज्ञान दाता का यह भी कहना है कि जन्म-मरण में सदा रहेगा।) तुरन्त ही गीता अध्याय 8 श्लोक 8, 9 तथा 10, इन तीन श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य ''परम अक्षर ब्रह्म'' की भक्ति करने को कहा है कि हे पार्थ! परमेश्वर की साधना के अभ्यास योग से युक्त अन्य किसी देव या प्रभु में अपनी आस्था न रखकर एक परमेश्वर का अनन्य चित्त से स्मरण करता हुआ मनुष्य (परमम् दिव्यम् पुरुषम् याति) उस परम अलौकिक परमेश्वर अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। (गीता अध्याय 8 श्लोक 8)

जो साधक परम अक्षर ब्रह्म, अनादि, सब का संचालक, कन्ट्रोलर, सूक्ष्म से सूक्ष्म सबके धारण-पोषण करने वाले अचिन्त स्वरुप सूर्य के समान प्रकाशमान

अविद्या से अति परे शुद्ध चिदानन्द परमेश्वर का स्मरण करता है। (गीता अध्याय 8 श्लोक 9)

वह भक्ति साधनायुक्त साधक अन्तकाल में भी भक्ति की शक्ति से भृकुटी के मध्य में प्राणों अर्थात् श्वांसों को अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस (दिव्य परम पुरुषम) अलौकिक परम पुरुष अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म (जो गीता ज्ञान दाता से अन्य है) को ही प्राप्त होता है। यह प्रमाण गीता के इसी अध्याय 8 श्लोक 11 से 22 में भी है। गीता अध्याय 8 श्लोक 11 में कहा है कि तत्वदर्शी अर्थात् वेद को ठीक से जानने वाले जिसे अविनाशी कहते हैं, उस परम पद को तेरे लिए कहता हूँ। गीता अध्याय 8 श्लोक 12 में वर्णन है कि उसको प्राप्त करने की साधना श्वांसों से नाम-स्मरण करने से होती है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मुझ ब्रह्म का केवल एक ओम् (ॐ) अक्षर है, इसका स्मरण मरते दम तक करना है। वह इस मन्त्र से होने वाली परम गति अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्म लोक में गए साधक भी पुनः लौटकर संसार में जन्म लेते हैं, फिर मरते हैं। यह पूर्ण मोक्ष नहीं है। गीता अध्याय 8 श्लोक 14 में कहा है कि जो मेरी साधना स्मरण करता है, उसके लिए मैं सुलभ हूँ।

गीता अध्याय 8 श्लोक 15 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मुझे प्राप्त होकर तो सदा पुनर्जन्म होता है जो दुःखों का घर, क्षण भंगुर जीवन है और जो साधक परम अक्षर ब्रह्म की साधना भक्ति करते हैं वे परम सिद्धि को प्राप्त होकर अमर हो जाते हैं, वे पुनः जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते।

गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि ब्रह्मलोक तक सब लोक पुनरावर्ती में हैं अर्थात् ब्रह्मलोक तक सब लोकों में गए साधक सदा जन्म-मृत्यु के चक्र में रहते हैं। हे अर्जुन! जो यह नहीं जानते, वे मुझे प्राप्त होकर भी जन्म-मृत्यु के चक्र में सदा रहते हैं क्योंकि गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में स्वयं कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। आगे भी होते रहेंगे, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। मेरी उत्पत्ति (जन्म) को न देवता जानते हैं, न महर्षिजन और न सिद्ध जानते हैं, परंतु परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करके परम सिद्धि यानि परमगति को प्राप्त महात्माजन पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते।

गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में अक्षर पुरुष (पर ब्रह्म) के दिन-रात का वर्णन है। बताया है कि (ब्रह्मणः) परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है, इतनी ही रात्रि होती है। परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष का वर्णन गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में है। उसी का प्रकरण गीता अध्याय 8 श्लोक 17-18-19 में है।

नोट : अधिक जानकारी के लिए कृप्या पढ़ें प्रश्न नं. 9 में गीता अध्याय 8 श्लोक 17 से 19 में अक्षर पुरुष की जानकारी है, इसे भी अव्यक्त कहा गया है। इसका दिन समाप्त होने के पश्चात् सर्व प्राणी जो क्षर पुरूष के 21 ब्रह्माण्डों में हैं, प्रलय यानि नाश को प्राप्त हो जाते हैं, रात्रि पूरी होने के पश्चात् पुनः दिन में संसार में जीव उत्पन्न होते हैं।

गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि यह अक्षर पुरुष भी अव्यक्त कहा जाता है। परंतु इस अव्यक्त से दूसरा जो विलक्षण सनातन अव्यक्त भाव है, वह परम दिव्य पुरुष अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म तो सब प्राणियों के (क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष तथा इनके अन्तर्गत जितने भी जीव हैं, इन सब के) नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता अर्थात् वास्तव में अनिवाशी है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 21 में कहा है कि जो अव्यक्त (अक्षर) अविनाशी इस नाम से कहा गया है, उस परम पुरुष की प्राप्ति को परम गति कहते हैं। जिस सनातन अव्यक्त परम पुरुष को प्राप्त होकर वापिस जन्म-मरण में नहीं आते। वह मेरे धाम से श्रेष्ठ धाम है। पहले मैं भी उसी में रहता था। इसलिए कहा है कि वह मेरा भी परम धाम है क्योंकि गीता ज्ञान दाता भी उस परम सनातन धाम अर्थात् सत्यलोक से निष्कासित है। (इसकी पूर्ण जानकारी के लिए कृप्या पढ़ें सृष्टि रचना इसी पुस्तक के पृष्ठ 120 से 187 तक।)

गीता अध्याय 8 श्लोक 22 में स्पष्ट है, गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्वभूत अर्थात् प्राणी हैं, (क्षर पुरुष तथा इसके 21 ब्रह्माण्डों के प्राणी तथा अक्षर पुरुष तथा सात संख ब्रह्माण्डों में इसके अन्तर्गत जितने प्राणी आते हैं, वे तथा परम अक्षर पुरुष के असंख्य ब्रह्माण्डों में जितने प्राणी हैं, वे परम अक्षर ब्रह्म के अन्तर्गत हैं।) और जिस परम अक्षर पुरुष से यह सर्व जगत परिपूर्ण अर्थात् जिसने सर्व को उत्पन्न किया है, जिसकी सत्ता सर्व के ऊपर है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्य भक्ति से प्राप्त करने योग्य है। भावार्थ है कि परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए केवल इसी की भक्ति (पूजा) करनी चाहिये। अन्य किसी प्रभु में आस्था नहीं रखनी चाहिए। इसी को अनन्य भक्ति अर्थात् पूजा कहते हैं।

केवल परम अक्षर ब्रह्म की पूजा करना अनन्य भक्ति कहलाती है। यदि गीता अध्याय 8 श्लोक 22 का सही अनुवाद करें तो स्पष्ट है कि :-

पुरूषः, सः, परः, पार्थ, भक्तया, लभ्यः, तु, अनन्या,
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्

अनुवाद :- (सः) वह (परः) दूसरा (पुरुषः) परमात्मा तो अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है, जिसके अन्तर्गत सर्व प्राणी हैं और जिसने सर्व जगत की उत्पत्ति की है, जो सर्व का पालन कर्ता है। सरलार्थ समाप्त (गीता अध्याय 8 श्लोक 22) इसके

मूल पाठ में यानि संस्कत में लिखा है = सः परः पुरुषः = पर का अर्थ गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में परे किया है यानि अन्य। यहाँ (गीता अध्याय 8 श्लोक 22 में) भी अन्य लिया जाता तो स्पष्ट हो जाता है कि गीता ज्ञान दाता से अन्य कोई समर्थ प्रभु है। जिसकी शरण में जाने के लिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता ने श्रीमद्भगवत् गीता में अनेकों स्थानों पर अपने से अन्य परमेश्वर (परम अक्षर ब्रह्म) की भक्ति करने को कहा है। उसी से पूर्ण मोक्ष सम्भव है। जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाता है। प्रमाण :- गीता अध्याय 7 श्लोक 19, 29, गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61,62,66, गीता अध्याय 3 श्लोक 9, गीता अध्याय 8 श्लोक 3, 8, 9, 10, 20 से 22, गीता अध्याय 4 श्लोक 31-32, गीता अध्याय 15 श्लोक 1,4,17, गीता अध्याय 2 श्लोक 17,59, गीता अध्याय 3 श्लोक 14,15,19 और गीता अध्याय 5 श्लोक 14,15,16,19,20,24,25,26 में भी यह प्रमाण है।

प्रश्न 26 :- हमने सर्व सन्तों तथा हमारे हिन्दू धर्म के धर्मगुरूओं से तो यही सुना है कि गीता का ज्ञान श्री कष्ण जी ने अर्जुन को सुनाया। हमें तो यही बताया गया है कि श्री कष्ण जी पूर्ण परमात्मा हैं। श्री विष्णु जी ही स्वयं अवतार धारण करके देवकी जी के गर्भ से जन्मे थे। इनके अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है। आप जी के सत्संग सुने हैं, उनमें आप ने बहुत अटपटी-सी बात कही है कि गीता ज्ञान दाता से अन्य है पूर्ण परमात्मा। उसका प्रमाण शास्त्र में दिखाओ-बताओ तो विश्वास हो सकता है।

उत्तर :- आपजी को उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर में यही प्रमाण दिखाए हैं। आपको अभी भी शंका है। उसका कारण है कि पहली बात तो यह कि हिन्दू धर्मगुरूओं को अपने ही शास्त्रों का ज्ञान नहीं। यदि ज्ञान होता तो उपरोक्त शास्त्रविरूद्ध व्याख्या आप जी को नहीं सुनाते। दूसरी बात यह है कि धार्मिक गुरू एक अध्यापक के समान होता है। जिस अध्यापक को अपने पाठ्यक्रम (सलेबस) का ही ज्ञान नहीं हैं तो वह शिक्षक अज्ञानी माना जाता है तथा विद्यार्थियों के जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहा है क्योंकि सलेबस के विपरीत ज्ञान विद्यार्थियों को रटा रहा है। ऐसे शिक्षक से बचना चाहिए। उसको त्याग देने में ही विद्यार्थियों का हित है।

आपको श्रीमद्भगवत् गीता में से ढ़ेर सारे प्रमाण बताते हैं कि पूर्ण परमात्मा गीता ज्ञान दाता से अन्य है, वही उपासना योग्य है। उसी की भक्ति से पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। यहाँ गीता के कुछ श्लोक लिखता हूँ, आप इनको गीता शास्त्र में स्वयं देख सकते हैं जो इस पुस्तक में पष्ठ 204 से 357 तक श्लोकों की फोटोकॉपी लगाई हैं। यथार्थ रूप में गीता के अनुवाद को जानने के लिए मेरे द्वारा किया गया श्री मद्भगवत् गीता का संपूर्ण श्लोकों का अनुवाद प्राप्त करें।

पुस्तक का नाम है "गहरी नजर गीता में", इसको हमारी Web Site से डाउनलोड कर सकते हैं। (Web Site का नाम है = www.jagatgururampalji.org)

गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61,62,66, अध्याय 7 श्लोक 19, 29, अध्याय 8 श्लोक 3, 8, 9, 10, 20, 21,22, अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 15 श्लोक 1, 4, 16, 17, अध्याय 2 श्लोक 17, 59, अध्याय 3 श्लोक 14-15, 19, अध्याय 5 श्लोक 14,15,16, 19, 20, 24, 25, 26, अध्याय 6 श्लोक 7, अध्याय 11 श्लोक 55, अध्याय 12 श्लोक 1 से 5 उपरोक्त गीता श्लोकों में प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता से अन्य कोई पूर्ण परमात्मा है। उसके विषय में तथा उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति की साधना से गीता ज्ञान दाता भी अनभिज्ञ (अपरिचित) है। प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 32 तथा 34 में हैं। गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि (4/32), यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तृत ज्ञान (ब्रह्मणः मुखे) सच्चिदानन्द घन ब्रह्म के मुख कमल से उच्चरित वाणी में है जो परमात्मा स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर अपने मुख से बोलता है, उसे तत्वज्ञान कहते हैं, उसी को सूक्ष्म वेद भी कहते हैं। उस ज्ञान को बाद में तत्वदर्शी सन्त ही जानते हैं। उस ज्ञान में पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति तथा स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होता है।

(नोटः- गीता अनुवादकों ने गीता अध्याय 4 श्लोक 32 के अनुवाद में कुछ त्रुटि की है जैसे "ब्रह्मणः" शब्द का अर्थ "वेद" किया है जो अनुचित है। "ब्रह्मणः" शब्द का यथार्थ अर्थ गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में किया है। "ब्रह्मणः" = सचिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा)

{पाठकों से विशेष निवेदन :- आप जी गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता में प्रमाण मिलाएं, विशेषकर "पदच्छेद, अन्वय साधारण भाषा टीका सहित" अनुवादक श्री जयदयाल गोयन्दका तथा श्री रामसुख दास जी द्वारा अनुवादित गीता में देखें। पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमृत'' में जितने श्लोक प्रमाण में लिये हैं। उन सबकी फोटोकापी इसी पुस्तक के पृष्ठ 204 से 357 तक लगाई हैं जो हिन्दू संत विद्वान श्री जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित हैं तथा गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित हैं।}

गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जिस ज्ञान को परमात्मा स्वयं अपने मुख कमल से बोलता है, वह तत्वज्ञान है। उसमें विस्तृत जानकारी यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों की कही है, उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी सन्तों के पास जाकर समझ। उनको दण्डवत् प्रणाम करने से तथा विन्रमतापूर्वक प्रश्न करने से वे तत्वज्ञान को जानने वाले महात्मा आपको तत्वज्ञान बताऐंगे।

इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता को तत्वज्ञान की जानकारी नहीं है। तत्वज्ञान श्री मद्भगवत गीता में नहीं है। यदि तत्वज्ञान गीता ज्ञान दाता को होता तो एक अध्याय और बोल देते।

ऊपर लिखे श्री मद्भगवत् गीता जी के श्लोकों में स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता से अन्य कोई समर्थ अविनाशी, पूर्ण मोक्ष दाता, वास्तव में "परमात्मा" सब का धारण-पोषण करने वाला है। जिसकी शरण में जाने से सनातन परमधाम (शाश्वतम् स्थानम्) प्राप्त होता है तथा परम शान्ति प्राप्त होती है। उस परमपद में जाने के पश्चात् साधक कभी लौटकर संसार में नहीं आते अर्थात् जन्म-मत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाती है। अब उपरोक्त गीता के श्लोकों में से कुछेक का अनुवाद करके स्पष्ट करता हूँ।

गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे भारत! तू सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, उसकी कपा से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त हो जाएगा। हिन्दू धर्म के सन्त, मण्डलेश्वर, धर्मगुरू कहते हैं कि श्री कष्ण जी अपनी ही शरण में जाने को कह रहे हैं। उन धर्मगुरूओं का यह कहना बिल्कुल अनुचित है क्योंकि गीता अध्याय 2 श्लोक 7 में कहा है कि हे श्री कष्ण, मैं (अर्जुन) आपकी शरण में हूँ, आपका शिष्य हूँ। जो हमारे हित में हो, वही राय मुझे दीजिए। गीता अध्याय 4 श्लोक 3 में कहा है कि हे अर्जुन! तू मेरा भक्त है। इस गीता के उल्लेख से स्पष्ट हुआ कि अर्जुन तो पहले से ही श्री कष्ण जी की शरण में था। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान देने वाला अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कह रहा है। यह भी सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से कोई अन्य "परमेश्वर" है।

अन्य प्रमाण :- गीता अध्याय 8 श्लोक 1 के प्रश्न का उत्तर गीता ज्ञान दाता ने श्लोक नं. 3 में दिया है कि वह "परम अक्षर ब्रह्म" है। फिर अध्याय 8 के ही श्लोक 5 तथा श्लोक 7 में तो अपनी भक्ति करने को कहा है। फिर श्लोक 8, 9, 10 में परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करने की राय दी है। गीता अध्याय 4 श्लोक 5 में, अध्याय 2 श्लोक 12 में, अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी स्थिति स्पष्ट की है कि यदि मेरी भक्ति करेगा तो जन्म-मत्यु तेरे भी सदा बने रहेंगे और मेरे भी। गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में तत्वदर्शी सन्त की पहचान बताई है कि जो व्यक्ति संसार रूपी वक्ष के सर्व भाग मूल सहित तत्व से जानता है, (सः वेदवित्) वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है अर्थात् वह तत्वदर्शी सन्त है। फिर अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वदर्शी सन्त मिलने के पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद को खोजना चाहिए, जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी जन्म-मत्यु के चक्र में नहीं आते। गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में उसका वर्णन किया है कि अर्जुन तू सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की कपा से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम को प्राप्त हो जाएगा। यह परम शान्ति है क्योंकि साधक को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। सदा के लिए अमर लोक (सनातन परम धाम) में निवास करेंगे। वहाँ नैष्कर्मय

मोक्ष प्राप्त होता है जिसका भावार्थ है कि सत्यलोक (सनातन परम धाम) में बिना कार्य (कर्म) किए ही सब सुविधाऐं तथा पदार्थ प्राप्त होते हैं और अपने पुण्य कभी समाप्त नहीं होते, वैसे तो श्री ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, ब्रह्म तथा परब्रह्म की भक्ति से भी नैष्कमर्य मोक्ष प्राप्त होता है, वह कुछ समय तक ही रहता है जो प्रत्येक देवता के लोक में बने स्वर्ग (होटल) में प्राप्त होता है। परन्तु वहाँ प्राणी को अपने पुण्यों का प्रतिफल ही प्राप्त होता है। पुण्यों के समाप्त होने के पश्चात् पुर्नजन्म तथा मृत्यु का चक्र पुनः प्रारम्भ हो जाएगा। ("नैष्कर्मय'' मुक्ति का वर्णन गीता अध्याय 3 श्लोक 4 तथा अध्याय 18 श्लोक 49 में है।)

जिस सनातन परम धाम तथा शान्ति की प्राप्ति के लिए तथा उस परमेश्वर की शरण में जाने के लिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है, वह गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा है। गीता अध्याय 8 श्लोक 5 तथा 7 में तो गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति करने को कहा है। उससे तो जन्म-मृत्यु दोनों की बनी रहेगी। इसलिए फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 8, 9, 10 में उस परमेश्वर की भक्ति करने के लिए कहा है जिसका वर्णन गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 में है। फिर गीता अध्याय 8 के ही श्लोक 18 में कहा है (गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूष बताए हैं :-

1 :- क्षर पुरूष, यह स्वयं गीता ज्ञान दाता है, इसे क्षर ब्रह्म भी कहते हैं। यह केवल 21 ब्रह्माण्डों का प्रभु है।

2 :- अक्षर पुरूष, इसे परब्रह्म भी कहते हैं। यह केवल 7 शंख ब्रह्माण्डों का प्रभु है।

3 :- परम अक्षर पुरूष है, जिसे परम अक्षर ब्रह्म, परमेश्वर, सत्य पुरूष, अविनाशी परमात्मा भी कहते हैं जो असँख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी है। यहाँ पर अर्थात् श्रीमद्भगवत गीता के अध्याय 8 श्लोक 8, 9, 10, 20 तथा 22 में परम अक्षर पुरूष के विषय में वर्णन है। अध्याय 8 श्लोक 18 में अक्षर पुरूष के विषय में वर्णन है।)

जिस समय अक्षर पुरूष का एक दिन समाप्त होता है जो एक हजार युगों का होता है। ध्यान रहे गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में मूल पाठ में केवल सहंस्र युग लिखा है न कि संहस्रचतुर्युग। इसलिए अक्षर पुरूष के एक दिन के समाप्त होने पर सर्व प्राणी क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष के कुछ क्षेत्र के नष्ट हो जाते हैं। क्षर पुरूष व इसके सर्व (21) ब्रह्माण्ड के सब प्राणी नष्ट हो जाते हैं। जब दिन प्रारम्भ होता है तो पुनः सब जीव अपने कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं तथा मरते हैं। फिर गीता अध्याय 8 के ही श्लोक 20 में कहा है कि परन्तु इस अव्यक्त अर्थात् अक्षर पुरूष से (परः) परे जो अन्य सनातन अव्यक्त भाव अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म है, वह परमेश्वर तो सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। फिर गीता

अध्याय 8 श्लोक 21 में कहा है कि उसे अविनाशी अव्यक्त कहा गया है, उसी को परमेश्वर कहा गया है। उसी धाम की प्राप्ति से परम गति अर्थात् परमशान्ति प्राप्त होती है जिसे प्राप्त होकर साधक फिर वापिस नहीं आते जिसके विषय में गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है। गीता ज्ञान दाता ने बताया है कि वह धाम मेरे धाम से परम अर्थात् श्रेष्ठ है, इसलिए उसे सनातन परम धाम कहते हैं। (नोटः- इस गीता अध्याय 8 श्लोक 21 के अनुवाद में गलती की है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि वह मेरा परम धाम है। वास्तव मूल पाठ में लिखा है "तत् धाम परमम् मम" इस में "मम" शब्द में हलन्त (मम्) नहीं है। प्रमाण के लिए उन्हीं गीता अनुवादकों ने गीता अध्याय 3 श्लोक 23 में "मम" का अर्थ करते समय अर्थ किया है, मम = ''मेरा ही''। इसी प्रकार इस अध्याय 8 श्लोक 21 में मम का अर्थ मेरे से परम धाम है, सही है। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 22 में स्पष्ट किया है कि पुरूषः सः परः = (सः) वह (परः) दूसरा (पुरूषः) परमेश्वर तो अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है जिसके अन्तर्गत सर्व प्राणी आते हैं। जिसने सर्व संसार की रचना (उत्पत्ति) की है। गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में गीता ज्ञान दाता से अन्य परम पुरूष का वर्णन है, इसलिए गीता ज्ञान दाता उस धाम को अपना नहीं कह सकता। उसने अपने धाम यानि लोक से परम अर्थात् श्रेष्ठ धाम उस परमेश्वर का धाम बताया है, यह सही अर्थ है।

विचार करें :- गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में "परः" शब्द का अर्थ "परे" किया है अर्थात् अव्यक्त से (परः) = परे अर्थात् दूसरा सनातन अव्यक्त भाव वाला परमेश्वर है। इसी प्रकार गीता के इस अध्याय 8 श्लोक 22 में कहा है कि (सः) वह (परः) जो परे अर्थात् दूसरा (पुरूषः) परमेश्वर है। उसकी प्राप्ति अनन्य भक्ति से ही सम्भव है।

इसका अन्य प्रमाण :- गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शंकर जी) की भक्ति करने वालों को राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख बताया है तथा गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि ये मुझे नहीं भजते। अपनी भक्ति के विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 में कहा है कि मेरी भक्ति से होने वाली गति अनुत्तम (घटिया) है। गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में कहा है कि बहुत-बहुत जन्मों के अन्त में किसी जन्म में मेरी भक्ति करते हैं अन्यथा अन्य देवताओं और भैरो-भूतों की पूजा ही करते रहते हैं। परन्तु यह बताने वाला सन्त बहुत दुर्लभ है कि वासुदेव अर्थात् वह पूर्ण परमात्मा जिसका वास अर्थात् सत्ता सबके ऊपर है। वही (सर्वम्) सब कुछ है यानि वही पूजा के योग्य है, उसी की भक्ति से पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। वही सर्व सष्टि का रचनहार है। सबका धारण-पोषण करने वाला है। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में गीता ज्ञान दाता

ने कहा है कि जो साधक मेरे ज्ञान को आधार बनाकर तत्वदर्शी सन्तों से ज्ञान प्राप्त करके केवल जरा (वंद्धा अवस्था के दुःख से) तथा मरण (मंत्यु के दुःख से) छूटने के लिए भक्ति करके प्रयत्न करते हैं, वे संसार की सर्व वस्तुओं को नाशवान मानकर इनकी इच्छा नहीं करते, केवल मोक्ष उद्देश्य से ही भक्ति करते हैं। वे (तत् ब्रह्म) उस ब्रह्म को (विदु) जानते हैं, सब कर्मो से परिचित हैं, सर्व अध्यात्म ज्ञान से परिचित हैं। (गीता अध्याय 7 श्लोक 29)

गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे भगवान! (किम् तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म क्या है? जिसको जानकर साधक केवल मोक्ष ही चाहता है। इसका उत्तर गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में गीता ज्ञान दाता ने दिया है। कहा है कि "वह परम अक्षर ब्रह्म है।" गीता ज्ञान दाता ने इस परम अक्षर ब्रह्म की जानकारी गीता अध्याय 8 में ही श्लोक नं. 8, 9, 10, 20, 21, 22, में भी दी है जो गीता ज्ञान दाता से अन्य है। गीता अध्याय 2 श्लोक 17 में कहा है कि जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण जगत् की रचना की है, जिससे यह जगत व्याप्त है (अर्थात् जिसकी शक्ति से सर्व ब्रह्माण्ड टिके हैं, रूके हैं) वह वास्तव में अविनाशी परमात्मा है जिसका नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में भी कहा है कि पुरूषोत्तम तो अन्य है (गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में दो पुरूष कहे हैं, क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष। उत्तम पुरूष इन से अन्य है, अर्थात् श्रेष्ठ परमेश्वर) जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण-पोषण करता है। वह परमात्मा कहा जाता है। वही वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। (गीता अध्याय 15 श्लोक 17), फिर गीता अध्याय 2 के ही श्लोक 59 में भी गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा के विषय में कहा है। प्रसंग गीता अध्याय 2 श्लोक 53 से चला है। जिसमें कहा है कि 'हे अर्जुन' जिस समय भांति-भांति के भ्रमित करने वाले ज्ञान के वचनों से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अटल यानि स्थिर ठहर जाएगी, तब तू योग को प्राप्त होगा (गीता अध्याय 2 श्लोक 53), फिर गीता अध्याय 2 श्लोक 59 में कहा है कि कुछ व्यक्ति निराहार रहकर (भोजन त्यागकर) केवल फलाहार या दूग्धाहार ही करते हैं उनके कुछ समय के लिए विषय-विकार तो निवंत हो जाते हैं, परन्तु संसार के पदार्थों से आसक्ति निवंत नहीं होती। शास्त्रानुसार साधना करने से उस अन्य परमात्मा का साक्षात्कार होता है, जिससे विषय-विकार तथा आसक्ति भी निवंत हो जाती है। गीता अध्याय 2 श्लोक 59 के मूल पाठ में "परम्" शब्द जिस का अर्थ है "पर" अर्थात् दूसरा होता है। उदाहरण के लिए गीता अध्याय 7 श्लोक 13 में मूल पाठ में यही "परम्" शब्द है। इसमें गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि तीनों गुणों (रजगुण श्री ब्रह्मा जी, सतगुण श्री विष्णु जी तथा तमगुण श्री शंकर जी) के भाव से सारा संसार मोहित हो रहा है, इनसे परे मुझे नहीं जानता। (गीता अध्याय 7 श्लोक 13) इसमें परम् = पर =

परे अर्थात् दूसरा अर्थ हुआ। इसी प्रकार गीता अध्याय 2 श्लोक 59 में "परम्" का अर्थ पर = परे अर्थात् दूसरा जानें क्योंकि गीता अध्याय 11 श्लोक 55 तथा गीता अध्याय 12 श्लोक 1 से 6 में प्रमाण है। गीता अध्याय 11 श्लोक 55 में संकेत किया है कि (मत् कर्मकृत्) = शास्त्रानुकुल भक्ति कर्म मेरे लिए करता हुआ (मत् परम्) मेरे से श्रेष्ठ परमात्मा के लिए करता हुआ (मत् भक्त) मेरा भक्त मुझे ही प्राप्त होता है। क्योंकि जब तक तत्वदर्शी सन्त नहीं मिलता, तब तक वेदों अनुसार ज्ञान से ''ऊँ'' नाम का जाप पूर्ण परमात्मा का मानकर करते हैं। जिससे ब्रह्म लोक में चले जाते हैं। इसलिए कहा है कि मेरा भक्त मेरे से अन्य पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके भी मुझे ही प्राप्त होता है (गीता अध्याय 11 श्लोक 55)

फिर गीता अध्याय 12 श्लोक 1 में स्पष्ट है कि अर्जुन ने प्रश्न किया कि जो भक्त पूर्वोक्त प्रकार से (गीता अध्याय 11 श्लोक 55 में संकेत है) जो (त्वम्) आपको तथा जो (अव्यक्तम् अक्षरम्) अविनाशी अव्यक्त ("जिस का वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में है") उसको भजते हैं, उनमें से उत्तम भक्ति वाला कौन-सा भक्त है?(गीता अध्याय 12 श्लोक 1)

फिर गीता अध्याय 12 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरा भक्त जो केवल मेरे ध्यान में लगा है, वह (युक्ततमाः मताः) मेरे विचार से वह सही साधक है। (गीता अध्याय 12 श्लोक 2)

गीता अध्याय 12 श्लोक 3 से 4 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि "जो उस सर्वव्यापी जिसके विषय में मैं भी नहीं जानता, जो सदा एक रस रहने वाला स्थाई, अचल, अव्यक्त अर्थात् परोक्ष अविनाशी परम अक्षर ब्रह्म की निरन्तर उपासना करते हैं, सब प्राणियों के हित के लिए कामना करने वाले साधक सब में समान भाव रखने वाले साधक मुझको ही प्राप्त होते हैं। भावार्थ है कि जिस सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म का ज्ञान गीता ज्ञान दाता को भी नहीं है, उसका ज्ञान तत्वदर्शी सन्तों को होता है। तत्वदर्शी सन्त न मिलने से ब्रह्म के ऊँ (ओम्) नाम को परम अक्षर ब्रह्म का नाम (मंत्र) जाप मानकर साधना करते हैं। जिस कारण से काल के जाल में रह जाते हैं। इसलिए कहा है कि वह साधक मुझे ही प्राप्त होता है। परमेश्वर कबीर जी ने "सोहं" मन्त्र का आविष्कार करके साधकों को बताया है। परन्तु सारनाम फिर भी गुप्त ही रखा है। सूक्ष्म वेद में लिखा है :-

सोहं शब्द हम जग में लाऐ। सार शब्द हम गुप्त छिपाएं।।
सोहं ऊपर और सतसुकृत एक नाम।
सब हंसों का बास है, नहीं बस्ती नहीं ठाम।।
सतगुरू सोहं नाम दे, गुझ बीरज विस्तार।
बिन सोहं सीझै नहीं, मूल मन्त्र निज सार।।

''जो साधक 'सोहं' नाम का जाप करते हैं, यह परब्रह्म (अक्षर पुरूष जो गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में प्रमाण है) उसका जाप है। सारनाम मिले बिना ''सोहं'' तथा ''ऊँ'' पूर्ण मोक्षदायक नहीं है। ''ऊँ'' का जाप ब्रह्म (गीता ज्ञान दाता) का है। ब्रह्मलोक में महाइन्द्र का लोक प्राप्त होता है जो ब्रह्म लोक में ही बना है तथा "सोहं" नाम के जाप की भक्ति कमाई से ब्रह्मलोक में ही बने नकली सत्यलोक को प्राप्त होता है। साधना काल में साधक यह भी कहता रहता है ''सब प्रणियों का भला हो"

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्।।

भावार्थ :- ''सब सुखी हों, सब आरोग्य अर्थात् स्वस्थ हों, सबका भला हो, कोई दुख किसी को न हो।'' यह मंगलकामना का मन्त्र बनाकर आशीर्वाद देता है, दुआ (प्रार्थना) करता रहता है। जिससे इस साधक की पुण्य कमाई तथा भक्ति धन दुआ आशीर्वाद के माध्यम से समाप्त हो जाते हैं। तत्वदर्शी सन्त का अनुयायी यह गलती कभी नहीं करता। इसलिए कहा है कि उस परम अक्षर ब्रह्म का साधक भी मुझे ही प्राप्त होता है क्योंकि भक्ति आशीर्वाद तथा सर्व की मंगलकामना करके समाप्त कर दी, कुछ महास्वर्ग (ब्रह्मलोक) में खा-खर्ची, फिर जन्म-मरण तथा 84 लाख प्राणियों के चक्र में गिर जाता है।

❖ राजा जनक के जीवन से सिद्ध करते हैं :-

त्रेतायुग में जनक जी एक धार्मिक राजा थे। इनकी पुत्री सीता जी थी जो त्रिलोकीनाथ श्री विष्णु उर्फ श्री रामचन्द्र पुत्र श्री दशरथ जी की पत्नी थी। सतयुग में राजा जनक जी का जीव ही राजा अम्बरीष थे जो श्री विष्णु जी के परम भक्त थे। साथ-साथ वेदों के अनुसार ''ऊँ'' नाम का जाप करते थे जो ब्रह्म साधना है। जिसके परिणामस्वरूप लाखों वर्ष श्री विष्णु जी के लोक में बने स्वर्ग में अपनी भक्ति के सुख को भोगा। फिर लाखों वर्ष ब्रह्म लोक में ब्रह्म साधना के सुख को भोगा। फिर त्रेतायुग में पुनर्जन्म जनक का हुआ जो एक धार्मिक राजा थे। अपने जीवन काल में अनेकों यज्ञ (धार्मिक अनुष्ठान) किए। श्री विष्णु जी की भक्ति की ब्रह्म साधना भी की। जब संसार छोड़कर चलने लगे तो एक विमान स्वर्ग से आया, राजा जनक जी को बैठाकर उड़ चला। रास्ते में एक नरक था जिसमें 12 करोड़ जीव अपनी करनी का दण्ड भोग रहे थे, हा-हा-कार मची थी। जनक जी ने देवदूतों से पूछा कि यह किन दुखियों की चिल्लाहट है? विमान रोको, विमान रूक गया। देवदूतों ने बताया राजन्! यह एक नरक है। इसमें प्राणी अपने पापकर्मों का दण्ड भोग रहे हैं। जनक जी ने कहा इनको इस नरक से निकाल दो। मुझसे देखा नहीं जा रहा। देवदूतों ने कहा जनक जी यहाँ आप का राज्य नहीं है। यहाँ धर्मराज की आज्ञा चलती है। जनक जी ने कहा कि या तो इनको

छोड़ दो या फिर मुझे भी इसी नरक में डाल दो। देवदूतों ने बताया इसका समाधान धर्मराज ही कर सकते हैं। राजा जनक जी ने कहा धर्मराज से मेरी बात कराओ। धर्मराज वहीं उपस्थित हो गए तथा सर्व स्थिति जानने के पश्चात् बोले कि मैं आपको इस नरक में नहीं डाल सकता और न ही मैं इन 12 करोड़ जीवों को नरक से निकाल सकता। एक उपाय बताता हूँ। आप (जनक जी) अपने कुछ भक्ति धन (पुण्य तथा मन्त्र जाप का भक्ति धन) इन 12 करोड़ जीवों को प्रदान कर दो। तब इन्हें आप के साथ ही स्वर्ग भेज दूँगा। जनक जी ने दयावश होकर अपनी आधी भक्ति कमाई उन 12 करोड़ जीवों को दे दी। वे 12 करोड़ आत्माऐं राजा जनक के द्वारा दिए पुण्यों के आधार से स्वर्ग में चली गई और राजा जनक ने भी स्वर्ग में (विष्णु लोक वाले स्वर्ग में, फिर ब्रह्म लोक वाले महास्वर्ग में) निवास करके अपने पुण्यों का भोग भोगा जिससे भक्ति धन समाप्त हो गया।

कथा सार :- जिन 12 करोड़ जीवों को राजा जनक जी ने अपने आधे पुण्य दान किए थे, धर्मराज ने वे पुण्य 12 करोड़ जीवों को बराबर-बराबर बाँट दिये। उन पुण्यों के फलस्वरूप वे आत्माऐं स्वर्ग में रही। फिर उन पुण्यों के समाप्त होने पर पुनः उसी नरक में डाल दी गई। जो पापकर्म शेष बचे थे, वे फिर भोगने पड़े। राजा जनक जी के साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ। उसके आधे पुण्य तो दान करने से समाप्त हुए और आधे ऊपर स्वर्ग में भोगकर समाप्त हुए, पुनः जन्म-मरण के चक्र में गिरे। वही जनक जी वाला जीव कलयुग में सिक्ख गुरू श्री नानक देव साहेब जी हुए। श्री नानक जी को सुल्तानपुर शहर में बेई नदी के घाट पर पूर्ण परमात्मा एक जिन्दा साधु के वेश में मिले। उनको उस सनातन परम धाम (सत्यलोक = सच्च खण्ड) में ले गए। फिर तीसरे दिन वापिस उसी बेई नदी के घाट पर छोड़ा। सर्व तत्वज्ञान कराया, उनके पूर्व अनेकों अच्छे जीवन के जन्म दिखाए, उनको सत्यनाम (जो दो अक्षर का मन्त्र है जिसमें एक औंकार (ॐ) है तथा दूसरा गुप्त है, उपदेशी को ही बताया जाता है) की दीक्षा दी। तब श्री नानक देव साहेब जी का पूर्ण मोक्ष हुआ। यदि परमात्मा तत्वदर्शी सन्त रूप में प्रकट होकर तत्वज्ञान नहीं बताते तो श्री नानक देव जी वाले जीव का जन्म-मरण चक्र कभी समाप्त नहीं होता। वह सत्य साधना मेरे पास (सन्त रामपाल जी के पास) है। प्रसंग चल रहा है कि भावना में बहकर आशीर्वाद द्वारा अपनी भक्ति धन कभी नष्ट नहीं करना चाहिए। आपने कोई भी बुद्धिमान धनवान व्यक्ति अपने नोटों को अन्य किसी को बाँटता नहीं देखा होगा। यदि किसी की सहायता करना चाहें तो उसे कमाने का तरीका बताऐं। जिससे वह अपने पैरों पर खड़ा होकर धनी बन सके। इसी प्रकार भक्तजन जिसकी सहायता करना चाहें तो उसको पूर्ण गुरू से दीक्षा दिलाकर भक्ति धन कमाने की प्रेरणा दें।

गीता अध्याय 12 श्लोक 5 में कहा है कि "जिनकी आस्था सच्चिदानन्द घन

ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म में है और जो उसी को (चेतसा) जानने वाले हैं, उनको अधिकतर (क्लेशः) शंका के कारण ज्ञान का झगड़ा बना रहता है? उन मानव शरीरधारियों के लिए इस कारण से दुखपूर्वक प्राप्त की जाने वाली गति है। भावार्थ वही है कि तत्वदर्शी सन्त न मिलने के कारण कबीर पंथी (घीसा दास पंथी, गरीबदास पंथी, दादू पंथी, नेकीराम पंथी थे। सब कबीर पंथी कहलाते हैं।) भी कठिन तपस्या करते हैं। व्रत-मौनव्रत, अन्य कठिन साधना ही करते हैं। इसलिए कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा की साधना क्लेशयुक्त तथा दुःखपूर्वक प्राप्त होने योग्य है। वास्तव में सर्व साधना जो शास्त्रानुकूल है, वह बहुत आसान है।

प्रमाणः- यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 15 में ब्रह्म साधना के लिए कहा है किः-

वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्।
ओम् कृतम् स्मर, किलबे स्मर कृतुः स्मर।।

भावार्थ :- ब्रह्म साधना का ऊँ (ओम्) नाम है। इससे मिलने वाला अमृतम् अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए ''ऊँ'' नाम का जाप (वायुः अनिलम्) श्वांस-उश्वांस से पूरी लगन के साथ शरीर नष्ट होने तक (कृतम्) कार्य करते-करते (स्मर) स्मरण कर, (किलबे स्मर) पूरी कसक अर्थात् किलबिलाहट यानि विलाप जैसी स्थिति से स्मरण कर, (कृतुः स्मर) मनुष्य जीवन का मूल कार्य जानकर स्मरण कर। (यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 15)

फिर युजर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 17 में वेद ज्ञान दाता ने (यही गीता ज्ञान दाता है) कहा है कि वह पूर्ण परमात्मा तो ऊपर के लोक में परोक्ष है अर्थात् अव्यक्त है। (अहम् खम् ब्रह्म ओम्) मैं ब्रह्म हूँ, दिव्य आकाश रूपी ब्रह्म लोक में में रहता हूँ, मेरा ऊँ नाम है। यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 में वेद ज्ञान दाता ने कहा कि "कोई तो परमात्मा को (सम्भवात्) उत्पन्न होने वाला अवतार रूप में साकार मानता है, कोई (असम्भवात्) उत्पन्न न होने वाला अर्थात् निराकार मानता है। वह परमात्मा उत्पन्न होता है या नहीं या जैसा है, उसका ज्ञान (धीराणाम्) तत्वदर्शी सन्तजन बताते हैं, उनसे (श्रुणुः) सुनो। (यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10), यही प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में है कि परमात्मा के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान तत्वदर्शी सन्त बताते हैं। उनकी खोज कर, उनसे निष्कपट भाव से तथा दण्डवत प्रणाम करके विनम्रता से प्रश्न करने से वे तत्वदर्शी सन्त तेरे को तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे। सूक्ष्म वेद में भी कहा कि :-

नाम उठत नाम बैठत, नाम सोवत जाग रे। नाम खाते नाम पीते, नाम सेती लाग रे।।

भावार्थ :- परमात्मा की साधना केवल नाम के जाप से होती है, उस नाम का जाप कार्य करते-करते करो, सोने से पहले, सुबह उठते ही, खाना खाते समय, पेय पदार्थ पीते समय अर्थात् सर्व कार्य करते-2 नाम का स्मरण करो। भावार्थ है कि हठयोग न करके कर्मयोग में साधना करो।

''गीता में दो प्रकार का ज्ञान है''

गीता का जो ज्ञान वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) तथा सूक्ष्म वेद जो सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् सत्य पुरुष ने अपने मुख कमल से तत्वज्ञान बोला है, उससे मेल नहीं करता है तो वह गलत ज्ञान है। वह गीता ज्ञान दाता का अपना मत है, वह स्वीकार्य नहीं है। गीता ज्ञान दाता ने कई श्लोकों में (गीता अध्याय 13 श्लोक 2, अध्याय 7 श्लोक 18, अध्याय 6 श्लोक 36, अध्याय 3 श्लोक 31 तथा अध्याय 18 श्लोक 70 में) कहा है कि ऐसा मेरा मत है, मेरा विचार है। श्रीद्भगवत गीता में 95 प्रतिशत वेद ज्ञान है, 5 प्रतिशत गीता ज्ञान दाता का अपना मत है। यदि वह वेदों से मेल खाता है तो ठीक है, अन्यथा व्यर्थ है। उदाहरण के लिए गीता अध्याय 2 श्लोक 37-38 प्रर्याप्त है। इनमें विरोधाभास है। गीता अध्याय 2 श्लोक 37 में तो लाभ-हानि बता रहा है। कहा है कि या तो तू युद्ध में मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा युद्ध जीतकर पृथ्वी का राज भोगेगा। इसलिए हे अर्जुन! युद्ध के लिए खड़ा हो जा। (गीता अध्याय 2 श्लोक 37) फिर गीता अध्याय 2 श्लोक 38 में ही तुरन्त इसके विपरीत कहा है कि जय-पराजय अर्थात् हार-जीत, सुख-दुःख को समान समझकर युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा। (गीता अध्याय 2 श्लोक 38)

गीता अध्याय 11 श्लोक 33 में भी स्पष्ट किया है कि "तू उठ, यश को प्राप्त कर। शत्रुओं को जीतकर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। मैंनें तेरे सामने वाले योद्धाओं को पहले ही मार रखा है, तू केवल निमित मात्र बन जा।

''पाण्डवों द्वारा की गई यज्ञ''

महाभारत ग्रन्थ में एक प्रकरण आता है कि कुरूक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ, करोड़ों सैनिक मारे गए, करोड़ों बहनें विधवा हो गई, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गए। पाण्डव युद्ध जीत गए। कौरवों का सर्वनाश हो गया। दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) की गद्दी पर श्री युधिष्ठर को बैठाकर श्री कृष्ण जी "द्वारका" चले गये। युधिष्ठर राजा को भयंकर स्वपन आने लगे जिसमें सिर कटे व्यक्ति उनके महल में प्रवेश करते दिखाई लेने लगे। करोड़ों बच्चे पिता जी! - पिता जी! कहकर चिल्लाते दिखाई देने लगे, करोड़ों सैनिकों की विधवाऐं हाय कन्त! - हाय कन्त! कह-कहकर बिलखती-तड़फती अपने सिर के बालों को नौंचती दिखाई देने लगी। उनकी वह तड़फ मानो कह रही हो कि महलों के सुख को भोगने के लिए हमारे सुहाग उजाड़ने वाले इन बच्चों सहित हमें भी मार डाल, तेरा ऐश्वर्य पूर्ण हो जाएगा। कितने दिन रहोगे इस राज सिंहासन पर? एक दिन सुबह के समय राजा युधिष्ठर स्नान करने के लिए गंगा तट पर गया, वहाँ पर कई हजारों की सँख्या

में महिलाएं भी अपने सुहाग की चूड़ियाँ जो विधवा होने पर तोड़ी जाती हैं, उनको जल प्रवाह करने उस घाट पर गई हुई थी, रो रही थी, सुबक रही थी, कुछ चक्कर खा कर गिर रही थी, उसके बेटे-बेटियाँ उस विधवा माँ के ऊपर गिरकर रो रहे थे। कुछेक को दो-दो महिलाऐं जो वृद्ध थी, हाथ का सहारा देकर चल रही थी तथा सब रो रही थी। यह विकराल दृश्य देखकर राजा युधिष्ठर बिना स्नान किए ही वापिस लौट गए। सारा दिन वही दृश्य आँखों के सामने घूमने लगा। कुछ नहीं खाया-पीया, रात्रि में सोने लगा तो वही दृश्य आँखों के सामने था। जैसे-तैसे सोया तो वही स्वपन आने लगे जो पहले दो-तीन दिन से दिख रहे थे। राजा युधिष्ठर न सो पा रहा था, न रो पा रहा था, न कुछ खा रहा था, केवल नाम-मात्र आहार करता था। आँखें फटी-फटी-सी, चेहरा डरा-डरा-सा रहता था। द्रोपदी कई दिन से यह दशा अपने बड़े पति की देख रही थी। कई बार कारण भी पूछा। परन्तु उत्तर होता था कुछ नहीं - कुछ नहीं। जब द्रोपदी को संतोषजनक उत्तर नहीं मिला और युधिष्ठर जी की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती देखकर उसे अन्य पाण्डवों को बताना पड़ा। चारों पाण्डव (भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव) युधिष्ठर जी के पास गए तथा विनम्रतापूर्वक परेशानी का कारण पूछा। युधिष्ठर ने उस समय भी कहा कुछ नहीं। जब बड़ा भाई जीवित है तो छोटों को टेंशन (चिन्ता) नहीं करनी चाहिए। लेकिन अर्जुन ने कहा कि बड़े भाई क्या हम बच्चे हैं? क्या हम अपने भाई के दुख के भागीदार नहीं बन सकते? क्या आप हमें अपना भाई नहीं मानते? युधिष्ठर की आँखों से आँसू झलक गए और चारों को बाँहों में लेकर सीने व गले से लगाकर फिर उनके मुख पर हाथ रखकर कहने लगा कि ऐसा मत कहो, आप मेरे भाई ही नहीं मेरी जिन्दगी हो और पिता जी की धरोहर हो, परन्तु ऐसी कोई बात नहीं है जो आप से छुपाऊँ। सहदेव ने आँखों में पानी भरकर कहा कि बड़े भईया! लगता है राजा बनकर आप बेईमान-धोखेबाज बन गए हो। हमसे अवश्य कुछ हेराफेरी-बेईमानी कर रहे हो, सच-सच बता दो हम चारों की कसम। नहीं तो हम भी खाना-पीना त्याग देंगे। युधिष्ठर को उस छोटे भाई के प्यार भरे उलाहनों ने विवश कर दिया उनके सामने अपना दुःख व्यक्त करने के लिए। तब जो-जो स्वपन तथा गंगा दरिया तट पर दृश्य देखे थे, सब बताए। पाण्डवों के गुरू श्री कृष्ण जी थे। (प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 7 तथा गीता अध्याय 4 श्लोक 3 में)

इसलिए पाँचों पाण्डव द्वारका पहुँचे तथा युधिष्ठर जी की परेशानी से श्री कृष्ण जी को परिचित कराया तथा इस संकट के आने का कारण तथा निदान (समाधान) पूछा। श्री कृष्ण जी ने देख-सोचकर बताया कि युधिष्ठर के ऊपर बुरी आत्माओं का साया है तथा युद्ध में किए बन्धुघात का पाप सिर चढ़ा है।

समाधान :- श्री कृष्ण जी ने बताया कि एक अश्वमेध यज्ञ करो। पूरी पृथ्वी

के साधु-सन्त, ऋषि-महर्षि, ब्राह्मण, अपने रिश्तेदार तथा स्वर्ग लोक के सर्व देवताओं को उस यज्ञ में भण्डारा भोजन कराओ। एक पंचायण (पंचानन्) अर्थात् पंचमुखी शंख लाओ। उसको एक सुसज्जित मेज पर रखा जाएगा। जब सर्व उपस्थित मेहमान भोजन कर लेंगे, तब यह शंख अपने आप आवाज करेगा। तब तुम्हारे ये तीन ताप का संकट समाप्त होगा। यदि शंख ने आवाज नहीं की तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगी, संकट बना रहेगा। यह सुनकर अर्जुन को मानो साँप सूंघ गया हो। उसका दिमाग फटने को हो गया। सोचने लगा कि जब युद्ध की तैयारी थी, मैं युद्ध से मना कर रहा था। तब भगवान युद्ध करने को बार-बार प्रेरित कर रहे थे। कहा था कि तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा, तू तो निमित मात्र है। तेरे दोनों हाथों में लडडू हैं। अब कह रहे हैं कि युद्ध में किए नरसंहार का पाप ही तुम्हारे संकट का कारण है। समाधान भी ऐसा बताया कि उस समय के करोड़ों रूपये (वर्तमान के खरबों रूपये) खर्च होने हैं। यह विचार करके अर्जुन विष की घूंट पी गया कि यदि मैं आज श्री कृष्ण जी से प्रश्न करके पूछुँगा कि गीता ज्ञान देते समय आप कह रहे थे कि युद्ध करो, तुम पाप को प्राप्त नहीं होगे। अब वही युद्ध में किया पाप ही संकट का कारण बताया है। भाई युधिष्ठर यह सोचेगा कि खरबों रूपये मेरे इलाज पर खर्च होने हैं अर्जुन इसीलिए श्री कृष्ण जी से वाद-विवाद कर रहा है, यह मेरा इलाज नहीं कराना चाहता। जरा-सी भी भनक युधिष्ठर भाई को लग गई तो यह मर सकता है, इलाज नहीं कराएगा। यह विचार करके अर्जुन ने यज्ञ की तिथि तथा स्थान पूछकर यज्ञ की तैयारी की। उस यज्ञ में तेतीस (33) करोड़ देवता, 88 हजार ऋषि, 12 करोड़ ब्राह्मण, 56 करोड़ यादव, (अर्जुन की ससुराल वाले द्वारका से) नौ नाथ, 84 सिद्ध महात्मा, अन्य अनेकों सामान्य जनता जन आए तथा श्री कृष्ण सहित सबने भोजन खाया। परन्तु शंख ने आवाज नहीं की। फिर सन्त सुदर्शन (सुपच) जी को बुलाया गया, तब वह शंख बजा, यज्ञ सम्पूर्ण हुई। उस समय करूणामय नाम से प्रकट परमात्मा जो तत्वदर्शी सन्त की लीला करने प्रत्येक युग में आते हैं, आए हुए थे। सुदर्शन उनका शिष्य था तथा सत्यनाम (सतनाम, जो दो अक्षर का है, एक ऊँ दूसरा तत्) की भक्ति करता था। जिस कारण से पाण्डवों की यज्ञ सफल हुई थी तथा वह तीन ताप से आया संकट पाण्डवों का समाप्त हुआ था जो न श्री कृष्ण जी के भोजन करने से तथा न उपरोक्त महानुभावों के भोजन करने से समाप्त हुआ। श्री सुदर्शन जी उस परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा की भक्ति करता था। सूक्ष्म वेद में कहा है:-

तुम कौन राम का जपते जापम्। तातें कटें ना तुम्हरें तीनों तापम्।।

भावार्थ :- आप कौन से राम की भक्ति का नाम जपते हैं, जिससे आप के तीन ताप भी समाप्त नहीं होते, मोक्ष तो बहुत दूर की बात है। इसलिए मेरे (सन्त रामपाल के) पास वह सत्य साधना है, दो अक्षर का सत्यनाम है। आओ और

दीक्षा लेकर अपना कल्याण कराओ।

अब उसी प्रसंग पर आते हैं कि गीता में दो तरह का ज्ञान है अर्थात् विरोधाभास है। एक तो गीता ज्ञान दाता ने युद्ध कराने के लिए अपने दॉव-पेंच लड़ाए हैं, वे वेद विरूद्ध होने से तथा सत्य से परे होने से स्वीकार्य नहीं है, वह इसका मत है। इसलिए गीता अध्याय 12 श्लोक 5 में कहा है कि उस सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की भक्ति क्लेश व दुःखपूर्वक प्राप्त होती है। जबकि वेद में लिखा है कि तत्वदर्शी सन्त मिलने के पश्चात् उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की भक्ति कार्य करते-करते नाम जाप साधना करके की जाती है, बहुत ही सरल है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता ने जो अपना मत बताया है, यदि वह वेदों (चार वेद हैं:- 1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद, 4. अथर्ववेद तथा पाँचवा है सूक्ष्म वेद।) से मेल नहीं खाता है तो वह व्यर्थ ज्ञान है। वह गीता ज्ञान दाता के घर का है, वह हमें ग्रहण नहीं करना है, वह हमें नहीं मानना है।

अन्य प्रमाण :- गीता अध्याय 12 श्लोक 8 से 19 तक में अपना मत बताया है। गीता अध्याय 12 श्लोक 8 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मुझमें मन लगा, मेरे में बुद्धि लगा, मुझे प्राप्त होगा। इसी प्रकार (ऊर्ध्वम्) ऊपर वाले अव्यक्त की भक्ति करेगा तो उसे प्राप्त होगा, इसमें कोई संशय नहीं है। (गीता अध्याय 12 श्लोक 8)

गीता अध्याय 12 श्लोक 9 में गीता ज्ञान दाता कहता है कि यदि मेरी प्राप्ति चाहता है और यदि तू मन को मुझमें लगाने में समर्थ नहीं है तो हे धनंजय! "अर्जुन!'' अभ्यास योग अर्थात् नाम-जाप तथा नित्य पाठ करना आदि-आदि अभ्यास साधना कहलाती है, को करके मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर।

गीता अध्याय 12 श्लोक 10 में गीता ज्ञान दाता कहता है कि यदि नाम-जाप नित्य पाठ आदि-आदि अभ्यास करने में भी समर्थ नहीं है तो (मत् कर्म परमः) मेरे लिए श्रेष्ठ कर्म करने वाला हो जा। इस प्रकार मेरे लिए शुभ कर्म करता हुआ भी सिद्धि को प्राप्त कर लेगा।

गीता अध्याय 12 श्लोक 11 में गीता ज्ञान दाता कहता है कि यदि (मद्योगम = मत् योगम्) मेरे द्वारा बताई गई भक्ति साधना पर आश्रित होकर उपरोक्त साधना करने में भी तू समर्थ नहीं है तो (यतात्मवान् = यत आत्मवान्) यति आत्मा वाला हो जा। "यति'' का अर्थ है अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी भी स्त्री के प्रति विषय विकारवश होकर मन में कभी द्वेष उत्पन्न न होता हो, उसे यति पुरूष कहते हैं। जैसे श्री रामचन्द्र जी को यति अर्थात् सन्त भाषा में "जति" कहा जाता है। श्री सुखदेव = शुकदेव पुत्र श्री ब्यास को भी यति = जति माना गया है तथा सीता पत्नी श्री रामचन्द्र को "सती" माना गया है। इसलिए कहा है कि यतात्मवान् अर्थात् यति पुरूष बनकर सर्व कर्मों के फल का त्याग कर। (गीता

अध्याय 12 श्लोक 11)

गीता अध्याय 12 श्लोक 12 में गीता ज्ञान दाता कहता है कि (अभ्यासात्) नाम जाप, नित्य पढ़ आदि-आदि जो अभ्यास किया जाता है, उससे श्रेष्ठ ज्ञान है अर्थात् जिज्ञासु बनकर ज्ञान प्राप्त कर। ज्ञान से ध्यान अर्थात् हठ साधना करके समाधि लगाना यहाँ गीता ज्ञान दाता के मतानुसार ध्यान कहा है। जिसका अनुसरण सर्व ऋषिजन किया करते थे। जिसे वर्तमान में Meditation (मैडिटेशन) कहते हैं। ध्यान से श्रेष्ठ सर्व कर्मों का फल का त्याग है क्योंकि त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त हो जाती है। (यह गीता ज्ञान दाता का मत है।)

गीता अध्याय 12 श्लोक 13-14 में गीता ज्ञान दाता कहता है कि जो व्यक्ति सब प्राणियों से द्वेष भाव रहित है। सब का मित्र है और दयालु है। जैसे राजा जनक था। ममता रहित अहंकार से रहित सुख-दुःख में समान रहता है, क्षमावान् है, जो (योगी) साधक निरन्तर संतुष्ट है। (यतात्मा) यति पुरूष हैं, दृढ़ निश्चय वाला है अर्थात् जो मैंने ज्ञान अपना मत या वेद ज्ञान बताया है, उसको दृढ़ निश्चय से पालन करता है। वह मुझ पर समर्पित मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

इसी प्रकार गीता अध्याय 12 श्लोक 15 से 19 तक में अपना मत कहा है जो केवल नास्तिकता की ओर ले जाने वाला है। जैसे ऊपर किए गए उल्लेख में (गीता अध्याय 12 श्लोक 8 से 12 तक) कहा है किः-

मुझ में मन लगा, यदि मन नहीं लगा सकता तो नाम, जाप तथा नित्य पाठ आदि का अभ्यास किया कर। अभ्यास का अर्थ है नित्य प्राप्ति बार-बार कर्म करना। नाम-जाप, नित्य पाठ करके मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर। यदि नाम जाप, नित्य पाठ भी नहीं कर सकता तो मेरे लिए अर्थात् परमात्मा के लिए कर्म करने वाला हो जा। उदाहरण के लिए जैसे धार्मिक कर्म करते हैं। कहीं कम्बल बाँट दिए, कहीं भोजन भण्डारा कर दिया, कहीं मन्दिर बना दिया, कहीं प्याऊ बनवा दी, पक्षियों को अनाज डाल दिया आदि-आदि भगवान के प्राप्ति किए कर्म कहलाते हैं। इनके करने से कुछ सिद्धी प्राप्त हो जाएगी। प्रिय पाठको! ध्यान से विचारो, इस श्लोक में इन कर्मों से होने वाला फल भी बता दिया है कि "सिद्धी" प्राप्त हो जाती है। फिर साधक स्वयं झाड़-फूंक, जन्त्र-मन्त्र, आशीर्वाद तथा दुआ-बद्दुआ देने योग्य हो जाता है और महर्षि प्रसिद्ध हो जाता है। (गीता अध्याय 12 श्लोक 10)

यदि भगवान के लिए कर्म भी नहीं कर सकता है तो यति (जति) पुरूष बनकर कर्म फल का त्याग कर।

विचार करें :- जब भगवान के लिए धार्मिक कर्म करेगा ही नहीं तो कौन से कर्म शेष हैं जिनके फल का त्याग करेगा। इसे कहते हैं ऊवा-बाई का ज्ञान, बिना सिर-पैर का ज्ञान। (गीता अध्याय 12 श्लोक 11) फिर गीता अध्याय 12 श्लोक 12

में तो कमाल ही कर दिया। कहा है कि अभ्यास अर्थात् नाम जाप नित्य पाठ रूपी अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है जो गीता ज्ञान दाता अपना मत बता रहा है, यहाँ पर इस ज्ञान की चर्चा है। ज्ञान से ध्यान (Meditation) अर्थात् हठपूर्वक एक स्थान पर एकान्त में आसन (गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में बताई विधि जो गीता ज्ञान दाता का मत है) पर बैठकर करना श्रेष्ठ है। ध्यान से सब धार्मिक कर्मों का फल त्यागने से तुरन्त शान्ति मिल जाती है। गीता अध्याय 12 श्लोक 11 में सब धार्मिकता वाले कर्म भी त्यागने का आदेश है। इस प्रकार का यह ज्ञान जो साधकों को नास्तिकता की ओर धकेल रहा है। यह गीता ज्ञान दाता का शास्त्रविरूद्ध ज्ञान है, जिस कारण से साधक शास्त्रविधि को त्याग कर मनमाना आचरण करने लग गए और अपना अनमोल मनुष्य जीवन व्यर्थ करते हैं। यदि ये ज्ञान उचित होता कि भगवान में मन न लगे तो अभ्यास (नाम जाप, नित्य पाठ) कर, अभ्यास न कर सके तो भगवान के लिए कर्म कर, भगवान के लिए कर्म न कर सके तो सर्व कर्मों का फल त्याग दें तो चार वेदों की तथा श्री मद्भगवत गीता के अन्य 650 श्लोकों की (क्योंकि लगभग 50 श्लोकों में गीता ज्ञान दाता मत वाला ज्ञान है) क्या आवश्यकता थी। यही 4-5 श्लोक पर्याप्त थे। इस प्रकार गीता ज्ञान दाता ने जो अपना मत बताया है, जो वेदों के विरूद्ध है, वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। गीता अध्याय 12 श्लोक 20 में अपने अज्ञान को छुपाने के लिए फिर कहा है कि परन्तु जो (श्रद्याना:) साधक श्रद्धा के साथ (मत्परमा: = मत् परमा:) मेरे से श्रेष्ठ परमेश्वर को (पर्युवासते) पूजते हैं, वे मुझे अधिक प्रिय हैं। जैसा कि प्रारम्भ में वर्णन है कि गीता अध्याय 5 श्लोक 14 से 16, 20, 24, 25, 26 में भी प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य प्रभु के विषय में बताया है। गीता अध्याय 5 श्लोक 14 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि (प्रभु) परमात्मा किसी मनुष्य के न तो कर्तापन की, न कर्मक, न कर्मफल संयोग की उत्पत्ति करता है, किन्तु सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करते हैं।

गीता अध्याय 5 श्लोक 15 :- (विभु:) सर्वव्यापी अर्थात् वासुदेव जिसका गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में वर्णन है। कहा है कि सर्व प्राणियों की उत्पत्ति अन्न से होती है, अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है, वर्षा धार्मिक अनुष्ठानों अर्थात् यज्ञों से होती है। यज्ञ शास्त्रानुकूल धार्मिक कर्मों से उत्पन्न होते हैं। धार्मिक कर्म तो ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष से उत्पन्न होते हैं। ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष को (अक्षरः सम् उद्ध भवम्) अविनाशी परमात्मा अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि (सर्वगतम् ब्रह्म) सर्वव्यापी परमात्मा अर्थात् "विभु:" सर्वव्यापी परमेश्वर न किसी के पाप और न शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है। उसी से सर्व (जन्तव:) जीव-जन्तु तथा मनुष्य मोहित हो रहे हैं।

गीता अध्याय 5 श्लोक 16 तथा 17 को पढ़ने से स्पष्ट हो जाएगा कि गीता

ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर के विषय में बताया है। इसी प्रकार गीता अध्याय 5 श्लोक 20, 24, 25, 26 को गीता में अन्य अनुवादकों द्वारा किए सरलार्थ से समझा जा सकता है।

इसी प्रकार गीता अध्याय 6 श्लोक 7 में स्पष्ट "परमात्मा" शब्द मूल पाठ में लिखा है जो गीता ज्ञान दाता से अन्य "परमात्मा" का प्रमाण है क्योंकि गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि श्लोक 16 में वर्णित दो पुरूषों, क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष से अन्य कोई उत्तम पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम है जिसे (परमात्मा इति उदाहृत) परमात्मा कहा जाता है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है, वह अविनाशी परमात्मा है। इसमें (गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में) भी "परमात्मा" शब्द है। इस प्रकार गीता के अमत ज्ञान को समझना है, केवल गीता जी के पढ़ने मात्र से कल्याण नहीं है, इस के अमत ज्ञान को समझकर इसके अनुसार अपनी धार्मिक क्रियाएं करने से तीनों लाभ हैं जो गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में सुख प्राप्ति, सिद्धि-शक्ति प्राप्ति तथा परम गति अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्ति के लिए बताए हैं।

अब पुनः उसी प्रसंग पर चर्चा करते हैं जो प्रश्नकर्ता ने जानना चाहा है कि "गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा कौन है तथा उसने अपने से अन्य किस परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है?

उत्तर चल रहा है। यह तो स्पष्ट ही हो चुका है कि गीता ज्ञान दाता से अन्य "परम अक्षर ब्रह्म" है। गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में उस परमेश्वर (परम अक्षर पुरूष) की शरण में जाने के लिए कहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 66, गीता अध्याय 8 श्लोक 28, गीता अध्याय 12 श्लोक 6 से 7 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मेरी भक्ति भी की जाती है, जैसे गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''ओम् (ॐ) तत् सत्'' तीन नाम का जाप परम अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए है। गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी साधना करने का केवल एक ''ओम्'' (ॐ) नाम बताया है। पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए ''ॐ'' नाम का जाप भी साधक करता है। इसलिए गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में कहा है :- योगी अर्थात् भक्त तत्वज्ञान के द्वारा इस रहस्य को जानकर जो वेदों के अनुसार भक्ति करने से, उसी के अनुसार यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान करने से, तप अर्थात् अपने धर्म पर दढ़ता से लगे रहने से जो शारीरिक, मानसिक कठिनाई झेलनी पड़ती है, उस तप से तथा दान करने से जो पुण्य फल होता है अर्थात् धार्मिक कर्म से भक्ति फल होता है, उसका (अत्येति) उल्लंघन कर जाता है अर्थात् त्याग जाता है, वह (आद्य) सनातन (परम्) अन्य = दूसरे (स्थानम्) धाम को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 12 श्लोक 7 से 8 में कहा है कि :- जो (मत्पराः = मत् पराः)

मेरे से दूसरे परमात्मा की भक्ति करने वाले सर्वभक्तजन मेरी भक्ति के सर्व भक्ति कर्म मुझको अर्पण करके मुझमें त्याग जाते हैं। जो अनन्य भक्ति उस मेरे से परे अर्थात् दूसरे को भजते हैं।

गीता अध्याय 12 श्लोक 7 में वर्णन है कि हे अर्जुन! मुझमें चित लगाने वाले, मुझे जानने वाले (आवेशित) आवेश के साथ (चेतासाम्) मुझे चेत चुके हैं, मुझे जान चुके हैं। उन भक्तों का मैं शीघ्र ही संसार समुद्र से (सम् उद्धर्ता = समुद्धर्ता) उसी प्रकार उद्धार कर देता हूँ। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में कहा है कि :- सर्वधर्मान् परित्यज्य माम, एकम शरणम् व्रज।
अहम् त्वा सर्व पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अन्य अनुवादकर्ताओं ने जो अनुवाद इस गीता अध्याय 18 श्लोक 66 का किया है, वह इस प्रकार है जो गलत है :- सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण में (व्रज) आजा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

विवेचन :- जो अनुवाद किया है कि सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर केवल तू एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आजा, यह गलत है।

विचार करें :- गीता अध्याय 18 श्लोक 46,62, अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 17 में सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमात्मा तो कोई अन्य कहा है, जिसे गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म कहा है। यहाँ गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में अनुवादक ने अपनी ओर से महिमा जोड़ी है जो व्यर्थ है। फिर कहा है कि सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें त्यागकर मेरी शरण में आजा। यह भी न्याय संगत बात नहीं है। यदि कोई कहे कि सर्व कर्म मुझमें छोड़ और मेरी शरण में आजा। इससे भी स्पष्ट है कि सर्व धार्मिक कर्मों की भक्ति कमाई को मुझ में छोड़कर अन्य की शरण में जा। वैसे भी "व्रज" का अर्थ जाना है, आना नहीं किया जा सकता। जैसे अंग्रेजी के शब्द "Go" का अर्थ जाना है, उसका अर्थ आना नहीं किया जाना चाहिए। फिर अन्य प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 7 में अर्जुन ने कहा है कि मैं आप का शिष्य हूँ, आप की शरण में हूँ, मुझे उचित शिक्षा दीजिए। फिर गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 4 श्लोक 3 में कहा है कि तू मेरा भक्त तथा सखा है। यहाँ गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में यह अनुवाद करना कि मेरी शरण में आजा, बिल्कुल अनुचित है क्योंकि अर्जुन तो पहले ही श्री कृष्ण की शरण था, ऊपर सिद्ध हो चुका है। तत्वज्ञान न होने के कारण अनुवादकों ने अर्थों के अनर्थ कर रखे हैं।

गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि उस परमेश्वर की शरण में जा, उस परमेश्वर की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। गीता अध्याय 18 श्लोक 46 में कहा कि "जिस

परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्म करते-करते पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में स्पष्ट किया है कि श्लोक 16 में कहे दो पुरूषों (क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष) से उत्तम पुरूष तो कोई अन्य ही है जिसे परमात्मा कहा जाता है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। वह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वदर्शी सन्त की प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए, जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर संसार में नहीं आते। जिस परमेश्वर से संसार रूपी वक्ष की प्रवत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी की भक्ति करो।

गीता ज्ञान दाता ने अपनी स्थिति गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में स्पष्ट कर ही दी है कि अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, आगे भी होते रहेंगें, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। जिस प्रभु की स्वयं जन्म-मत्यु होती है तो वह भी अविनाशी नहीं हुआ, उसका उपासक भी जन्मता-मरता रहेगा, ब्रह्म का साधक वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि जहाँ जाने के पश्चात् पुनः जन्म नहीं होता। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 का वास्तविक अनुवाद इस प्रकार है।

अनुवादः- ("सर्व धर्मान्") सम्पूर्ण धार्मिक कर्म जो मेरी उपासना के हैं, उनकी भक्ति कमाई है। उन्हें (माम्) मुझको (परित्यज्य) त्यागकर तू (एकम्) उस एक जिसके समान दूसरा नहीं है, अद्वितीय सर्व शक्तिमान परमेश्वर अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की (शरणम्) शरण में (व्रज) जा। (अहम् त्वा) मैं तुझे (सर्व पापेभ्यः) सम्पूर्ण पापों से (मोक्षयिष्यामि) मुक्त कर दूँगा, (मा शुचः) शोक मत कर। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो मन्त्र मेरी उपासना के हैं, उनकी भक्ति की कमाई मुझको त्यागकर तू केवल उस एक अर्थात् जिसके समान कोई अन्य शक्ति न हो, अद्वितीय सर्व शक्तिमान परमेश्वर अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की शरण में जा, मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर। (गीता अध्याय 18 श्लोक 66)

विश्लेषण :- गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में गीता ज्ञान दाता ने संकेत किया है कि उस (ब्राह्मणः) सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति का ''ॐ तत् सत्'' यह तीन मन्त्र का जाप है। इसी का जाप करने का निर्देश है। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में अपनी उपासना का मन्त्र बताया है किः- मुझ ब्रह्म की भक्ति का केवल एक ''ओम्'' (ॐ) अक्षर है, जो इसका उच्चारण करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है तो उसको मेरी परम गति (मोक्ष) प्राप्त होती है। ''ॐ'' का जाप ब्रह्म का जाप है, इससे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, यही परम गति

ॐ के जाप से होती है जिसे गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अति अनुत्तम अर्थात् अश्रेष्ठ कहा है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्म लोक तक जितने भी लोक हैं, उनमें गए हुए साधक पुनरावृति में हैं अर्थात् ब्रह्म लोक तक गए साधक पुनः जन्म-मृत्यु में रहते हैं, इसलिए उपरोक्त गीता अध्याय 18 श्लोक 46, 62, 66 अध्याय 15 श्लोक 4 तथा 17 में किसी समर्थ परमेश्वर की शरण में जाने के लिए कहा है जो ''ऊँ तत् सत्'' नाम का जाप (गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में तीन मन्त्र ऊँ तत् सत) है, इसमें जो ''ऊँ'' नाम है, वह ब्रह्म का जाप है। इसी ब्रह्म को गीता अध्याय 15 श्लोक 16 में क्षर पुरूष कहा है तथा दूसरा जो अक्षर पुरूष कहा है। अक्षर पुरूष का जाप "तत्" मन्त्र का है, यह सांकेतिक है तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि "उत्तम पुरूषः तु अन्यः" पुरूषोत्तम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सर्व शक्तिमान पुरूष तो क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष से अन्य ही है। उसका मन्त्र "सत्" है जो सांकेतिक है। उस परमेश्वर अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म जिसको सन्त भाषा में सत्य पुरूष कहते हैं, के उस परमपद अर्थात् सनातन परम धाम जिसे सन्त भाषा में "सत्यलोक" कहते हैं, में जाने के लिए अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करने के लिए गीता अध्याय 17 श्लोक 23 वाले ''ऊँ तत् सत्'' मन्त्र का जाप करना होता है। अन्य कोई नाम जाप पूर्ण मोक्ष का नहीं है। ''तत्-सत्'' ये दोनों अन्य मन्त्र हैं जो उपदेश लेने वाले को उपदेश के समय ही सार्वजनिक किए जाते हैं। ''ऊँ'' नाम का जाप ब्रह्म = क्षर पुरूष का है, गीता ज्ञान दाता का है। इसकी उपासना ''ऊँ'' नाम के जाप से होती है। ''ऊँ'' नाम के जाप की कमाई अर्थात् धार्मिक कर्म ब्रह्म को त्यागने होते हैं। हम पहले बिना तत्वज्ञान के ''ऊँ'' नाम के जाप की कमाई (भक्ति धन) ब्रह्म लोक में जाकर समाप्त कर देते थे, पाप यानि कर्ज (Loan) शेष रह जाते थे। उनको नरक में तथा 84 लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाकर भोगा करते थे। अब हम ''ऊँ'' नाम के जाप का भक्ति धन ब्रह्म को त्याग देंगे, इसका फल ब्रह्म लोक में नहीं भोगेंगे, जिसके प्रतिफल में यह ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष हमारे सर्व पापों यानि कर्ज को समाप्त कर देगा। इस गीता अध्याय 18 श्लोक 66 का यह भावार्थ है। फिर हम "तत्" मन्त्र के जाप की कमाई अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म (गीता ज्ञान दाता से दूसरा ब्रह्म) को त्याग देंगे। उसका 7 शंख ब्रह्माण्ड का क्षेत्र है जिसको पार करके सनातन परम धाम (सत्यलोक) में जाने का किराया देना होता है। दूसरे शब्दों में टोल टैक्स (Toll Tax) वह "तत्" मन्त्र के जाप की कमाई से पूरा हो जाता है। फिर "सत्" मन्त्र जो सत्य पुरूष (परम अक्षर ब्रह्म) का जाप है, इसकी कमाई लेकर हम परमेश्वर के उस परमपद में अर्थात् सनातन परम धाम (सत्य लोक) को प्राप्त हो जाऐंगे, जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर संसार में कभी नहीं आते, परमशान्ति अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। यह सम्पूर्ण भक्ति साधना

मेरे (सन्त रामपाल दास के) पास है, आओ और अपना कल्याण कराओ।

यह है यथार्थ गीता के अध्याय 18 श्लोक 66 का अनुवाद। इसलिए कहा है "गीता तेरा ज्ञान अमृत"। उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा है। उसी की शरण में जाने के लिए गीता ज्ञान दाता ने (गीता अध्याय 18 श्लोक 62, 66) में कहा है। जिस अनमोल गीता ज्ञान को ठीक से न समझकर अज्ञानी व्यक्तियों ने उल्टा अर्थ किया है, लिखा है कि गीता ज्ञान देने वाला अपनी ही शरण में आने को कह रहा है।

जैसे किसी व्यक्ति का कार्य मुख्यमन्त्री के अधिकार में है और वह मन्त्री के पास खड़ा है, मन्त्री से विनय कर रहा है कि यह कार्य कर दीजिए। मन्त्री बुद्धिमान होता है, वह भ्रमित नहीं करता। वह कहेगा कि यदि आप को यह कार्य कराना है तो आप मुख्यमन्त्री के पास जाएं, उनकी कृपा से ही आपका कार्य हो सकता है। उस मन्त्री ने एक पत्र लिखकर दे दिया कि आप उस मुख्यमन्त्री के पास जाइए, उसकी कृपा से आपका यह कार्य सम्भव है। कोई व्यक्ति उसका अर्थ करे कि मन्त्री जी अपने पास आने को ही कह रहा है तो वह गलत अर्थ कर रहा है, मन्त्री के पास से वह व्यक्ति आया ही है। इसी प्रकार गीता के अमृत ज्ञान को न समझकर ''अड़ंगा'' अनुवाद करके पाठकों को अज्ञानी सन्तों ने भ्रमित किया है और जन्म-मरण के चक्र में स्वयं भी गिरे हैं तथा अपने भोले अनुयाईयों को भी जन्म-मरण के चक्र में डाले हुए हैं जो उन अज्ञानियों को पूर्ण विद्वान गीता मनीषी माने बैठे हैं। गीता का ज्ञान किसने कहा था, यह पूर्व के प्रश्न-उत्तर में स्पष्ट हो चुका है, पढ़ें प्रश्न 1 का उत्तर :-

प्रश्न 27 : परमात्मा साकार है या निराकार? अव्यक्त का अर्थ निराकार होता है?

उत्तरः परमात्मा साकार है, नर स्वरुप है अर्थात् मनुष्य जैसे आकार का है। अव्यक्त का अर्थ निराकार नहीं होता, साकार होता है। उदाहरण के लिए जैसा सूर्य के सामने बादल छा जाते हैं, उस समय सूर्य अव्यक्त होता है। हमें भले ही दिखाई नहीं देता, परन्तु सूर्य अव्यक्त है, साकार है। जो प्रभु हमें सामान्य साधना से दिखाई नहीं देते, वे अव्यक्त कहे जाते हैं।

जैसे गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में गीता ज्ञान दाता ने अपने आपको अव्यक्त कहा है क्योंकि वह श्री कृष्ण में प्रवेश करके बोल रहा था। जब व्यक्त हुआ तो विराट रुप दिखाया था। यह पहला अव्यक्त प्रभु हुआ जो क्षर पुरुष कहलाता है। जिसे काल भी कहते है। गीता अध्याय 8 श्लोक 17 से 19 तक दूसरा अव्यक्त अक्षर पुरुष है। गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि इस अव्यक्त अर्थात् अक्षर पुरुष से दूसरा सनातन अव्यक्त परमेश्वर अर्थात् परम अक्षर पुरुष है। इस प्रकार ये तीनों साकार(नराकार) प्रभु हैं। अव्यक्त का अर्थ

निराकार नहीं होता। क्षर पुरुष (ब्रह्म) ने प्रतिज्ञा की है कि मैं कभी भी अपने वास्तविक रुप में किसी को भी दर्शन नहीं दूँगा।

प्रमाण : गीता अध्याय 11 श्लोक 47-48 में जिसमें कहा है कि हे अर्जुन! यह मेरा विराट रुप आपने देखा, यह मेरा रुप आपके अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा, मैंने तुझ पर अनुग्रह करके दिखाया है।

गीता अध्याय 11 श्लोक 48 में कहा है कि यह मेरा स्वरुप न तो वेदों में वर्णित विधि से, न जप से, न तप से, न यज्ञ आदि से देखा जा सकता। इससे सिद्ध हुआ कि क्षर पुरुष (गीता ज्ञान दाता) को किसी भी ऋषि-महर्षि व साधक ने नहीं देखा। जिस कारण से इसे निराकार मान बैठे। सूक्ष्म वेद (तत्व ज्ञान) में कहा है कि :- ''खोजत–खोजत थाकिया, अन्त में कहा बेचून। (निराकार) न गुरु पूरा न साधना, सत्य हो रहे जूनमं–जून (जन्म–मरण)।।

अब गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में गीता ज्ञान दाता ने स्पष्ट कर ही दिया है कि मैं अपनी योग माया से छिपा रहता हूँ। किसी के समक्ष नहीं आता, मैं अव्यक्त हूँ। छिपा है तो साकार है। अक्षर पुरुष भी अव्यक्त है, यह ऊपर प्रमाणित हो चुका है। इस प्रभु (अक्षर पुरूष) की यहाँ कोई भूमिका नहीं है। यह अपने 7 शंख ब्रह्माण्डों तक सीमित है। इसलिए इसको कोई नहीं देख सका।

❖ परम अक्षर पुरुष :- इस प्रभु की सर्व ब्रह्माण्डों में भूमिका है। यह सत्यलोक में रहते हैं जो पृथ्वी से 16 शंख कोस (एक कोस लगभग 3 किमी. का होता है) दूर है। इसकी प्राप्ति की साधना वेदों (चारों वेदों) में वर्णित नहीं है। जिस कारण से इस प्रभु को कोई नहीं देख सका। जब यह प्रभु (परम अक्षर ब्रह्म) पृथ्वी पर सशरीर प्रकट होता है तो कोई इन्हें पहचान नहीं पाता। परमात्मा कहते भी हैं कि:-

''हम ही अलख अल्लाह हैं, कुतुब–गोस और पीर।
गरीब दास खालिक धनी, हमरा नाम कबीर।।''

हम पूर्ण परमात्मा हैं, हम ही पीर अर्थात् सत्य ज्ञान देने वाले सत्गुरु हैं। सर्व सृष्टि का मालिक भी मैं ही हूँ, मेरा नाम कबीर है। परन्तु सर्व साधकों, ऋषियों-महर्षियों ने यही ज्ञान दृढ़ कर रखा होता है कि परमात्मा तो निराकार है। वह देखा नहीं जा सकता। यह पृथ्वी पर विचरने वाला जुलाहा (धाणक) कबीर एक कवि कैसे परम अक्षर ब्रह्म हो सकता है?

उसका समाधान इस प्रकार है :-

विश्व में कोई भी परमात्मा चाहने वाला बुद्धिमान व्यक्ति चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) को गलत नहीं मानता। वर्तमान में आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द को वेदों का पूर्ण विद्वान माना जाता रहा है। इनका भी यह कहना है कि ''परमात्मा निराकार'' है। आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द

वेदों के ज्ञान को सत्य मानते हैं। इन्होंने स्वयं ही वेदों का हिन्दी अनुवाद किया है। जिसमें स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा ऊपर के लोक में रहता है। वहाँ से गति करके (चल कर सशरीर) पृथ्वी पर आता है। अच्छी आत्माओं को मिलता है, उनको यथार्थ भक्ति का ज्ञान सुनाता है। परमात्मा तत्वज्ञान अपने मुख कमल से उच्चारण करके लोकोक्तियों, साखियों, शब्दों, दोहों तथा चौपाईयों के रुप में पदों द्वारा बोलता है। जिस कारण से प्रसिद्ध कवि की उपाधि भी प्राप्त करता है। कवियों की तरह आचरण करता हुआ पृथ्वी के ऊपर विचरण करता रहता है। भक्ति के गुप्त मन्त्रों का आविष्कार करके साधकों को बताता है। भक्ति करने के लिए प्रेरणा करता है।

प्रमाण देखें वेदों के निम्न मंत्रों की फोटोकापियाँ इसी पुस्तक के पृष्ठ 104 पर।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मन्त्र 26-27, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 82 मन्त्र 1-2, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 16-20, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मन्त्र 1, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 95 मन्त्र 2, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 20 मन्त्र 1 और भी अनेकों वेद मन्त्रों में उपरोक्त प्रमाण है कि परमात्मा मनुष्य जैसा नराकार है। श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 4 श्लोक 32 तथा 34 में भी प्रमाण है। गीता ज्ञान दाता ने बताया कि हे अर्जुन! परम अक्षर ब्रह्म अपने मुख कमल से तत्वज्ञान बोलकर बताता है, उस सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की वाणी में यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों की जानकारी विस्तार से कही गई है। उसको जानकर सर्व पापों से मुक्त हो जाएगा। फिर गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी सन्तों के पास जाकर समझ। उनको दण्डवत प्रणाम करके विनयपूर्वक प्रश्न करने से वे तत्वदर्शी सन्त तुझे तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

यह प्रमाण आप को बताए और विशेष बात यह है कि गीता चारों वेदों का सारांश है। इसमें सांकेतिक ज्ञान अधिक है। यह भी स्पष्ट हुआ कि तत्वज्ञान गीता ज्ञान से भी भिन्न है। वह केवल तत्वदर्शी संत ही जानते हैं जिनको परम अक्षर ब्रह्म स्वयं आकर धरती पर मिलते हैं।

प्रश्न 28 : किन-किन पुण्यात्मा महात्माओं को परमात्मा मिले हैं?

उत्तर : परमात्मा चारों युगों में प्रकट होकर ज्ञान सुनाते हैं। 1. सतयुग में ''सत्यसुकृत'' नाम से, 2. त्रेता युग में ''मुनीन्द्र'' नाम से, 3. द्वापर युग में ''करुणामय'' नाम से, 4. कलयुग में ''कबीर'' नाम से परमेश्वर प्रकट हुए हैं। सूक्ष्म वेद में कहा है :-

सतयुग में सतसुकृत कह टेरा, त्रेता नाम मुनिन्द्र मेरा।।
द्वापर में करुणामय कहाया, कलयुग नाम कबीर धराया।।

''किस-किसको मिला परमात्मा''

कलयुग में परमेश्वर जिन-जिन महान आत्माओं को मिले, उनको तत्वज्ञान बताया, उनका मैं संक्षिप्त वर्णन करता हूँ:-

''सन्त धर्मदास जी से प्रथम बार परमेश्वर कबीर जी का साक्षात्कार''

1. श्री धर्मदास जी बनिया जाति से थे जो बाँधवगढ़ (मध्य प्रदेश) के रहने वाले बहुत धनी व्यक्ति थे। उनको भक्ति की प्रेरणा बचपन से ही थी। जिस कारण से एक रुपदास नाम के वैष्णव सन्त को गुरु धारण कर रखा था। हिन्दू धर्म में जन्म होने के कारण सन्त रुपदास जी, श्री धर्मदास जी को राम कंष्ण, विष्णु तथा शंकर जी की भक्ति करने को कहते थे। एकादशी का व्रत, तीर्थों पर भ्रमण करना, श्राद्ध कर्म, पिण्डोदक क्रिया सब करने की राय दे रखी थी। गुरु रुपदास जी द्वारा बताई सर्व साधना श्री धर्मदास जी पूरी आस्था के साथ किया करते थे। गुरु रुपदास जी की आज्ञा लेकर धर्मदास जी मथुरा नगरी में तीर्थ-दर्शन, तीर्थ स्नान करने तथा गिरीराज (गोवर्धन) पर्वत की परिक्रमा करने के लिए गए थे। परम अक्षर ब्रह्म एक जिन्दा महात्मा की वेशभूषा में धर्मदास जी को स्वयं मथुरा में मिले। श्री धर्मदास जी ने उस तीर्थ तालाब में स्नान किया जिसमें श्री कंष्ण जी बाल्यकाल में स्नान किया करते थे। फिर उसी जल से एक लोटा भरकर लाये। भगवान श्री कंष्ण जी की पीतल की मूर्ति (सालिग्राम) के चरणों पर डालकर दूसरे बर्तन में डालकर चरणामंत बनाकर पीया। फिर सालिग्राम को स्नान करवाकर अपना कर्मकाण्ड पूरा किया। एक स्थान को लीपकर अर्थात् गारा तथा गाय का गोबर मिलाकर कुछ भूमि पर पलस्तर करके उस पर स्वच्छ कपड़ा बिछाकर श्रीमद्भगवत् गीता का पाठ करने बैठे। यह सर्व क्रिया जब धर्मदास जी कर रहे थे। परमात्मा जिन्दा वेश में थोड़ी दूरी पर बैठे देख रहे थे। धर्मदास जी भी देख रहे थे कि एक मुसलमान सन्त मेरी भक्ति क्रियाओं को बहुत ध्यानपूर्वक देख रहा है, लगता है इसको हम हिन्दुओं की साधना मन भा गई है। इसलिए श्रीमद्भगवत् गीता का पाठ कुछ ऊँचे स्वर में करने लगा तथा हिन्दी का अनुवाद भी पढ़ने लगा। परमेश्वर उठकर धर्मदास जी के निकट आकर बैठ गए। धर्मदास जी को अपना अनुमान सत्य लगा कि वास्तव में इस जिन्दा वेशधारी बाबा को हमारे धर्म का भक्ति मार्ग अच्छा लग रहा है। इसलिए उस दिन गीता के कई अध्याय पढ़े तथा उनका अर्थ भी सुनाया। जब धर्मदास जी अपना दैनिक भक्ति कर्म कर चुका, तब परमात्मा ने कहा कि हे महात्मा जी, आप का शुभ नाम क्या है? कौन जाति से हैं। आप जी कहाँ के निवासी हैं? किस धर्म-पंथ से जुड़े हैं? कंपया बताने का कष्ट करें। मुझे आपका ज्ञान बहुत अच्छा लगा, मुझे भी

कुछ भक्ति ज्ञान सुनाइए। आप की अति कपा होगी।

धर्मदास जी ने उत्तर दिया :- मेरा नाम धर्मदास है, मैं बांधवगढ़ गाँव का रहने वाला वैश्य कुल से हूँ। मैं वैष्णव पंथ से दीक्षित हूँ, हिन्दू धर्म में जन्मा हूँ। मैंने पूरे निश्चय के साथ तथा अच्छी तरह ज्ञान समझकर वैष्णव पंथ से दीक्षा ली है। मेरे गुरुदेव श्री रुपदास जी हैं। आध्यात्म ज्ञान से मैं परिपूर्ण हूँ। अन्य किसी की बातों में आने वाला मैं नहीं हूँ। राम-कष्ण जो श्री विष्णु जी के ही अवतार हुए हैं तथा भगवान शंकर की भी पूजा करता हूँ, एकादशी का व्रत रखता हूँ। तीर्थों में जाता हूँ, वहाँ दान करता हूँ। शालिग्राम की पूजा नित्य करता हूँ। यह पवित्र पुस्तक श्रीमद्भगवत् गीता है, इसका नित्य पाठ करता हूँ। मैं अपने पूर्वजों का जो स्वर्गवासी हो चुके हैं, श्राद्ध भी करता हूँ। पिण्डदान भी करता हूँ। मैं कोई जीव हिंसा नहीं करता, माँस, मदिरा, तम्बाकू सेवन नहीं करता।

परमेश्वर कबीर जी ने पूछा कि आप जिस पुस्तक को पढ़ रहे थे, इसका नाम क्या है?

धर्मदास जी ने बताया कि यह श्रीमद् भगवत गीता है। हम शुद्ध रहते हैं, शुद्र को निकट भी नहीं आने देते।

प्रश्न 29 :- (कबीर जी जिन्दा रुप में) आप क्या नाम-जाप करते हो?

उत्तर :- (धर्मदास जी का) हम हरे कष्ण, कष्ण-कष्ण हरे-हरे, ओम् नमः शिवाय, ओम् भगवते वासुदेवाय नमः, राधे-राधे श्याम मिलादे, गायत्री मन्त्र का जाप 108 बार प्रतिदिन करता हूँ। विष्णु सहंस्रनाम का जाप भी करता हूँ।

प्रश्न 30 :- (जिन्दा बाबा का) हे महात्मा धर्मदास! गीता का ज्ञान किसने दिया?

उत्तर : (धर्मदास का) कुल के मालिक सर्वशक्तिमान भगवान श्री कष्ण जी ने, यही श्री विष्णु जी हैं।

प्रश्न 31 : (जिन्दा बाबा रुप में परमात्मा का) :- आप जी के पूज्य देव श्री कष्ण अर्थात् श्री विष्णु हैं। उनका बताया भक्ति ज्ञान गीता शास्त्र है।

हे धर्मदास! एक किसान को वद्धावस्था में पुत्र प्राप्त हुआ। किसान ने विचार किया कि जब तक पुत्र कषि करने योग्य होगा, तब तक मेरी मत्यु हो जाएगी। इसलिए उसने कषि करने का तरीका अपना अनुभव एक बही (रजिस्टर) में लिख दिया। अपने पुत्र से कहा कि बेटा जब आप युवा हो जाओ तो मेरे इस रजिस्टर में लिखे अनुभव को बार-2 पढ़ना। इसके अनुसार फसल बोना। कुछ दिन पश्चात् पिता की मत्यु हो गई, पुत्र प्रतिदिन अपने पिता के अनुभव का पाठ करने लगा। परन्तु फसल का बीज व बिजाई, सिंचाई उस अनुभव के विपरीत करता था। तो क्या वह पुत्र अपने कषि के कार्य में सफलता प्राप्त करेगा?

उत्तर : (धर्मदास का) : इस प्रकार तो पुत्र निर्धन हो जाएगा। उसको तो पिता के लिखे अनुभव के अनुसार प्रत्येक कार्य करना चाहिए। वह तो मूर्ख पुत्र है।

प्रश्न 32 : (बाबा जिन्दा रुप में भगवान जी का) हे धर्मदास जी! गीता शास्त्र आप के परमपिता भगवान कृष्ण उर्फ विष्णु जी का अनुभव तथा आपको आदेश है कि इस गीता शास्त्र में लिखे मेरे अनुभव को पढ़कर इसके अनुसार भक्ति करोगे तो मोक्ष प्राप्त करोगे। क्या आप जी गीता में लिखे श्री कृष्ण जी के आदेशानुसार भक्ति कर रहे हो? क्या गीता में वे मन्त्र जाप करने के लिए लिखा है जो आप जी के गुरुजी ने आप जी को जाप करने के लिए दिए हैं? (हरे राम-हरे राम, राम-राम हरे-हरे, हरे कृष्णा-हरे कृष्णा, कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे, ओम नमः शिवाय, ओम भगवते वासुदेवाय नमः, राधे-राधे श्याम मिलादे, गायत्री मन्त्र तथा विष्णु सहंस्रनाम) क्या गीता जी में एकादशी का व्रत करने तथा श्राद्ध कर्म करने, पिण्डोदक क्रिया करने का आदेश है?

उत्तर :- (धर्मदास जी का) नहीं है।

प्रश्न 33 :- (परमेश्वर जी का) फिर आप जी तो उस किसान के पुत्र वाला ही कार्य कर रहे हो जो पिता की आज्ञा की अवहेलना करके मनमानी विधि से गलत बीज गलत समय पर फसल बीजकर मूर्खता का प्रमाण दे रहा है। जिसे आपने मूर्ख कहा है। क्या आप जी उस किसान के मूर्ख पुत्र से कम हैं?

धर्मदास जी बोले : हे जिन्दा! आप मुसलमान फकीर हैं। इसलिए हमारे हिन्दू धर्म की भक्ति क्रिया व मन्त्रों को गलत कह रहे हो।

उत्तर : (कबीर जी का जिन्दा रुप में) हे स्वामी धर्मदास जी! मैं कुछ नहीं कह रहा, आपके धर्मग्रन्थ कह रहे हैं कि आप के धर्म के धर्मगुरु आप जी को शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण करा रहे हैं जो आपकी गीता के अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी कहा है कि हे अर्जुन! जो साधक शास्त्र विधि को त्यागकर मनमाना आचरण करता है अर्थात् मनमाने मन्त्र जाप करता है, मनमाने श्राद्ध कर्म व पिण्डोदक कर्म व व्रत आदि करता है, उसको न तो कोई सिद्धि प्राप्त हो सकती, न सुख ही प्राप्त होगा और न गति अर्थात् मुक्ति मिलेगी, इसलिए व्यर्थ है। गीता अध्याय 16 श्लोक 24 में कहा है कि इससे तेरे लिए कर्त्तव्य अर्थात् जो भक्ति कर्म करने चाहिए तथा अकर्त्तव्य (जो भक्ति कर्म न करने चाहिए) की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। उन शास्त्रों में बताए भक्ति कर्म को करने से ही लाभ होगा।

धर्मदास जी : हे जिन्दा! तू अपनी जुबान बन्द करले, मुझसे और नहीं सुना जाता। जिन्दा रुप में प्रकट परमेश्वर ने कहा, हे वैष्णव महात्मा धर्मदास जी! सत्य इतनी कड़वी होती है जितना नीम, परन्तु रोगी को कड़वी औषधि न चाहते हुए भी सेवन करनी चाहिए। उसी में उसका हित है। यदि आप नाराज होते हो तो मैं चला। इतना कहकर परमात्मा (जिन्दा रुप धारी) अन्तर्ध्यान हो गए। धर्मदास को बहुत आश्चर्य हुआ तथा सोचने लगा कि यह कोई सामान्य सन्त नहीं

था। यह पूर्ण विद्वान सिद्ध पुरूष लगता है। मुसलमान होकर हिन्दू शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है। यह कोई देव हो सकता है। धर्मदास जी अन्दर से मान रहे थे कि मैं गीता शास्त्र के विरुद्ध साधना कर रहा हूँ। परन्तु अभिमानवश स्वीकार नहीं कर रहे थे। जब परमात्मा अन्तर्ध्यान हो गए तो पूर्ण रुप से टूट गए कि मेरी भक्ति गीता के विरुद्ध है। मैं भगवान की आज्ञा की अवहेलना कर रहा हूँ। मेरे गुरु श्री रुपदास जी को भी वास्तविक भक्ति विधि का ज्ञान नहीं है। अब तो इस भक्ति को करना, न करना बराबर है, व्यर्थ है। बहुत दुःखी मन से इधर-उधर देखने लगा तथा अन्दर से हृदय से पुकार करने लगा कि मैं कैसा नासमझ हूँ। सर्व सत्य देखकर भी एक परमात्मा तुल्य महात्मा को अपनी नासमझी तथा हठ के कारण खो दिया। हे परमात्मा! एंक बार वही सन्त फिर से मिले तो मैं अपना हठ छोड़कर नम्र भाव से सर्वज्ञान समझूँगा। दिन में कई बार हृदय से पुकार करके रात्रि में सो गया। सारी रात्रि करवट लेता रहा। सोचता रहा हे परमात्मा! यह क्या हुआ। सर्व साधना शास्त्रविरुद्ध कर रहा हूँ। उस फरिश्ते ने मेरी आँखें खोल दी। मेरी आयु 60 वर्ष हो चुकी है। अब पता नहीं वह देव (जिन्दा रुपी) पुनः मिलेगा कि नहीं। प्रातः काल वक्त से उठा। पहले खाना बनाने लगा। उस दिन भक्ति की कोई क्रिया नहीं की। पहले दिन जंगल से कुछ लकड़ियाँ तोड़कर रखी थी। उनको चूल्हे में जलाकर भोजन बनाने लगा। एक लकड़ी मोटी थी। वह बीचो-बीच थोथी थी। उसमें अनेकों चीटियाँ थीं। जब वह लकड़ी जलते-जलते छोटी रह गई तब उसका पिछला हिस्सा धर्मदास जी को दिखाई दिया तो देखा उस लकड़ी के अन्तिम भाग में कुछ तरल पानी-सा जल रहा है। चीटियाँ निकलने की कोशिश कर रही थी, वे उस तरल पदार्थ में गिरकर जलकर मर रही थी। कुछ अगले हिस्से में अग्नि से जलकर मर रही थी। धर्मदास जी ने विचार किया। यह लकड़ी बहुत जल चुकी है, इसमें अनेकों चीटियाँ जलकर भष्म हो गई है। उसी समय अग्नि बुझा दी। विचार करने लगा कि इस पापयुक्त भोजन को मैं नहीं खाऊँगा। किसी साधु सन्त को खिलाकर मैं उपवास रखूँगा। इससे मेरे पाप कम हो जाएंगे। यह विचार करके सर्व भोजन एक थाल में रखकर साधु की खोज में चल पड़ा। परमेश्वर कबीर जी ने अन्य वेशभूषा बनाई जो हिन्दू सन्त की होती है। एक वक्ष के नीचे बैठ गए। धर्मदास जी ने साधु को देखा। उनके सामने भोजन का थाल रखकर कहा कि हे महात्मा जी! भोजन खाओ। साधु रुप में परमात्मा ने कहा कि लाओ धर्मदास! भूख लगी है। अपने नाम से सम्बोधन सुनकर धर्मदास को आश्चर्य तो हुआ परंतु अधिक ध्यान नहीं दिया। साधु रुप में विराजमान परमात्मा ने अपने लोटे से कुछ जल हाथ में लिया तथा कुछ वाणी अपने मुख से उच्चारण करके भोजन पर जल छिड़क दिया। सर्वभोजन की चींटियाँ बन गई। चींटियों से थाली काली हो गई। चींटियाँ अपने अण्डों को मुख

में लेकर थाली से बाहर निकलने की कोशिश करने लगी। परमात्मा भी उसी जिन्दा महात्मा के रुप में हो गए। तब कहा कि हे धर्मदास वैष्णव संत! आप बता रहे थे कि हम कोई जीव हिंसा नहीं करते, आपसे तो कसाई भी कम हिंसक है। आपने तो करोड़ों जीवों की हिंसा कर दी। धर्मदास जी उसी समय साधु के चरणों में गिर गया तथा पूर्व दिन हुई गलती की क्षमा माँगी तथा प्रार्थना कि की हे प्रभु! मुझ अज्ञानी को क्षमा करो। मैं कहीं का नहीं रहा क्योंकि पहले वाली साधना पूर्ण रुप से शास्त्र विरुद्ध है। उसे करने का कोई लाभ नहीं, यह आप जी ने गीता से ही प्रमाणित कर दिया। शास्त्र अनुकूल साधना किस से मिले, यह आप ही बता सकते हैं। मैं आप से पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान सुनने का इच्छुक हूँ। कृपया मुझ किंकर पर दया करके मुझे वह ज्ञान सुनाऐं जिससे मेरा मोक्ष हो सके।

''व्रत करना गीता अनुसार कैसा है''

परमेश्वर (जिन्दा साधु के रुप में) बोले कि हे धर्मदास! आप एकादशी का व्रत करते हो। श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 6 श्लोक 16 में मना किया है कि हे अर्जुन! यह योग (भक्ति) न तो अधिक खाने वाले का और न ही बिल्कुल न खाने वाले का अर्थात् यह भक्ति न ही व्रत रखने वाले, न अधिक सोने वाले की तथा न अधिक जागने वाले की सफल होती है। इस श्लोक में व्रत रखना पूर्ण रुप से मना है। देख अपनी गीता खोलकर, धर्मदास जी को गीता के श्लोक याद भी थे क्योंकि प्रतिदिन पाठ किया करता था। फिर भी सोचा कि कहीं जिन्दा सन्त नाराज न हो जाए, इसलिए गीता खोलकर अध्याय 6 श्लोक 16 पढ़ा तथा स्वीकारा कि आपने मेरी आँखें खोल दी जिन्दा। आप तो परमात्मा के स्वरुप लगते हो।

''श्राद्ध-पिण्डदान गीता अनुसार कैसा है?''

आप श्राद्ध व पिण्डदान करते हो। गीता अध्याय 9 श्लोक 25 में स्पष्ट किया है कि भूत पूजने वाले भूतों को प्राप्त होंगे। श्राद्ध करना, पिण्डदान करना यह भूत पूजा है, यह व्यर्थ साधना है।

''श्राद्ध-पिण्डदान के प्रति रूची ऋषि का वेदमत''

मार्कण्डेय पुराण में ''रौच्य ऋषि के जन्म'' की कथा आती है। एक रुची ऋषि था। वह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों अनुसार साधना करता था। विवाह नहीं कराया था। रुची ऋषि के पिता, दादा, परदादा तथा तीसरे दादा सब पित्तर (भूत) योनि में भूखे-प्यासे भटक रहे थे। एक दिन उन चारों ने रुची ऋषि को दर्शन दिए तथा कहा कि बेटा! आप ने विवाह क्यों नहीं किया? विवाह करके हमारे श्राद्ध करना। रुची ऋषि ने कहा कि हे पितामहो! वेद में इस श्राद्ध

आदि कर्म को अविद्या कहा है, मूर्खों का कार्य कहा है। फिर आप मुझे इस कर्म को करने को क्यों कह रहे हो?

पित्तरों ने कहा कि यह बात सत्य है कि श्राद्ध आदि कर्म को वेदों में अविद्या अर्थात् मूर्खों का कार्य ही कहा है। फिर उन पित्तरों ने वेदविरूद्ध ज्ञान बताकर रूची ऋषि को भ्रमित कर दिया क्योंकि मोह भी अज्ञान की जड़ है। मार्कण्डेय पुराण के प्रकरण से सिद्ध हुआ कि वेदों में तथा वेदों के ही संक्षिप्त रुप गीता में श्राद्ध-पिण्डोदक आदि भूत पूजा के कर्म को निषेध बताया है, नहीं करना चाहिए। उन मूर्ख ऋषियों ने अपने पुत्र को भी श्राद्ध करने के लिए विवश किया। उसने विवाह कराया, उससे रौच्य ऋषि का जन्म हुआ, बेटा भी पाप का भागी बना लिया।

❖ जिसे गायत्री मन्त्र करते हो, वह यजुर्वेद के अध्याय 36 का मन्त्र 3 है जिसके आगे ''ओम्'' अक्षर नहीं है। यदि ''ओम्'' अक्षर को इस वेद मन्त्र के साथ जोड़ा जाता है तो परमात्मा का अपमान है क्योंकि ओम् (ॐ) अक्षर तो ब्रह्म का जाप है। यजुर्वेद अध्याय 36 मन्त्र 3 में परम अक्षर ब्रह्म की महिमा है। यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति पत्र तो लिख रहा है प्रधानमन्त्री को और लिख रहा है सेवा में 'मुख्यमन्त्री जी' तो वह प्रधानमन्त्री का अपमान कर रहा है। फिर बात रही इस मन्त्र यजुर्वेद के अध्याय 36 मन्त्र 3 को बार-बार जाप करने की, यह क्रिया मोक्षदायक नहीं है। मन्त्र का मूल पाठ इस प्रकार है :-

भूर्भवः स्वः तत् सवितु वरेणियम् भंगो देवस्य धीमहि धीयो योनः प्रयोदयात्।

अनुवाद :- (भूः) स्वयंभू परमात्मा पंथ्वी लोक को (भवः) गोलोक आदि भवनों को वचन से प्रकट करने वाला है (स्वः) स्वर्गलोक आदि सुख धाम हैं। (तत्) वह (सवितुः) उन सर्व का जनक परमात्मा है। (वरेणीयम) सर्व साधकों को वरण करने योग्य अर्थात् अच्छी आत्माओं के भक्ति योग्य है। (भंगो) तेजोमय अर्थात् प्रकाशमान (देवस्य) परमात्मा का (धीमहि) उच्च विचार रखते हुए अर्थात् बड़ी समझ से (धी यो नः प्रचोदयात) जो बुद्धिमानों के समान विवेचन करता है, वह विवेकशील व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी बनता है।

भावार्थ : परमात्मा स्वयंभू जो भूमि, गोलोक आदि लोक तथा स्वर्ग लोक है उन सर्व का संजनहार है। उस उज्जवल परमेश्वर की भक्ति श्रेष्ठ भक्तों को यह विचार रखते हुए करनी चाहिए कि जो पुरुषोत्तम (सर्व श्रेष्ठ परमात्मा) है, जो सर्व प्रभुओं से श्रेष्ठ है, उसकी भक्ति करें जो सुखधाम अर्थात् सर्वसुख का दाता है।

उपरोक्त मन्त्र का यह हिन्दी अनुवाद व भावार्थ है। इस की संस्कंत या हिन्दी अनुवाद को पढ़ते रहने से मोक्ष नहीं है क्योंकि यह तो परमात्मा की महिमा का एक अंश है अर्थात् हजारों वेद मन्त्रों में से यजुर्वेद अध्याय 36 का मंत्र सँख्या 3 केवल एक मन्त्र है। यदि कोई चारों वेदों को भी पढ़ता रहे तो भी मोक्ष नहीं। मोक्ष होगा वेदों में वर्णित ज्ञान के अनुसार भक्ति क्रिया करने से। उदाहरण :- विद्युत

की महिमा है कि बिजली अंधेरे को उजाले में बदल देती है, बिजली ट्यूबवेल चलाती है जिससे फसल की सिंचाई होती है। बिजली ऑटा पीसती है, आदि-आदि बहुत से गुण बिजली के लिखे हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन बिजली के गुणों का पाठ करता रहे तो उसे बिजली का लाभ प्राप्त नहीं होगा। लाभ प्राप्त होगा बिजली का कनेक्शन लेने से। कनेक्शन कैसे प्राप्त हो सकता है? उस विधि को प्राप्त करके फिर बिजली के गुणों का लाभ प्राप्त हो सकता है। केवल बिजली की महिमा को गाने मात्र से नहीं।

इसी प्रकार वेद मन्त्रों में अर्थात् श्रीमद् भगवत् गीता (जो चारों वेदों का सार है) में मोक्ष प्राप्ति के लिए जो ज्ञान कहा है, उसके अनुसार आचरण करने से मोक्ष लाभ अर्थात् परमेश्वर प्राप्ति होती है।

प्रश्न 34 :- (धर्मदास जी का) हे जिन्दा! मुझे तो यह भी ज्ञान नहीं है कि गीता में मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान कौन-सा है? मैंनें गीता को पढ़ा है, समझा नहीं। हमारे धर्मगुरुओं ने जो भक्ति बताई, उसे श्रद्धा से करते आ रहे हैं। वर्षों से चला आ रहा भक्ति का शास्त्र विरुद्ध प्रचलन सर्वभक्तों को सत्य लग रहा है। क्या गीता में लिखी भक्ति विधि पर्याप्त है?

उत्तर (जिन्दा बाबा का) :- गीता में केवल ब्रह्म स्तर की भक्तिविधि लिखी है। पूर्ण मोक्ष के लिए परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करनी होगी। गीता में पूर्ण विधि नहीं है, केवल संकेत है। जैसे गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में कहा है कि ''सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ''ऊँ, तत्, सत्'' इस मन्त्र का निर्देश है। इसके स्मरण की विधि तीन प्रकार से है। इस मन्त्र में ऊँ तो क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म का मन्त्र तो स्पष्ट है परन्तु ''पर ब्रह्म'' (अक्षर पुरुष) का मन्त्र ''तत्'' है जो सांकेतिक है, उपदेशी को तत्वदर्शी सन्त बताएगा। ''सत्'' यह मन्त्र पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) का है जो सांकेतिक है, इसको भी तत्वदर्शी सन्त उपदेशी को बताता है। तत्वदर्शी सन्त के पास पूर्ण मोक्ष मार्ग होता है। जो न वेदों में है, न गीता में तथा न पुराणों या अन्य उपनिषदों में है। तत्वज्ञान की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए गीता तथा वेद सहयोगी हैं। जो भक्तिविधि वेद-गीता में है, वही तत्वज्ञान में भी है। सूक्ष्मवेद अर्थात् तत्वज्ञान में वेदों तथा गीता वाली भक्तिविधि तो है ही, इससे भिन्न पूर्ण मोक्ष वाली साधना भी है। उदाहरण के लिए दसवीं कक्षा का पाठ्यक्रम गलत नहीं है, परंतु अधूरा है। B.A., M.A. वाले पाठ्यक्रम में दसवीं वाला ज्ञान भी होता है, उससे आगे का भी होता है। यही दशा वेदों-गीता तथा सूक्ष्मवेद के ज्ञान में अंतर की जानें।

प्रश्न 35 :- (धर्मदास जी का) गीता तथा वेदों में यह कहाँ प्रमाण है कि पूर्ण मोक्ष मार्ग तत्वदर्शी सन्त के पास ही होता है, वेदों व गीता में नहीं है। हे प्रभु जिन्दा! मेरी शंका का समाधान कीजिए, आप का ज्ञान हृदय को छूता है, सत्य

भी है परन्तु विश्वास तो प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर ही होता है।

उत्तर :- (जिन्दा परमेश्वर जी का) गीता अध्याय 4 श्लोक 25 से 30 में गीता ज्ञान दाता ने बताया है कि हे अर्जुन! सर्व साधक अपनी साधना व भक्ति को पापनाश करने वाली अर्थात् मोक्षदायक जान कर ही करते हैं। यदि उनको यह निश्चय न हो कि तुम जो भक्ति कर रहे हो, यह शास्त्रानुकुल नहीं है तो वे साधना ही छोड़ देते। जैसे कई साधक देवताओं की पूजा रुपी यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान करके ही पूजा मानते हैं। अन्य ब्रह्म तक ही पूजा करते हैं। कई केवल अग्नि में घृत आदि डालकर अनुष्ठान करते हैं जिसको हवन कहते हैं। (गीता अध्याय 4 श्लोक 25)

❖ अन्य योगीजन अर्थात् भक्तजन आँख, कान, मुहँ बन्द करके क्रियाएं करते हैं। उसी में अपना मानव जीवन हवन अर्थात् समाप्त करते हैं। (गीता अध्याय 4 श्लोक 26)

❖ अन्य योगीजन अर्थात् भक्तजन श्वांसों को आना-जाना ध्यान से देखकर भक्ति साधना करते हैं जिससे वे आत्मसंयम साधना रुपी अग्नि में अपना जीवन हवन अर्थात् मानव जीवन पूरा करते हैं, जिसे ज्ञान दीप मानते हैं अर्थात् अपनी साधना को श्रेष्ठ मानते हैं। (गीता अध्याय 4 श्लोक 27)

❖ कुछ अन्य साधक द्रव्य अर्थात् धन से होने वाले यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान करते हैं जैसे भोजन भण्डारा करना, कम्बल-कपड़े बाँटना, धर्मशाला, प्याऊ बनवाना, यह यज्ञ करते हैं। कुछ तपस्या करते हैं, कुछ योगासन करते हैं। इसी को परमात्मा प्राप्ति की साधना मानते हैं। कितने ही साधक अहिंसा आदि तीक्ष्ण व्रत करते हैं। जैसे मुख पर पट्टी बाँधकर नंगे पैरों चलना, कई दिन उपवास रखना आदि-आदि। अन्य योगीजन अर्थात् साधक स्वाध्याय अर्थात् प्रतिदिन किसी वेद जैसे ग्रन्थ से कुछ मन्त्रों (श्लोकों) का पाठ करना, यह ज्ञान यज्ञ कहलाता है, करते रहते हैं। इन्हीं क्रियाओं को मोक्षदायक मानते हैं। (गीता अध्याय 4 श्लोक 28)

❖ दूसरे योगीजन अर्थात् भक्तजन प्राण वायु (श्वांस) अपान वायु में पहुँचाने वाली क्रिया करते हैं। अन्य योगीजन इसके विपरीत अपान वायु को प्राण वायु में पहुँचाने वाली क्रिया करते हैं। कितने ही साधक अल्पाहारी रहते हैं। कुछ योग आदि क्रियाऐं करते हैं। जैसे प्राणायाम में लीन साधक पान-अपान की गति को रोककर श्वांस कम लेते हैं। इसी में अपना मानव जीवन हवन अर्थात् समर्पित कर देते हैं। ये सभी उपरोक्त (अध्याय 4 श्लोक 25 से 30 तक) साधक अपने-अपने यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों को करके मानते हैं कि हम पाप का नाश करने वाली साधना भक्ति कर रहे हैं। (गीता अध्याय 4 श्लोक 30)

❖ यदि साधक की साधना शास्त्रानुकूल हो तो हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! इस यज्ञ

से बचे हुए अमंत भोग को खाने वाले साधक सनातन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं और यज्ञ अर्थात् शास्त्रानुकूल साधना न करने वाले पुरुष के लिए तो यह पंथ्वीलोक भी सुखदायक नहीं होता, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है अर्थात् उस शास्त्र विरूद्ध साधक को कोई लाभ नहीं होता। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी है। (गीता अध्याय 4 श्लोक 31)

❖ गीता ज्ञान दाता ने ऊपर के 25 से 30 तक श्लोकों में स्पष्ट किया है कि जो साधक जैसी साधना कर रहा है, उसे मोक्षदायक तथा सत्य मानकर कर रहा है। परन्तु गीता अध्याय 4 के ही श्लोक 32 में बताया कि ''यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों का यथार्थ ज्ञान (ब्रह्मणः मुखे) परम अक्षर ब्रह्म स्वयं अपने मुख कमल से बोलकर देता है। {वह सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की वाणी कही गई है। उसे तत्वज्ञान भी कहते हैं। उसी को पाँचवां वेद (सूक्ष्म वेद) भी कहते हैं।} उस तत्वज्ञान में भक्तिविधि विस्तार के साथ बताई गई है। उसको जानकर साधक सर्व पापों से मुक्त हो जाता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

नोट : गीता अध्याय 4 श्लोक 32 के अनुवाद में सर्व अनुवादकों ने एक जैसी ही गलती कर रखी है। ''ब्रह्मणः'' शब्द का अर्थ वेद कर रखा है। ''ब्रह्मणः मुखे'' का अर्थ वेद की वाणी में'' किया है जो गलत है। उन्हीं अनुवादकों ने गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''ब्रह्मणः'' का अर्थ सच्चिदानन्द घन ब्रह्म किया है जो उचित है। इसलिए गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में भी ''ब्रह्मणः'' का अर्थ सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म करना उचित है। प्रमाण के लिए देखें उपरोक्त गीता के श्लोकों की फोटोकापी इसी पुस्तक के पंष्ठ 204 से 357 पर।

❖ गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि उस ज्ञान को (जो परमात्मा अपने मुख कमल से बोलकर सुनाता है जो तत्वज्ञान है उसको) तू तत्वदर्शी सन्तों के पास जाकर समझ। उनको दण्डवत प्रणाम करने से, कपट छोड़कर नम्रतापूर्वक प्रश्न करने से तत्वदर्शी सन्त तुझे तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

❖ इससे यह भी सिद्ध हुआ कि गीता वाला ज्ञान पूर्ण नहीं है, परन्तु गलत भी नहीं है। गीता ज्ञानदाता को भी पूर्ण मोक्षमार्ग का ज्ञान नहीं है क्योंकि तत्वज्ञान की जानकारी गीता ज्ञानदाता को नहीं है जो परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) ने अपने मुख से बोला होता है। उसको तत्वदर्शी सन्तों से जानने के लिए कहा है।

❖ यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 4 मन्त्र 10 में भी है। कहा है कि परम अक्षर ब्रह्म को कोई तो 'सम्भवात्' अर्थात् राम-कंष्ण की तरह उत्पन्न होने वाला साकार कहते हैं। कोई 'असम्भवात्' अर्थात् परमात्मा उत्पन्न नहीं होता, वह निराकार है। परमेश्वर उत्पन्न होता है या नहीं उत्पन्न होता, वास्तव में कैसा है? यह ज्ञान 'धीराणाम्' तत्वदर्शी सन्त बताते हैं, उनसे सुनो।

प्रश्न 36 :- (धर्मदास जी का) हे प्रभु! हे जिन्दा! तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान है तथा प्रमाणित सद्ग्रन्थों में कहाँ प्रमाण है? आपका ज्ञान आत्मा के आर-पार हो रहा है। गीता का शब्दा-शब्द यथार्थ भावार्थ आप जी के मुख कमल से सुनकर युगों की प्यासी आत्मा कुछ तप्त हो रही है, गद्गद् हो रही है।

उत्तर :- (जिन्दा परमेश्वर जी का) परमेश्वर ने बताया कि पहले तो लक्षण सुन तत्वदर्शी सन्त अर्थात् पूर्ण ज्ञानी सत्गुरु के :-

गुरू के लक्षण चार बखाना, प्रथम वेद शास्त्र को ज्ञाना (ज्ञाता)।
दूजे हरि भक्ति मन कर्म बानी, तीसरे समदृष्टि कर जानी।
चौथे वेद विधि सब कर्मा, यह चार गुरु गुण जानो मर्मा।

कबीर सागर के अध्याय ''जीव धर्म बोध'' के पृष्ठ 1960 पर ये अमृतवाणियां अंकित हैं।

भावार्थः- जो तत्वदर्शी सन्त (पूर्ण सतगुरु) होगा उसमें चार मुख्य गुण होते हैं:-

1. वह वेदों तथा अन्य सभी ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञानी होता है।

2. दूसरे वह परमात्मा की भक्ति मन-कर्म-वचन से स्वयं करता है, केवल वक्ता-वक्ता नहीं होता, उसकी करणी और कथनी में अन्तर नहीं होता।

3. वह सर्व अनुयाईयों को समान दृष्टि से देखता है। ऊँच-नीच का भेद नहीं करता।

4. चौथे वह सर्व भक्तिकर्म वेदों के अनुसार करता तथा कराता है अर्थात् शास्त्रानुकूल भक्ति साधना करता तथा कराता है। यह ऊपर का प्रमाण तो सूक्ष्म वेद में है जो परमेश्वर ने अपने मुखकमल से बोला है। अब आप जी को श्रीमद्भगवत गीता में प्रमाण दिखाते हैं कि तत्वदर्शी सन्त की क्या पहचान बताई है?

श्रीमद्भागवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में स्पष्ट है:-

ऊर्धव मूलम् अधः शाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम्।
छन्दासि यस्य प्रणानि, यः तम् वेद सः वेदवित् ।।

अनुवाद : ऊपर को मूल (जड़) वाला, नीचे को तीनों गुण रुपी शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रुपी पीपल का वृक्ष जानो, इसे अविनाशी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति-प्रलय चक्र सदा चलता रहता है जिस कारण से इसे अविनाशी कहा है। इस संसार रुपी वृक्ष के पत्ते आदि छन्द हैं अर्थात् भाग (Parts) हैं। (य तम् वेद) जो इस संसार रुपी वृक्ष के सर्वभागों को तत्व से जानता है, (सः) वह (वेदवित्) वेद के तात्पर्य को जानने वाला है अर्थात् वह तत्वदर्शी सन्त है। जैसा कि गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि परम अक्षर ब्रह्म स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर अपने मुख कमल से तत्वज्ञान विस्तार से बोलते हैं। परमेश्वर ने अपनी वाणी में अर्थात् तत्वज्ञान में बताया है:-

कबीर, अक्षर पुरुष एक पेड़ है, क्षर पुरुष वाकि डार।

तीनों देवा शाखा हैं, पात रुप संसार।।

भावार्थ :- जमीन से बाहर जो वृक्ष का हिस्सा है, उसे तना कहते हैं। तना तो जानों अक्षर पुरुष, तने से कई मोटी डार निकलती हैं। उनमें से एक मोटी डार जानों क्षर पुरुष। उस डार से तीन शाखा निकलती हैं, उनको जानों तीनों देवता (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव-शंकर जी) और इन शाखाओं को पत्ते लगते हैं, उन पत्तों को संसार जानो।

गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में सांकेतिक विवरण है। तत्वज्ञान में विस्तार से कहा गया है। पहले गीता ज्ञान के आधार से ही जानते हैं।

गीता अध्याय 15 श्लोक 2 में कहते हैं कि संसार रुपी वृक्ष की तीनों गुण (रजगुण ब्रह्माजी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शंकर जी) रुपी शाखाएं है। ये ऊपर (स्वर्ग लोक में) तथा नीचे (पाताल लोक) में फैली हुई हैं।

नोट :- रजगुण ब्रह्मा, सत्गुण विष्णु तथा तमगुण शंकर हैं। देखें प्रमाण प्रश्न नं. 7 में। तीनों शाखाएं ऊपर-नीचे फैली हैं, का तात्पर्य है कि गीता का ज्ञान पृथ्वी लोक पर बोला जा रहा था। तीनों देवता की सत्ता तीन लोकों में है। 1. पृथ्वी लोक, 2. स्वर्ग लोक तथा 3. पाताल लोक। ये तीनों एक-एक विभाग के मन्त्री हैं। रजगुण विभाग के श्री ब्रह्मा जी, सतगुण विभाग के श्री विष्णु जी तथा तमगुण विभाग के श्री शिव जी।

गीता अध्याय 15 श्लोक 3 में कहा है कि हे अर्जुन! इस संसार रुपी वृक्ष का स्वरुप जैसे यहाँ (विचार काल में) अर्थात् तेरे और मेरे गीता के ज्ञान की चर्चा में नहीं पाया जाता अर्थात् मैं नहीं बता पाऊँगा क्योंकि इसके आदि और अन्त का मुझे अच्छी तरह ज्ञान नहीं है। इसलिए इस अतिदृढ़ मूल वाले अर्थात् जिस संसार रुपी वृक्ष की मूल है। (वह परमात्मा भी अविनाशी है तथा उनका स्थान सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक तथा अकह लोक, ये चार ऊपर के लोक भी अविनाशी हैं। इन चारों में एक ही परमात्मा भिन्न-भिन्न रुप बनाकर सिंहासन पर विराजमान हैं। इसलिए इसको ''सुदृढ़मूलम्'' अति दृढ़ मूल वाला कहा है।) इसे तत्वज्ञान रुपी शस्त्र से काटकर अर्थात् तत्वदर्शी सन्त से तत्वज्ञान समझकर। फिर गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि उसके पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद अर्थात् सत्यलोक की खोज करनी चाहिए, जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। जिस परमेश्वर से संसार रुपी वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व संसार की रचना की है। उसी परमेश्वर की भक्ति को पहले तत्वदर्शी सन्त से समझो! गीता ज्ञान दाता अपनी भक्ति को भी मना कर रहा है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन प्रभु बताये हैं। श्लोक 16 में दो पुरूष कहे हैं। क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष ये दोनों नाशवान हैं। श्लोक 17 में तीसरा परम अक्षर पुरुष है जो संसार रुपी वृक्ष का मूल (जड़)

है। वह वास्तव में अविनाशी है। जड़ (मूल) से ही वृक्ष के सर्व भागों ''तना, डार-शाखाओं तथा पत्तों'' को आहार प्राप्त होता है। वह परम अक्षर पुरुष ही तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। उसी (मूल) मालिक की पूजा करनी चाहिए। इस विवरण में तत्वदर्शी सन्त की पहचान तथा गीता ज्ञान दाता की अल्पज्ञता अर्थात् तत्वज्ञानहीनता स्पष्ट है।

''जिन्दा बाबा का दूसरी बार अन्तर्ध्यान होना''

(धर्मदास जी ने कहा) :- हे जिन्दा! आप यह क्या कह रहे हो कि श्री विष्णु जी तीनों लोको में केवल एक विभाग के मन्त्री हैं। आप गलत कह रहे हो। श्री विष्णुजी तो अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। ये ही श्री ब्रह्मा रुप में उत्पत्ति करते हैं। विष्णु रुप होकर संसार का पालन करते हैं तथा शिव रुप होकर संहार करते हैं। ये तो कुल के मालिक हैं, यदि फिर से आपने श्री विष्णु जी को अपमानित किया तो ठीक बात नहीं रहेगी।

परमेश्वर कबीर जी ने कहा :-

मूर्ख के समझावतें, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला होत न उजला, भावें सौ मन साबुन लाय।।

इतना कहकर परमेश्वर जिन्दा रुपधारी अंतर्ध्यान हो गए। दूसरी बार परमेश्वर को खोने के पश्चात् धर्मदास बहुत उदास हो गए। भगवान विष्णु में इतनी अटूट आस्था थी कि आँखों प्रमाण देखकर भी झूठ को त्यागने को तैयार नहीं थे।

कबीर, जान बूझ साची तजै, करे झूठ से नेह।
ताकि संगति हे प्रभु, स्वपन में भी ना देह।।

कुछ देर के पश्चात् धर्मदास की बुद्धि से काल का साया हटा और अपनी गलती पर विचार किया कि सब प्रमाण गीता से ही प्रत्यक्ष किए गए थे। जिन्दा बाबा ने अपनी ओर से तो कुछ नहीं कहा। मैं कितना अभागा हूँ कि मैंने अपने हठी व्यवहार से देव स्वरुप तत्वदर्शी सन्त को खो दिया। अब तो वे देव नहीं मिलेंगे। मेरा जीवन व्यर्थ जाएगा। यह विचार करके धर्मदास सिहर उठा अर्थात् भय से काँपने लगा। खाना भी कम खाने लगा, उदास रहने लगा तथा मन-मन में अर्जी लगाने लगा हे देव! हे जिन्दा बाबा! एक बार दर्शन दे दो। भविष्य में ऐसी गलती कभी नहीं करुँगा। मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ। मुझ मूर्ख की औछी-मन्दी बातों पर ध्यान न दो। मुझे फिर मिलो गुसांई। आप का ज्ञान सत्य, आप सत्य, आप जी का एक-एक वचन अमृत है। कृपया दर्शन दो नहीं तो अधिक दिन मेरा जीवन नहीं रहेगा।

तीसरे दिन परमेश्वर कबीर जी एक दरिया के किनारे वृक्ष के नीचे बैठे थे।

आसपास कुछ आवारा गायें भी उसी वृक्ष के नीचे बैठी जुगाली कर रही थीं। कुछ दरिया के किनारे घास चर रही थी। धर्मदास की दृष्टि दरिया के किनारे पिताम्बर पहने बैठे सन्त पर पड़ी, देखा आस-पास गायें चर रही है। ऐसा लगा जैसे साक्षात् भगवान कृष्ण अपने लोक से आकर बैठे हों। धर्मदास उत्सुकता से सन्त के पास गया तथा देखा यह तो कोई सामान्य सन्त है। फिर भी सोचा चरण स्पर्श करके फिर आगे बढ़ूँगा। धर्मदास जी ने जब चरणों का स्पर्श किया, मस्तक चरणों पर रखा तो ऐसा लगा कि जैसे रुई को छुआ हो। फिर चरणों को हाथों से दबा-दबाकर देखा तो उनमें कहीं भी हड्डी नहीं थी। उपर चेहरे की ओर देखा तो वही बाबा जिन्दा उसी पहले वाली वेशभूषा में बैठा था। धर्मदास जी ने चरणों को दृढ़ करके पकड़ लिया कि कहीं फिर से न चले जाऐं और अपनी गलती की क्षमा याचना की। कहा कि हे जिन्दा! आप तो तत्वदर्शी सन्त हो। मैं एक भ्रमित जिज्ञासु हूँ। जब तक मेरी शंकाओं का समाधान नहीं होगा, तब तक मेरा अज्ञान नाश कैसे होगा? आप तो महाकृपालु हैं। मुझ किंकर पर दया करो। मेरा अज्ञान हटाओ प्रभु।

प्रश्न 37 (धर्मदास जी का) :- हे जिन्दा! यदि श्री विष्णु जी पूर्ण परमात्मा नहीं है तो कौन है पूर्ण परमात्मा, कृप्या गीता से प्रमाण देना?

उत्तर :- कृप्या पढ़ें प्रश्न नं. 15 का उत्तर जो जिन्दा रुपधारी परमेश्वर ने धर्मदास को सुनाया।

प्रश्न 38 :- धर्मदास जी ने पूछा कि क्या श्री विष्णु जी और शंकर जी की पूजा करनी चाहिए?

उत्तर :- (जिन्दा बाबा का) :- नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न 39 (धर्मदास जी का) :- कृपया गीता से प्रमाणित कीजिए।

उत्तर :- कृपया पढ़ें प्रश्न नं. 17 का उत्तर। धर्मदास को प्रभु ने सुनाया, गीता शास्त्र से प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर धर्मदास की आँखें खुली की खुली रह गई। जैसे किसी को सदमा लग गया हो। झूठ कह नहीं सकता, स्वीकार करने से लिए अभी वक्त लगेगा।

जिन्दा रुपधारी परमेश्वर ने धर्मदास को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे वैष्णव महात्मा! कौन-सी दुनिया में चले गये, लौट आओ। मानो धर्मदास नींद से जागा हो। सावधान होकर कहा, कुछ नहीं-कुछ नहीं। कृप्या और ज्ञान सुनाओ ताकि मेरा भ्रम दूर हो सके। परमेश्वर कबीर जी ने सृष्टि की रचना धर्मदास जी को सुनाई, कृपया पढ़ें इसी पुस्तक के पृष्ठ 120 पर।

सृष्टि रचना सुनकर धर्मदास जी को ऐसा लगा मानो पागल हो जाऊँगा क्योंकि जो ज्ञान आजतक हिन्दू धर्मगुरुओं, ऋषियों, महर्षियों-सन्तों से सुना था, वह निराधार तथा अप्रमाणित लग रहा था। जिन्दा बाबा हिन्दू सद्ग्रन्थों से ही

प्रमाणित कर रहे थे। शंका का कोई स्थान नहीं था। मन-मन में सोच रहा था कि कहीं मैं पागल तो नहीं हो जाऊँगा?

प्रश्न 40 :- (धर्मदास जी का) : हे जिन्दा! क्या हिन्दू धर्म के गुरुओं तथा ऋषियों को शास्त्रों का ज्ञान नहीं है?

उत्तर :- (जिन्दा महात्मा का) :- क्या यह बताने की भी आवश्यकता शेष है?

''धर्मदास जी की अन्य संतों से ज्ञान चर्चा''

प्रश्न 41 :- (धर्मदास जी का) धर्मदास जी ने मन में विचार किया कि यह कैसे हो सकता है कि हिन्दू धर्म के किसी सन्त, गुरु, महर्षि को सत्य अध्यात्म ज्ञान नहीं? यह कहकर धर्मदास जी के मन में आया कि किसी महामण्डलेश्वर से ज्ञान सुनना चाहिए। एक रमते फकीर के पास क्या मिलेगा? यह बात मन में सोच ही रहा था कि परमेश्वर जिन्दा जी ने धर्मदास जी के मन का दोष जानकर कहा कि आप अपने महामण्डलेश्वरों से ज्ञान प्राप्त करलो। यह कहकर परमेश्वर तीसरी बार अन्तर्ध्यान हो गए। धर्मदास जी ठगे से रह गए और अपने मन के दोष को जिन्दा महात्मा के मुखकमल से सुनकर बहुत शर्मसार हुए। जब प्रभु अन्तर्ध्यान हो गए तो बहुत व्याकुल हो गया। परन्तु धर्मदास जी को आशा थी कि हमारे महामण्डलेश्वरों के पास तत्वज्ञान अवश्य मिलेगा। यदि जिन्दा बाबा (मुसलमान) के ज्ञान को तत्वज्ञान मानकर साधना स्वीकार करना तो ऐसा लग रहा है जैसे धर्म परिवर्तन करना हो। यह समाज में निन्दा का कारण बनेगा। इसलिए अपने हिन्दू महात्माओं से तत्वज्ञान जानकर श्रेष्ठ शास्त्रानुकूल भक्ति करनी ही उचित रहेगी। इस बार धर्मदास जी को जिन्दा बाबा का अचानक चला जाना खटका नहीं क्योंकि उसकी गलतफहमी थी कि हिन्दू इतना बड़ा तथा पुरातन धर्म है, क्या कोई भी तत्वदर्शी सन्त नहीं मिलेगा? धर्मदास जी एक वैष्णव महामण्डलेश्वर श्री ज्ञानानंद जी वैष्णव के आश्रम में गया। उस समय श्री ज्ञानानन्द जी का बहुत बोलबाला था। वह स्वामी रामानन्द जी काशी वाले का शिष्य था। परन्तु उस समय स्वामी रामानन्द जी तो परमेश्वर कबीर जी का शिष्य/गुरु बन चुका था। वह अपने ज्ञान को अज्ञान मान चुका था। स्वामी रामानन्द जी ने अपने सर्वऋषि शिष्यों से बोल दिया था कि मेरे द्वारा बताया ज्ञान व्यर्थ है और यह साधना शास्त्रविरुद्ध है। आप सब परमेश्वर कबीर जी से दीक्षा ले लें। परन्तु जाति का अभिमान, शिष्यों में प्रतिष्ठा, ज्ञान के स्थान पर अज्ञान का भण्डार जीव को सत्य स्वीकार करने नहीं देता।

कबीर, राज तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह।।

धर्मदास जी ने श्री ज्ञानानंद जी से प्रश्न किया है कि स्वामी जी क्या भगवान

विष्णु से भी ऊपर कोई प्रभु है। श्री ज्ञानानन्द जी ने उत्तर दिया कि श्री विष्णु स्वयं परम ब्रह्म परमात्मा है। इनसे ऊपर कौन हो सकता है? श्री कृष्ण जी भी श्री विष्णु जी स्वयं ही थे। उन्होंने ही श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान दिया। आप को किसने भ्रमित कर दिया? धर्मदास जी ने पूछा कि गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में अर्जुन ने पूछा कि तत् ब्रह्म क्या है? गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में भगवान ने कहा है कि वह ''परम अक्षर ब्रह्म'' है। यह तो भगवान कृष्ण से अन्य प्रभु हुआ। ज्ञानानन्द स्वामी बोला, लगता है कि तेरे को उस काशी वाले जुलाहे का जादू चढ़ा हुआ है। चल-चल अपना काम कर। भगवान कृष्ण से अन्य कोई प्रभु नहीं है। धर्मदास जी को पता चल गया कि इसके पास वह ज्ञान नहीं है जो जिन्दा बाबा ने प्रमाणों सहित बताया है। धर्मदास निराश होकर वहाँ से चल दिया। धर्मदास जी को यह नहीं पता था कि काशी वाला जुलाहा वह बाबा जिन्दा ही है। फिर धर्मदास को पता चला कि एक मोहनगिरी नाम के महामण्डलेश्वर हैं, उनके पास जाकर भगवान की चर्चा करनी शुरु की। पहले एक रुपया दक्षिणा चढ़ाई जिस कारण से मोहनगिरी ने उनको निकट बैठाया और बताया कि भगवान शिव सर्व सृष्टि के रचने वाले हैं। इनसे बढ़कर संसार में कोई प्रभु नहीं है। ''ओम् नमः शिवाय'' मन्त्र का जाप करो। धर्मदास जी प्रणाम करके चल पड़े। सोचा इनका कितना अच्छा नाम है, ज्ञान धेल्ले (एक पैसे) का नहीं। धर्मदास जी से किसी ने बताया कि एक बहुत बड़ा तपस्वी है। कई वर्षों से खड़ा तप कर रहा है। धर्मदास जी वहाँ गए, वह नाथ पंथ से जुड़ा था। भगवान शिव को समर्थ परमात्मा बताता था। तप करके हठयोग से परमात्मा की प्राप्ति मान रहा था। धर्मदास जी ने विवेक किया कि यदि इतनी घोर कठिन तपस्या से परमात्मा मिलेगा तो हमारे वश से बाहर की बात है। वहाँ से भी आगे चला। पता चला कि एक बहुत बड़ा विद्वान महात्मा काशी विद्यापीठ से पढ़कर आया है। वेदों का पूर्ण विद्वान है। धर्मदास जी ने उस महात्मा से पूछा परमात्मा कैसा है? उत्तर मिला-निराकार है। उस निराकार परमात्मा का कोई नाम है? धर्मदास ने पूछा। उत्तर विद्वान का :- उसका नाम ब्रह्म है। क्या परमात्मा को देखा जा सकता है, धर्मदास जी ने प्रश्न किया? उत्तर मिला परमात्मा निराकार है, उसको कैसे देख सकते हैं। केवल परमात्मा का प्रकाश देखा जा सकता है। प्रश्नः- क्या श्री कृष्ण या विष्णु परमात्मा हैं? उत्तर था कि ये तो सर्गुण देवता हैं, परमात्मा निर्गुण है।

गीता और वेद के ज्ञान में क्या अन्तर है? धर्मदास ने प्रश्न किया। ब्राह्मण का उत्तर था कि गीता चारों वेदों का सारांश है। धर्मदास जी ने पूछा कि भक्ति मन्त्र कौन सा है? उत्तर ब्राह्मण का था कि गायत्री मन्त्र का जाप करो = ओम् भूर्भवस्वः तत् सवितुः वरेणियम भर्गोदेवस्य धीमहि, धीयो यो नः प्रचोदयात्'' धर्मदास जी को जिन्दा बाबा ने बताया था कि इस मन्त्र से मोक्ष सम्भव नहीं। धर्मदास जी फिर

आगे चला तो पता चला कि सन्त गुफा में रहता है। कई-कई दिन तक गुफा से नहीं निकलता है। उसके पास जाकर प्रश्न किया कि भगवान कैसे मिलता है? उत्तर मिला कि इन्द्रियों पर संयम रखो, इसी से परमात्मा मिल जाता है। नाम जाप से कुछ नहीं होता। खाण्ड (चीनी) कहने से मुँह मीठा नहीं होता। धर्मदास जी को सन्तोष नहीं हुआ। सब सन्तों से ज्ञान चर्चा करके धर्मदास जी को बहुत पश्चाताप् हुआ कि मेरे को उस जिन्दा बाबा पर विश्वास नहीं हुआ कि उसने कहा था किसी भी सन्त महामण्डलेश्वर के पास यथार्थ अध्यात्म ज्ञान नहीं है। किसी भी सन्त महात्मा का ज्ञान प्रमाणित नहीं है। कोई शास्त्र का आधार नहीं है, तब धर्मदास रोने लगा। अपनी अज्ञानता पर पश्चाताप करने लगा कि मैं कैसा कलमुँहा हूँ अर्थात् बुरी किस्मत वाला हूँ। मुझे उस परमात्मास्वरुप जिन्दा महात्मा पर विश्वास नहीं आया। अब वह अन्तर्यामी मुझे नहीं मिलेगा क्योंकि मैंने कई बार उनका अपमान कर दिया। अब क्या करुँ, न जीने को मन करता है, आत्महत्या पाप है। बुरी तरह रोने लगा। पछाड़ खाकर अचेत हो गया।

उत्तर :- परमात्मा जिन्दा महात्मा के रुप में एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। धर्मदास जी सचेत हुआ और हृदय से पुकार की कि हे जिन्दा! एक बार दर्शन दे दो। मैं टूट चुका हूँ। किसी के पास ज्ञान नहीं है। आप की सर्व बातें सत्य हैं। परमात्मा एक बार मुझ अज्ञानी महामूर्ख को क्षमा करो परमेश्वर। आप जिन्दा नहीं परमात्मा हो। आप महाविद्वान हो। आपके ज्ञान का कोई सामना करने वाला नहीं है। मैं जिन्दगी में कभी आप पर अविश्वास नहीं करुँगा। ऐसे विचार कर आगे चला तो देखा एक वृक्ष के नीचे एक साधु बैठा है, कुछ व्यक्ति उसके पास बैठे हैं। धर्मदास जी ने सोचा कि मैं तो उन महामण्डलेश्वरों से मिलकर आया हूँ। जिनके पास कई सैंकड़ों भक्त दर्शनार्थ बैठे रहते हैं। इस छोटे साधु से क्या मिलना? परन्तु अपने आप मन में आया कि कुछ देर विश्राम करना है, यहीं कर लेता हूँ। फिर सोचा कि प्रश्न करता हूँ। पूछाः- हे महात्मा! जी परमात्मा कैसा है? साधु ने उत्तर दिया कि मैं ही परमात्मा हूँ। धर्मदास जी चुप हो गए, सोचा यह तो मजाक कर रहा है। यह तो सन्त भी नहीं है। धीरे-धीरे सर्व व्यक्ति चले गए। जब धर्मदास जी चलने लगे परमात्मा बोले कि हे महात्मा! क्या आपके मण्डलेश्वरों ने नहीं बताया कि परमात्मा कैसा है? धर्मदास जी ने आश्चर्य से देखा कि इस साधु को कैसे पता कि मैं कहाँ-कहाँ भटका हूँ? उसी समय परमात्मा ने वही जिन्दा बाबा वाला रुप बना लिया। धर्मदास जी चरणों में गिरकर बिलख-बिलखकर रोने लगा तथा कहा कि हे भगवन! किसी के पास ज्ञान नहीं है। मुझ पापी अवगुण हारे को क्षमा करो महाराज! मैंने बड़ी भारी भूल की है। आपने सृष्टि रचना का ज्ञान जो बताया है, उसके सामने सर्व सन्त का ज्ञान ऐसा है जैसे सूरज के सामने दीपक, सब ऊवा-बाई बकते हैं। परमेश्वर ने धर्मदास जी से कहा कि

आपने जिन वेदों के पूर्ण विद्वान से प्रश्न किया था कि ''परमात्मा कैसा है? उत्तर मिला कि परमात्मा निराकार है। आपने प्रश्न किया था कि क्या परमात्मा देखा जा सकता है? उस अज्ञानी का उत्तर था कि ''जब परमात्मा निराकार है तो उसे देखने का प्रश्न ही नहीं है। परमात्मा का प्रकाश देखा जा सकता है।''

❖ विचार करो धर्मदास! यह विचार तो ऐसे व्यक्ति के हैं जैसे किसी नेत्रहीन से कोई प्रश्न करे कि सूर्य कैसा है? उत्तर मिला कि सूर्य निराकार है। फिर प्रश्न किया कि क्या सूर्य को देखा जा सकता है? उत्तर मिले कि सूर्य को नहीं देखा जा सकता, सूर्य का प्रकाश देखा जाता है। उस नेत्रहीन से पूछें कि सूर्य बिना प्रकाश किसका देखा जा सकता है? इसी प्रकार अध्यात्म ज्ञान नेत्रहीन अर्थात् पूर्ण अज्ञानी सन्त ऐसी व्याख्या किया करते हैं कि परमात्मा तो निराकार है, उसका प्रकाश कैसे देखा जा सकता है? परमात्मा का ही तो प्रकाश होगा। धर्मदास जी ने कहा कि हे महात्मा जी! यह विचार तो मेरे दिमाग में भी नहीं आया। आप जी के दिव्य तर्क से मेरी आँखें खुल गई। जितने भी महामण्डलेश्वर मिले हैं, वे सर्व महाअज्ञानी मिले हैं। हे जिन्दा महात्मा जी! यदि मैं आपके ज्ञान को सुनने के पश्चात् यदि इन मूर्खों से नहीं मिलता तो मेरा भ्रम निवारण कभी नहीं होता, चाहे आप जी कितने ही प्रमाण दिखाते और बताते।

प्रश्न 42 (धर्मदास) :- हे जिन्दा! आप नाराज न होना। मेरे मन में एक शंका है कि क्या भगवान विष्णु जी की भक्ति अच्छी नहीं?

उत्तर (जिन्दा महात्मा जी का) :- हे धर्मदास! श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 2 श्लोक 46 में प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा हे अर्जुन! बहुत बड़े जलाश्य (झील) की प्राप्ति के पश्चात् छोटे जलाश्य में व्यक्ति का कितना प्रयोजन रह जाता है। इसी प्रकार पूर्ण ज्ञान और पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि व होने वाले लाभ का ज्ञान होने के पश्चात् अन्य ज्ञानों तथा छोटे भगवानों में उतनी ही आस्था रह जाती है जितनी बड़े जलाश्य की प्राप्ति के पश्चात् छोटे जलाश्य में रह जाती है। छोटे जलाश्य का जल अच्छा है, परन्तु पर्याप्त नहीं है। यदि एक वर्ष वर्षा न हो तो छोटे जलाश्य का जल सूख जाता है तथा उस पर आश्रित व्यक्ति भी जल के अभाव से कष्ट उठाते हैं, त्राहि-त्राहि मच जाती है। परन्तु बड़े जलाश्य (झील) का जल यदि 10 वर्ष भी वर्षा न हो तो भी समाप्त नहीं होता। जिस व्यक्ति को वह बड़ा जलाश्य मिल जाएगा तो वह तुरन्त छोटे जलाश्य (जोहड़ = तालाब) को छोड़कर बड़े जलाश्य के किनारे जा बसेगा। जिस समय गीता ज्ञान सुनाया गया, उस समय सर्व व्यक्ति तालाबों के जल पर ही आश्रित थे। इसलिए यह उदाहरण दिया था, इसी प्रकार श्री विष्णु सतगुण की भक्ति भले ही आप अच्छी मानते हैं, परन्तु पूर्ण मोक्षदायक नहीं है। श्री विष्णु जी भी नाशवान हैं। इनका भी जन्म-मृत्यु होता है। फिर साधक अमर कैसे हो सकता है? इसलिए पूर्ण मोक्ष अर्थात् अमर

होने के लिए अमर परमात्मा की ही भक्ति करनी पड़ेगी।

प्रश्न 43 :- हे जिन्दा महात्मा जी! मैंने आप के ऊपर अविश्वास किया। मैं महापापी हूँ, मुझे क्षमा करना।

उत्तर (जिन्दा बाबा जी का) :- हे धर्मदास! मैंने ही आप के मन में यह प्रेरणा की थी। यदि आप उन अपने धर्मगुरुओं की तलाशी न लेते तो आप कभी मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते। रह-रहकर तेरे मन को यही बात कचोटती रहती कि ऐसा नहीं हो सकता कि हिन्दू धर्म के किसी महर्षि मण्डलेश्वर व सन्त-महन्त को तत्वज्ञान नहीं। अब आप मेरी बातों पर विश्वास करोगे। विचार करो धर्मदास! जब गीता ज्ञान दाता गीता अध्याय 4 श्लोक 32 व 34 में कहता है कि जो ज्ञान परम अक्षर ब्रह्म (परमेश्वर) अपने मुख से सुनाता है, वह तत्वज्ञान है। (गीता अध्याय 4 श्लोक 32) उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी सन्तों के पास जाकर समझ। (गीता अध्याय 4 श्लोक 34) इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान देने वाले परमात्मा को ही तत्वज्ञान नहीं तो गीता पाठकों व इन प्रभु के उपासकों को ज्ञान कैसे हो सकता है?

गीता अध्याय 2 श्लोक 53 में कहा कि हे अर्जुन! भिन्न-भिन्न प्रकार से भ्रमित करने वाले वचनों से हटकर तेरी बुद्धि एक तत्वज्ञान पर स्थिर हो जाएगी, तब तो तू योग (भक्ति) को प्राप्त होगा। भावार्थ है कि तब तू भक्त बनेगा। इसलिए मैंने धर्मदास तेरे को उन सन्तों-मण्डलेश्वरों के पास जाने के लिए प्रेरित किया था। अब तू योग को प्राप्त होगा। भक्त बन सकेगा।

प्रश्न 44 (धर्मदास जी का) :- क्या पूर्ण मोक्ष के लिए भगवान विष्णु जी तथा भगवान शंकर जी की पूजा को छोड़ना पड़ेगा?

उत्तर (जिन्दा बाबा जी का) :- इन प्रभुओं को नहीं छोड़ना, इनकी पूजा छोड़नी होगी।

प्रश्न 45 (धर्मदास जी का) :- हे जिन्दा! मैं समझा नहीं। इन विष्णु और शंकर प्रभुओं को नहीं छोड़ना और पूजा छोड़नी पड़ेगी। मेरी संकीर्ण बुद्धि है। मैं महाअज्ञानी प्राणी हूँ। कृप्या विस्तार से बताने की कृपा करें।

उत्तर :- (जिन्दा महात्मा जी का) : हे धर्मदास जी! आप इनकी साधना शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण कर रहे हो। जिससे आपजी को लाभ नहीं मिल रहा। इन देवताओं से लाभ लेने के साधना के मन्त्र मेरे पास हैं। जैसे भैंसा है, उसको भैंसा-भैंसा करते रहो, वह आपकी ओर नहीं देखेगा। उसका एक विशेष मन्त्र हुर्र-हुर्र है। उसको सुनते ही वह तुरंत प्रभावित होता है और आवाज लगाने वाले की ओर खींचा चला आता है। इसी प्रकार इन सर्व आदरणीय देवताओं के निज मन्त्र हैं। जिनसे वे पूर्ण लाभ तथा तुरंत लाभ देते हैं। प्रिय पाठको! वही मन्त्र मेरे पास (संत रामपाल दास) के पास हैं जो परमेश्वर जी ने

गुरू जी के माध्यम से मुझे दिए हैं, आओ और प्राप्त करो।

जैसा कि आपको बताया था (प्रश्न नं. 36 के उत्तर में वर्णन किया था) कि यह संसार एक वृक्ष जानो। परम अक्षर पुरुष इसकी जड़ें मानो, अक्षर पुरुष तना जानो, क्षर पुरुष मोटी डार तथा तीनों देवता (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिवजी) इस संसार रुपी वृक्ष की शाखाऐं जानों और पात रुप संसार।

यदि आप कहीं से आम का पौधा लेकर आए हो तो गढ्ढ़ा खोदकर उसकी जड़ों को उस गढ्ढ़े में मिट्टी में दबाओगे और जड़ों की सिंचाई करोगे। तब वह आम का पेड़ बनेगा और उस वृक्ष की शाखाओं को फल लगेंगे। इसलिए वृक्ष की शाखाओं को तोड़ा नहीं जा सकता। परन्तु इनको जड़ के स्थान पर गढ्ढ़े में मिट्टी में दबाकर इनकी सिंचाई नहीं की जाती। ठीक इसी प्रकार संसार रुपी वृक्ष की जड़ अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को इष्ट रुप में प्रतिष्ठित करके पूजा करने से शास्त्रानुकूल साधना होती है जो परम लाभ देने वाली होती है। इस प्रकार किए गए भक्ति कर्मों का फल यही तीनों देवता (संसार वृक्ष की शाखाऐं) ही कर्मानुसार प्रदान करते हैं। इसलिए इनकी पूजा छोड़नी होती है। लेकिन इनको छोड़ा (तोड़ा) नहीं जा सकता। यही प्रमाण श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 3 श्लोक 8 से 15 तक में भी है। कहा है कि :-

❖ हे अर्जुन! तू शास्त्रविहित कर्म कर अर्थात् शास्त्रों में जैसे भक्ति करने को कहा है, वैसा भक्ति कार्य कर। यदि घर त्यागकर जंगलों में चला गया अर्थात् तू कर्म सन्यासी हो गया या एक स्थान पर बैठकर हठपूर्वक साधना करने लगेगा तो तेरा शरीर पोषण का निर्वाह भी नहीं होगा। इसलिए कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करते-करते भक्ति कर्म करना श्रेष्ठ है। (गीता अध्याय 3 श्लोक 8)

❖ जो साधक शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण करते हैं अर्थात् शास्त्रानुकूल भक्ति कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ मनुष्य समुदाय कर्मों के बन्धन में बंधकर जन्म-मरण के चक्र में सदा रहता है। इसलिए हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! शास्त्रविरुद्ध भक्ति कर्म जो कर रहा है, उससे आसक्ति रहित होकर शास्त्रानुकूल भक्ति कर्म कर। (गीता अध्याय 3 श्लोक 9)

❖ संसार की रचना करके प्रजापति (कुल के मालिक) ने सर्व प्रथम मनुष्यों की रचना करके साथ-साथ यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों की जानकारी का ज्ञान देते हुए इनसे कहा था कि तुम लोग इस तरह बताए शास्त्रानुकूल कर्मों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ। इस प्रकार शास्त्रानुकूल की गई भक्ति तुम लोगों को इच्छित भोग प्राप्त कराने वाली हो। (गीता अध्याय 3 श्लोक 10)

❖ इस प्रकार शास्त्रानुकूल भक्ति द्वारा अर्थात् संसार रुपी वृक्ष की जड़ों (मूल अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म) की सिंचाई अर्थात् पूजा करके देवताओं अर्थात्

संसार रुपी वक्ष की तीनों गुण रुपी शाखाओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिवजी) को उन्नत करो। वे देवता (संसार वक्ष की शाखा तीनों देवता) आपको कर्मानुसार फल देकर उन्नत करें। इस प्रकार एक-दूसरे से उन्नत करके परम कल्याण अर्थात् पूर्णमोक्ष को प्राप्त हो जाओगे (गीता अध्याय 3 श्लोक 11)

❖ शास्त्रविधि अनुसार किए गए भक्ति कर्मों अर्थात् यज्ञों द्वारा बढ़ाए हुए देवता अर्थात् संसार रुपी वक्ष की जड़ अर्थात् मूल मालिक (परम अक्षर ब्रह्म) को इष्ट रुप में प्रतिष्ठित करके भक्ति कर्म से बढ़ी हुई शाखाएं (तीनों देवता) तुम लोगों को बिना माँगे ही कर्मानुसार इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। जैसे आम के पौधे की जड़ की सिंचाई करने से पेड़ बनकर शाखाएं उन्नत हो गई। फिर उन शाखाओं को अपने आप फल लगेंगे। झड़-झड़कर गिरेंगे, व्यक्ति को जो कर्मानुसार धन प्राप्त होता है, वह उपरोक्त विधि से होता है। यदि कोई व्यक्ति उन देवताओं (शाखाओं) द्वारा दिए धन में से पुनः दान-पुण्य नहीं करता अर्थात् जो पुनः शास्त्रानुकूल साधना नहीं करता, केवल अपना ही पेट भरता है, स्वयं ही भोगता रहता है। वह तो परमात्मा का चोर ही है। (गीता अध्याय 3 श्लोक 12)

❖ शास्त्रानुकूल भक्ति की विधि में सर्वप्रथम परमात्मा को भोग लगाया जाता है। भण्डारा करना होता है। पहले परम अक्षर ब्रह्म को इष्ट रुप में पूजकर भोग लगाकर शेष भोजन को भक्तों में बाँटा जाता है। उस बचे हुए अन्न को सत्संग में उपस्थित अच्छी आत्माएं ही खाती हैं क्योंकि पुण्यात्माएं ही परमात्मा के लिए समय निकालकर धार्मिक अनुष्ठानों में शामिल होते हैं। इसलिए कहा है कि उस यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले सन्तजन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो पापी लोग होते हैं, जो तत्वदर्शी सन्त के सत्संग में नहीं जाते, उनको ज्ञान नहीं होता। वे पापात्मा अपना शरीर पोषण करने के लिए ही भोजन पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं क्योंकि भोजन खाने से पहले हम भक्त-सन्त सब परम अक्षर ब्रह्म को भोग लगाते हैं। जिस से सारा भोजन पवित्र प्रसाद बन जाता है, जो ऐसा नहीं करते, वे परमात्मा के चोर हैं। भगवान को भोग न लगा हुआ भोजन पाप का भोजन होता है। इसलिए कहा है जो धर्म-कर्म शास्त्रानुकूल नहीं करते, वे पाप के भागी होते हैं। (गीता अध्याय 3 श्लोक 13)

❖ सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से होता है। वर्षा यज्ञ अर्थात् शास्त्रानुकूल धार्मिक अनुष्ठान से होती है। यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान शास्त्रानुकूल कर्मों से होते हैं। (गीता अध्याय 3 श्लोक 14)

❖ कर्म तो ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष से उत्पन्न हुए हैं क्योंकि जहाँ सर्व प्राणी सनातन परम धाम में रहते थे। वहाँ पर बिना कर्म किए सर्व सुख व पदार्थ उपलब्ध थे। यहाँ के सर्व प्राणी अपनी गलती से क्षर पुरुष के साथ आ गए। अब सबको कर्म का फल ही प्राप्त होता है। कर्म करके ही निर्वाह होता है। इसलिए

कहा है कि कर्म को ब्रह्म (क्षर पुरुष) से उत्पन्न जान और ब्रह्म को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न जान। (अधिक जानकारी के लिए पढ़ें सृष्टि रचना इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 120 पर।)

(नोट : इस श्लोक में ''अक्षर'' शब्द का अर्थ अविनाशी परमात्मा ठीक है। परन्तु जहाँ क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष तथा परम अक्षर पुरुष का वर्णन है, वहाँ अक्षर पुरुष व क्षर पुरुष दोनों नाशवान कहे हैं। वहाँ पर अक्षर का अर्थ वही ठीक है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में वर्णन है, यहाँ 'अक्षर' का अर्थ अविनाशी परमात्मा है क्योंकि सृष्टि रचना से स्पष्ट होता है कि ब्रह्म की उत्पत्ति सत्यपुरुष (अविनाशी परमात्मा) ने की थी।) इससे सिद्ध हुआ कि (सर्वगतम् ब्रह्म) अर्थात् जिस परमात्मा की पहुँच सर्व ब्रह्माण्डों में है, जो सर्व का मालिक है, वह परमात्मा सदा ही यज्ञों अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों में प्रतिष्ठित है। भावार्थ है कि परम अक्षर ब्रह्म को इष्टदेव रुप में प्रतिष्ठित करके धार्मिक अनुष्ठान अर्थात् यज्ञ करने से शास्त्रविधि अनुसार कर्म करने से साधक को भक्ति लाभ मिलता है, जिससे मोक्ष प्राप्त होता है। देखें संसार रुपी पौधे का चित्र इसी पुस्तक के पृष्ठ 79 पर।

देखें यह चित्र पृष्ठ 78 पर, इसमें पौधे की शाखाओं को गढ्ढ़े में जमीन में लगाकर दिखाया गया है कि जो तीनों देवों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) में से किसी की भी पूजा करता है, वह शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण कर रहा है जो गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में अनुचित तथा व्यर्थ बताया है। जिसने सर्वगतम् ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म की पूजा नहीं की, उसको इष्ट रुप में नहीं पूजा, जिस कारण से उस साधक की साधना व्यर्थ है। शाखाओं को सींचने से पौधा नष्ट हो जाता है। अन्य देवताओं की पूजा करना गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, 20-23 तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 23-24 में मना किया हुआ है। (पढ़ें प्रश्न 17 का उत्तर)

''देखें यह चित्र'' इसी पुस्तक के पृष्ठ 79 पर सीधा लगाया गया पौधा जो शास्त्रविधि अनुसार साधना है, यही मोक्षदायक है। यही प्रमाण गीता ग्रन्थ में है।

इसलिए हे धर्मदास! श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिवजी को नहीं छोड़ना है। इनकी पूजा इष्ट रुप में करते हो, वह छोड़नी है। तभी भक्त का पूर्ण मोक्ष सम्भव है।

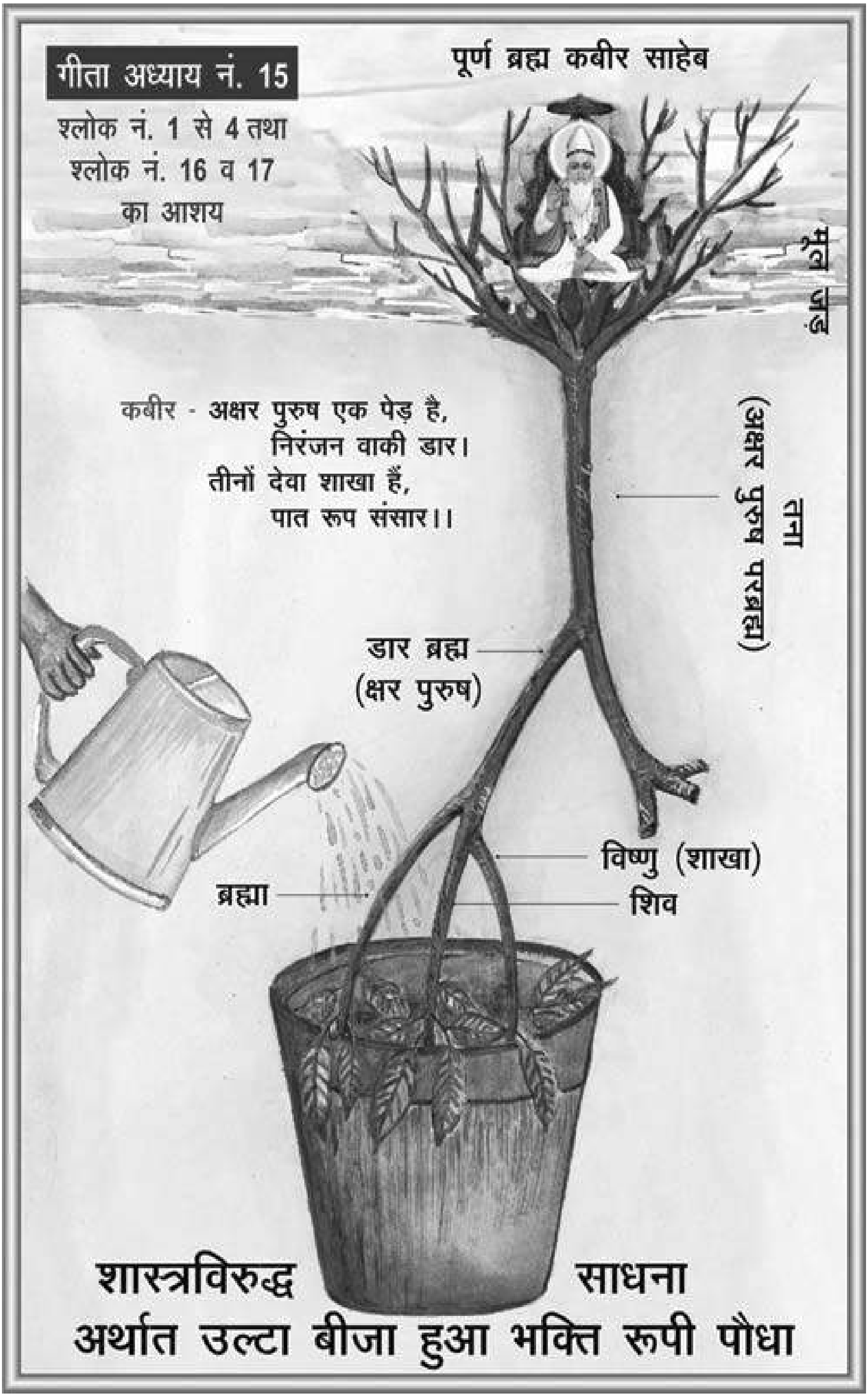
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब
मूल जड़
कबीर - अक्षर पुरुष एक पेड़ है,
निरंजन वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं,
पात रूप संसार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
विष्णु (शाखा)
ब्रह्मा
शिव
शास्त्रविरुद्ध साधना
अर्थात उल्टा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

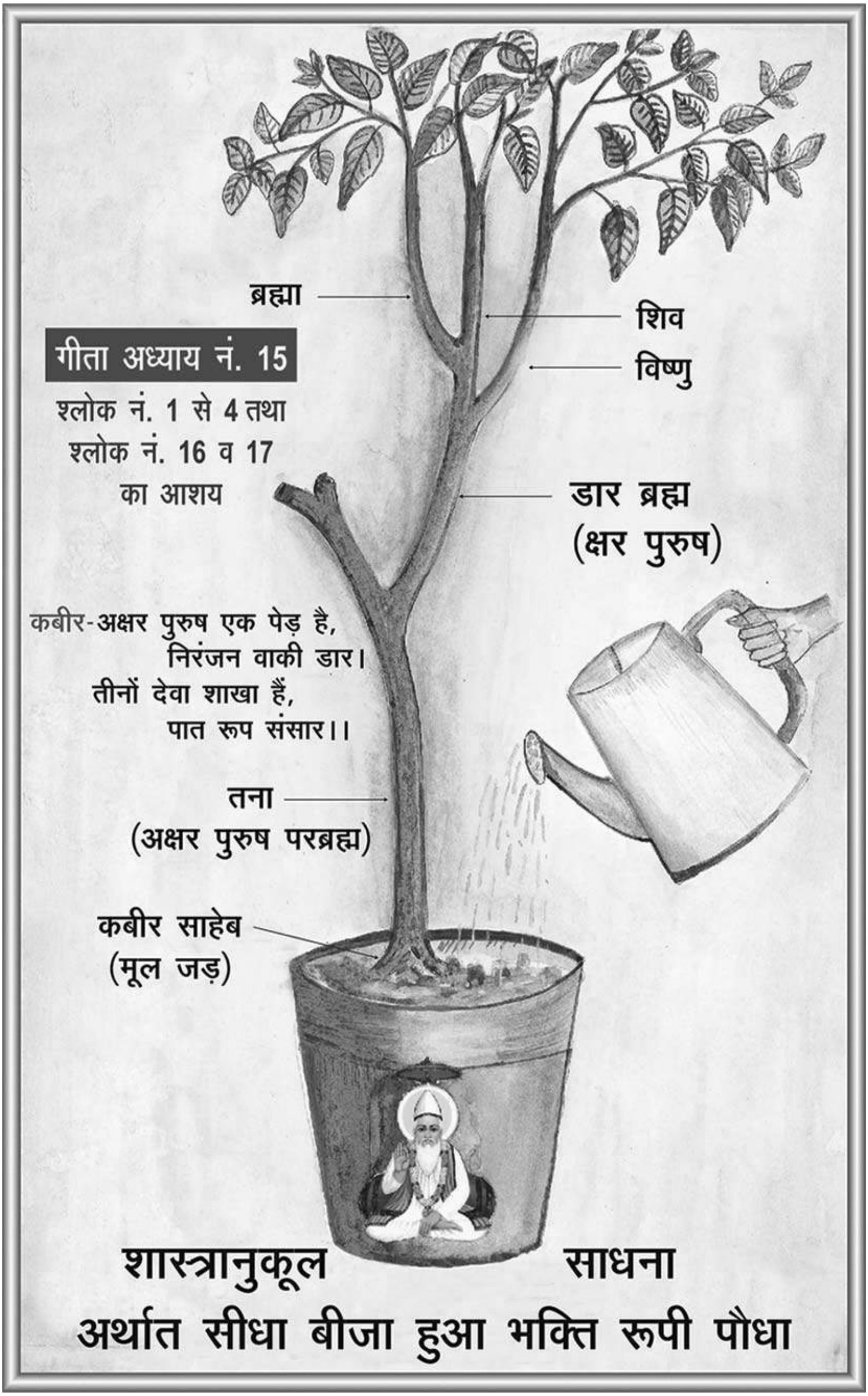
ब्रह्मा
शिव
विष्णु
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
कबीर-अक्षर पुरुष एक पेड़ है,
निरंजन वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं,
पात रूप संसार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
कबीर साहेब
(मूल जड़)
शास्त्रानुकूल साधना
अर्थात सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

प्रश्न 46 :- (धर्मदास जी का): हे जिन्दा! आप जी ने तीनों देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिवजी) की भक्ति करने वालों की दशा तो श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, 20 से 23 तथा अध्याय 9 श्लोक 23-24 में प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया कि तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) की भक्ति करने वाले राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मुझ (गीता ज्ञान दाता ब्रह्म) को भी नहीं भजते। अन्य देवताओं की भक्ति पूजा करने वालों का सुख समय (स्वर्ग समय) क्षणिक होता है। स्वर्ग की प्राप्ति करके शीघ्र ही पृथ्वी पर जन्म धारण करते हैं। हे महात्मा जी! कृपया कोई संसार में हुए बर्ताव से ऐसा प्रकरण सुनाइए जिससे आप जी की बताई बातों की सत्यता का प्रमाण मिले। तीनों देवताओं के पुजारी ऐसा बर्ताव करते हैं।

''हरण्यकशिपु की कथा''

उत्तर :- (जिन्दा जगदीश का) :-

1. रजगुण ब्रह्मा के उपासकों का चरित्र : एक हरण्यकशिपु ब्राह्मण राजा था। किसी कारण उसको भगवान विष्णु (सतगुण) से ईर्ष्या हो गई। उस राजा ने रजगुण ब्रह्मा जी देवता को भक्ति करके प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने कहा कि पुजारी! माँगो क्या माँगना चाहते हो? हरण्यकशिपु ने माँगा कि सुबह मरूँ न शाम मरुँ, बाहर मरूँ न भीतर मरूँ, दिन मरूँ न रात मरुँ, बारह मास में न मरुँ, न आकाश में मरुँ, न धरती पर मरुँ, न मानव से, न पशु-पक्षी से मरूँ। ब्रह्माजी ने कहा तथास्तु। इसके पश्चात् हरण्यकशिपु ने अपने आपको अमर मान लिया और अपना नाम जाप करने को कहने लगा। जो विष्णु का नाम जपता, उसको मार देता। उसका पुत्र प्रहलाद विष्णु जी की भक्ति करता था। उसको कितना सताया था। हे धर्मदास! कथा से तो आप परिचित हैं। भावार्थ है कि रजगुण ब्रह्मा का भक्त हरण्यकशिपु राक्षस कहलाया, कुत्ते वाली मौत मारा गया।

''रावण तथा भस्मासुर की कथा''

2. तमगुण शिवजी के उपासकों का चरित्र : लंका के राजा रावण ने तमगुण शिव की भक्ति की थी। उसने अपनी शक्ति से 33 करोड़ देवताओं को कैद कर रखा था। फिर देवी सीता का अपहरण कर लिया। इसका क्या हश्र हुआ, आप सब जानते हैं। तमगुण शिव का उपासक रावण राक्षस कहलाया, सर्वनाश हुआ। निंदा का पात्र बना।

❖ अन्य उदाहरण :- आप जी को भष्मासुर की कथा का तो ज्ञान है ही। भगवान शिव (तमोगुण) की भक्ति भष्मागिरी करता था। वह बारह वर्षों तक शिव जी के द्वार के सामने ऊपर को पैर नीचे को सिर (शीर्षासन) करके भक्ति तपस्या

करता रहा। एक दिन पार्वती जी ने कहा हे महादेव! आप तो समर्थ हैं। आपका भक्त क्या माँगता है? इसे प्रदान करो प्रभु। भगवान शिव ने भष्मागिरी से पूछा बोलो भक्त क्या माँगना चाहते हो। मैं तुझ पर अति प्रसन्न हूँ। भष्मागिरी ने कहा कि पहले वचनबद्ध हो जाओ, तब माँगूंगा। भगवान शिव वचनबद्ध हो गए। तब भष्मागिरी ने कहा कि आपके पास जो भष्मकण्डा(भष्मकड़ा) है, वह मुझे प्रदान करो। शिव प्रभु ने वह भष्मकण्डा भष्मागिरी को दे दिया। कड़ा हाथ में आते ही भष्मागिरी ने कहा कि होजा शिवजी होशियार! तेरे को भष्म करुँगा तथा पार्वती को पत्नी बनाउँगा। यह कहकर अभद्र ढ़ंग से हँसा तथा शिवजी को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ा। भगवान शिव उस दुष्ट का उद्देश्य जानकर भाग निकले। पीछे-पीछे पुजारी आगे-आगे इष्टदेव शिवजी (तमगुण) भागे जा रहे थे।

विचार करें धर्मदास! यदि आपके देव शिव जी अविनाशी होते तो मृत्यु के भय से नहीं डरते। आप इनको अविनाशी कहा करते थे। आप इन्हें अन्तर्यामी भी कहते थे। यदि भगवान शिव अन्तर्यामी होते तो पहले ही भष्मागिरी के मन के गन्दे विचार जान लेते। इससे सिद्ध हुआ कि ये तो अन्तर्यामी भी नहीं हैं।

जिस समय भगवान शिव जी आगे-आगे और भष्मागिरी पीछे-पीछे भागे जा रहे थे, उस समय भगवान शिव ने अपनी रक्षा के लिए परमेश्वर को पुकारा। उसी समय ''परम अक्षर ब्रह्म'' जी पार्वती का रुप बनाकर भष्मागिरी दुष्ट के सामने खड़े हो गए तथा कहा हे भष्मागिरी! आ मेरे पास बैठ। भष्मागिरी को पता था कि अब शिवजी निकट स्थान पर नहीं रुकेंगे। भष्मागिरी तो पार्वती के लिए ही तो सर्व उपद्रव कर रहा था। हे धर्मदास! आपको सर्व कथा का पता है। पार्वती रुप में परमात्मा ने भष्मागिरी को गण्डहथ नाच नचाकर भस्म किया। तमोगुण शिव का पुजारी भष्मागिरी अपने गन्दे कर्म से भष्मासुर अर्थात् भस्मा राक्षस कहलाया।

इसलिए इन तीनों देवों के पुजारियों को राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख कहा है।

''हरिद्वार में साधुओं का कत्लेआम''

3. अब सतगुण श्री विष्णु जी के पुजारियों की कथा सुनाता हूँ।

❖ एक समय हरिद्वार में हर की पोड़ियों पर कुंभ का मेला लगा। उस अवसर पर तीनों गुणों के उपासक अपने-अपने समुदाय में एकत्रित हो जाते है। गिरी, पुरी, नागा-नाथ ये भगवान तमोगुण शिव के उपासक होते हैं तथा वैष्णव सतगुण भगवान विष्णु जी के उपासक होते हैं। हर की पोड़ियों पर प्रथम स्नान करने पर दो समुदायों ''नागा तथा वैष्णवों'' का झगड़ा हो गया। लगभग 25 हजार त्रिगुण (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) के पुजारी लड़कर मर गये, कत्लेआम कर दिया। तलवारों, छुरों, कटारी से एक-दूसरे की जान ले ली। सूक्ष्मवेद में कहा है कि :-

तीर तुपक तलवार कटारी, जमधड़ जोर बधावैं हैं।
हर पैड़ी हर हेत नहीं जाना, वहाँ जा तेग चलावैं हैं।।
काटैं शीश नहीं दिल करुणा, जग में साध कहावैं हैं।
जो जन इनके दर्शन कूं जावैं, उनको भी नरक पठावैं हैं।।

हे धर्मदास! उपरोक्त सत्य घटनाओं से सिद्ध हुआ कि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिवजी की पूजा करने वालों को गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख कहा है।

❖ परमेश्वर जिन्दा जी के मुख कमल से उपरोक्त कथा सुनकर धर्मदास जी का सिर फटने को हो गया। चक्कर आने लगे। हिम्मत करके धर्मदास बोला हे प्रभु! आपने तो मुझ ज्ञान के अँधे को आँखें दे दी दाता। उपरोक्त सर्व कथायें हम सुना तथा पढ़ा करते थे परन्तु कभी विचार नहीं आया कि हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं। आपका सौ-सौ बार धन्यवाद। आप जी ने मुझ पापी को नरक से निकाल दिया प्रभु!

प्रश्न 47 :- (धर्मदास जी का) : हे जिन्दा महात्मा! आपने बताया और गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में मैंने भी आँखों देखा जिसमें गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने अपनी साधना से होने वाली गति को अनुत्तम अर्थात् घटिया बताया है। उसको भी इसी तरह स्पष्ट करने की कृपया करें। कोई कथा प्रसंग सुनाएं।

उत्तर :- (जिन्दा बाबा वेशधारी परमेश्वर का) :

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा 9, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता (ब्रह्म) ने कहा है कि हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता मैं जानता हूं। श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वदर्शी सन्त से तत्वज्ञान प्राप्त करके परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए, जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर फिर संसार में कभी नहीं आते। जिस परमेश्वर से संसार रुपी वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई हो अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व संसार की उत्पत्ति की है। उसी परमेश्वर की भक्ति कर। फिर गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में गीता ज्ञान दाता ने कहा कि हे अर्जुन! तू सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, उस परमेश्वर की कृपा से ही तू परमशांति तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा। हे धर्मदास! जब तक जन्म-मरण रहेगा, तब तक परमशान्ति नहीं हो सकती और न ही सनातन परम धाम प्राप्त हो सकता। वास्तव में परमगति उसको कहते हैं जिसमें जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाए जो ब्रह्म साधना से कभी नहीं हो सकती। इसलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में गीता ज्ञान दाता ने बताया है कि जो ज्ञानी आत्मा हैं, मेरे विचार में सब नेक हैं। परन्तु वे सब मेरी अनुत्तम

(घटिया) गति में ही लीन हैं क्योंकि वे मेरी (ब्रह्म की) भक्ति कर रहे हैं। ब्रह्म की साधना का ''ॐ'' मन्त्र है। इससे ब्रह्म लोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में स्पष्ट है कि ब्रह्मलोक में गए हुए साधक भी पुनः लौटकर संसार में आते हैं। इसलिए उनको परमशान्ति नहीं हो सकती, सनातन परम धाम प्राप्त नहीं हो सकता। वेदों में वर्णित साधना से परमात्मा प्राप्ति नहीं होती। कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं जिनके द्वारा ऋषिजन चमत्कार करके किसी को हानि करके प्रसिद्ध हो जाते हैं। अंत में पाप के भागी होकर चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीरों में कष्ट उठाते रहते हैं। इसलिए ब्रह्म साधना से होने वाली गति अर्थात् उपलब्धि अनुत्तम (घटिया) कही है।

''ऋषि चुणक तथा मानधाता की कथा''

❖ कथा प्रसंग : गीता ज्ञान दाता (ब्रह्म) ने गीता अध्याय 7 श्लोक 16-17 में बताया है कि मेरी भक्ति चार प्रकार के भक्त करते हैं - 1. आर्त (संकट निवारण के लिए) 2. अर्थार्थी (धन लाभ के लिए), 3. जिज्ञासु (जो ज्ञान प्राप्त करके वक्ता बन जाते हैं) और 4. ज्ञानी (केवल मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति करने वाले)। इनमें से तीन को छोड़कर चौथे ज्ञानी को अपना पक्का भक्त गीता ज्ञान दाता ने बताया है।

❖ ज्ञानी की विशेषता :- ज्ञानी वह होता है जिसने जान लिया है कि मनुष्य जीवन केवल मोक्ष प्राप्ति के लिए ही प्राप्त होता है। उसको यह भी ज्ञान होता है कि पूर्ण मोक्ष के लिए केवल एक परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। अन्य देवताओं (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिवजी) की भक्ति से पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उन ज्ञानी आत्माओं को गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 में वर्णित तत्वदर्शी सन्त न मिलने के कारण उन्होंने वेदों से स्वयं निष्कर्ष निकाल लिया कि ''ब्रह्म'' समर्थ परमात्मा है, ओम् (ॐ) इसकी भक्ति का मन्त्र है। इस साधना से ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है। यही मोक्ष है।

ज्ञानी आत्माओं ने परमात्मा प्राप्ति के लिए हठयोग किया। एक स्थान पर बैठकर घोर तप किया तथा ओम् (ॐ) नाम का जाप किया। जबकि वेदों व गीता में हठ करने, घोर तप करने वाले मूर्ख दम्भी तथा राक्षस बताए हैं। (गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 9, गीता अध्याय 16 श्लोक 17 से 20 तथा गीता अध्याय 17 श्लोक 1 से 6)। इनको हठयोग करने की प्रेरणा कहाँ से हुई? श्री देवीपुराण (गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सचित्र मोटा टाईप) के तीसरे स्कंद में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने अपने पुत्र नारद को बताया कि जिस समय मेरी उत्पत्ति हुई, मैं कमल के फूल पर बैठा था। आकाशवाणी हुई कि तप करो-तप करो। मैंने एक हजार वर्ष तक तप किया।

हे धर्मदास! ब्रह्माजी को वेद तो बाद में सागर मन्थन में मिले थे। उनको पढ़ा तो यजुर्वेद अध्याय 40 के मन्त्र 15 में 'ओम्'' नाम मिला। उसका जाप तथा आकाशवाणी से सुना हठयोग (घोर तप) दोनों मिलाकर ब्रह्मा जी स्वयं करने लगे तथा अपनी सन्तानों (ऋषियों) को बताया। (चारों वेदों तथा इन्हीं का निष्कर्ष श्रीमद्भगवत गीता में हठ करके घोर तप करने वालों को राक्षस, क्रूरकर्मी, नराधम यानि नीच व्यक्ति कहा है। प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 17-20 तथा अध्याय 17 श्लोक 1-6 में।) वही साधना ज्ञानी आत्मा ऋषिजन करने लगे। उन ज्ञानी आत्माओं में से एक चुणक ऋषि का प्रसंग सुनाता हूँ जिससे आप के प्रश्न का सटीक उत्तर मिल जाएगा:- एक चुणक नाम का ऋषि था। उसने हजारों वर्षों तक घोर तप किया तथा ओम् (ॐ) नाम का जाप किया। यह ब्रह्म की भक्ति है। ब्रह्म ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि मैं किसी साधना यानि न वेदों में वर्णित यज्ञों से, न जप से, न तप से, किसी को भी दर्शन नहीं दूँगा। गीता अध्याय 11 श्लोक 48 में कहा है कि हे अर्जुन! तूने मेरे जिस रुप के दर्शन किए अर्थात् मेरा यह काल रुप देखा, यह मेरा स्वरुप है। इसको न तो वेदों में वर्णित विधि से देखा जा सकता, न किसी जप से, न तप से, न यज्ञ से तथा न किसी क्रिया से देखा जा सकता। गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में स्पष्ट किया है कि यह मेरा अविनाशी विधान है कि मैं कभी किसी को दर्शन नहीं देता, अपनी योग माया से छिपा रहता हूँ। ये मूर्ख लोग मुझे मनुष्य रूप अर्थात् कष्ण रूप में मान रहे हैं। जो सामने सेना खड़ी थी, उसकी ओर संकेत करके गीता ज्ञान दाता कह रहा था। कहने का भाव था कि मैं कभी किसी को दर्शन नहीं देता, अब तेरे ऊपर अनुग्रह करके यह अपना रूप दिखाया है।

भावार्थ :- वेदों में वर्णित विधि से तथा अन्य प्रचलित क्रियाओं से ब्रह्म प्राप्ति नहीं है। इसलिए उस चुणक ऋषि को परमात्मा प्राप्ति तो हुई नहीं, सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। ऋषियों ने उसी को भक्ति की अन्तिम उपलब्धि मान लिया। जिसके पास अधिक सिद्धियाँ होती थी, वह अन्य ऋषियों से श्रेष्ठ माना जाने लगा। यही उपलब्धि चुणक ऋषि को प्राप्त थी।

एक मानधाता चक्रवर्ती राजा (जिसका राज्य पूरी पथ्वी पर हो, ऐसा शक्तिशाली राजा) था। उसके पास 72 अक्षौणी सेना थी। राजा ने अपने आधीन राजाओं को कहा कि जिसको मेरी पराधीनता स्वीकार नहीं, वे मेरे साथ युद्ध करें, एक घोड़े के गले में एक पत्र बाँध दिया कि जिस राजा को राजा मानधाता की आधीनता स्वीकार न हो, वो इस घोड़े को पकड़ ले और युद्ध के लिए तैयार हो जाए। पूरी पथ्वी पर किसी भी राजा ने घोड़ा नहीं पकड़ा। घोड़े के साथ कुछ सैनिक भी थे। वापिस आते समय ऋषि चुणक ने पूछा कि कहाँ गए थे सैनिको! उत्तर मिला कि पूरी पथ्वी पर घूम आए, किसी ने घोड़ा नहीं पकड़ा। किसी ने राजा का युद्ध नहीं स्वीकार किया। ऋषि ने कहा कि मैंने यह युद्ध स्वीकार

लिया। सैनिक बोले हे कंगाल! तेरे पास दाने तो खाने को हैं नहीं और युद्ध करेगा महाराजा मानधाता के साथ? ऋषि चुणक जी ने घोड़ा पकड़कर वंक्ष से बाँध लिया। मानधाता राजा को पता चला तो युद्ध की तैयारी हुई। राजा ने 72 अक्षौणी सैना की चार टुकड़ियाँ बनाई। ऋषि पर हमला करने के लिए एक टुकड़ी 18 अक्षौणी (18 करोड़) सेना भेज दी । दूसरी ओर ऋषि ने अपनी सिद्धि से चार पूतलियाँ बनाई। एक पुतली छोड़ी जिसने राजा की 18 अक्षौणी सेना का नाश कर दिया। राजा ने दूसरी टुकड़ी छोड़ी। ऋषि ने दूसरी पुतली छोड़ी, उसने दूसरी टुकड़ी 18 अक्षौणी सेना का नाश कर दिया। इस प्रकार चुणक ऋषि ने मानधाता राजा की चार पुतलियों से 72 अक्षौणी सेना नष्ट कर दी। जिस कारण से महर्षि चुणक की महिमा पूरी पंथ्वी पर फैल गई। इस अनर्थ के कारण सर्वश्रेष्ठ ऋषि माना गया।

हे धर्मदास! (जिन्दा रुप धारी परमात्मा बोले) ऋषि चुणक ने जो सेना मारी, ये पाप कर्म ऋषि के संचित कर्मों में जमा हो गए। ऋषि चुणक ने जो ऊँ (ओम्) एक अक्षर का जाप किया, वह उसके बदले ब्रह्मलोक में जाएगा। फिर अपना ब्रह्म लोक का सुख समय व्यतीत करके पंथ्वी पर जन्मेगा। जो हठ योग तप किया, उसके कारण पंथ्वी पर राजा बनेगा। फिर मंत्यु के उपरान्त कुत्ते का जन्म होगा। जो 72 अक्षौणी सेना मारी थी, वह अपना बदला लेगी। कुत्ते के सिर में जख्म होगा और उसमें कीड़े बनकर 72 अक्षौणी सेना अपना बदला चुकाएगी। इसलिए हे धर्मदास! गीता ज्ञान दाता (ब्रह्म) ने अपनी साधना से होने वाली गति यानि मुक्ति को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है।

प्रश्न 45 (धर्मदास जी का) :- हे जिन्दा! मैंने एक महामण्डलेश्वर से प्रश्न किया था कि गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में भगवान कंष्ण जी ने किस परमेश्वर की शरण में जाने के लिए कहा है? उस मण्डलेश्वर ने उत्तर दिया था कि भगवान श्री कंष्ण से अतिरिक्त कोई भगवान ही नहीं। कंष्ण जी ही स्वयं पूर्ण परमात्मा हैं, वे अपनी ही शरण आने के लिए कह रहे हैं, बस कहने का फेर है। हे जिन्दा जी! कंप्या मुझ अज्ञानी का भ्रम निवारण करें।

उत्तर : (जिन्दा बाबा परमेश्वर का) :- हे धर्मदास!

ये माला डाल हुए हैं मुक्ता। षटदल उवा–बाई बकता।

आपके सर्व मण्डलेश्वर तथा शंकराचार्य अट-बट करके भोली जनता को भ्रमित कर रहे हैं। कह रहे हैं कि गीता ज्ञान दाता गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में अर्जुन को अपनी शरण में आने को कहता है, यह बिल्कुल गलत है क्योंकि गीता अध्याय 2 श्लोक 7 में अर्जुन ने कहा कि 'हे कंष्ण! अब मेरी बुद्धि ठीक से काम नहीं कर रही है। मैं आप का शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ। जो मेरे हित में हो, वह ज्ञान मुझे दीजिए। हे धर्मदास! अर्जुन तो पहले ही श्री कंष्ण की शरण में था। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य

'परम अक्षर ब्रह्म' की शरण में जाने के लिए कहा है। गीता अध्याय 4 श्लोक 3 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन तू मेरा भक्त है। इसलिए यह गीता शास्त्र सुनाया है।

गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा का अन्य प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 11 से 28, 30, 31, 34 में भी है।

❖ श्री मद्भगवत गीता अध्याय 13 श्लोक 1 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि शरीर को क्षेत्र कहते हैं जो इस क्षेत्र अर्थात् शरीर को जानता है, उसे "क्षेत्रज्ञ" कहा जाता है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 1)

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि :- मैं क्षेत्रज्ञ हूँ। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ दोनों को जानना ही तत्वज्ञान कहा जाता है, ऐसा मेरा मत है। गीता अध्याय 13 श्लोक 10 में कहा है कि मेरी भक्ति अव्यभिचारिणी होनी चाहिए। जैसे अन्य देवताओं की साधना तो गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 में तथा अध्याय 9 श्लोक 23-24 में व्यर्थ कही हैं। केवल ब्रह्म की भक्ति करें। उसके विषय में यहाँ कहा है कि अन्य देवता में आसक्त न हों। भावार्थ है कि भक्ति व मुक्ति के लिए ज्ञान समझें, वक्ता बनने के लिए नहीं। इसके अतिरिक्त वक्ता बनने के लिए ज्ञान सुनना अज्ञान है। पतिव्रता स्त्री की तरह केवल मुझमें आस्था रखकर भक्ति करें। अन्य मनुष्यों में बैठकर बातें बनाने का स्वभाव नहीं होना चाहिए। एकान्त स्थान में रहकर भक्ति करें।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 11 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि अध्यात्म ज्ञान में रूचि रखकर तत्व ज्ञान के लिए सद्ग्रन्थों को देखना तत्वज्ञान है, वह ज्ञान है तथा तत्वज्ञान की अपेक्षा कथा कहानियाँ सुनाना, सुनना, शास्त्रविधि विरूद्ध भक्ति करना यह सब अज्ञान है। तत्वज्ञान के लिए परमात्मा को जानना ही ज्ञान है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 12 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से "परम ब्रह्म" यानि श्रेष्ठ परमात्मा का ज्ञान कराया है, जो परमात्मा (ज्ञेयम्) जानने योग्य है, जिसको जानकर (अमतम् अश्नुते) अमरत्व प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष का अमत जैसा आनन्द भोगने को मिलता है। उसको भली-भाँति कहूँगा। (तत्) वह दूसरा (ब्रह्म) परमात्मा न तो सत् कहा जाता है और न असत् अर्थात् गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 4 श्लोक 32, 34 में कहा है कि जो तत्वज्ञान है, उसमें परमात्मा का पूर्ण ज्ञान है, वह तत्वज्ञान परमात्मा अपने मुख कमल से स्वयं उच्चारण करके बोलता है। उस तत्वज्ञान को तत्वदर्शी सन्त जानते हैं, उनको दण्डवत् प्रणाम करने से, नम्रतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म तत्व को भली-भाँति जानने वाले तत्वदर्शी सन्त तुझे तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता को परमात्मा का पूर्ण ज्ञान नहीं है। इसलिए कह रहा है कि वह दूसरा परमात्मा जो गीता ज्ञान दाता से भिन्न है। वह न सत् है, न ही असत्। यहाँ पर पर+ब्रह्म का अर्थ सात संख ब्रह्माण्ड वाले परब्रह्म अर्थात् गीता अध्याय 15 श्लोक

16 वाले अक्षर पुरूष से नहीं है क्योंकि काल लोक (जो 21 ब्रह्माण्डों का क्षेत्र है) में अक्षर पुरूष जिसे परब्रह्म कहा है, की विशेष भूमिका नहीं है। यहाँ काल लोक में काल तथा दयाल की भूमिका है। इसलिए यहाँ (पर माने दूसरा और ब्रह्म माने परमात्मा) ब्रह्म से अन्य परमात्मा पूर्ण ब्रह्म का वर्णन है।

भावार्थ :- गीता अध्याय 13 श्लोक 12 में गीता ज्ञान दाता कह रहा है कि जो मेरे से दूसरा ब्रह्म अर्थात् प्रभु है वह अनादि वाला है। अनादि का अर्थ है जिसका कभी आदि अर्थात् शुरूवात न हो, कभी जन्म न हुआ हो। गीता ज्ञानदाता क्षर पुरूष है, इसे "ब्रह्म" भी कहा जाता है। इसने गीता अध्याय 2 श्लोक 12, गीता अध्याय 4 श्लोक 5, 9, गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में स्वयं स्वीकारा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञानदाता अनादि वाला "ब्रह्म" अर्थात् प्रभु नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञानदाता ने अध्याय 13 के श्लोक 12 में अपने से अन्य अविनाशी परमात्मा की महिमा कही है। (अध्याय 13 श्लोक 12)

❖ गीता ज्ञान दाता ब्रह्म है, यह एक हजार (संहस्र) हाथ-पैर वाला है। इसका संहस्र कमल है अर्थात् हजार पँखुड़ियों वाला कमल है। गीता अध्याय 11 श्लोक 46 में अर्जुन ने कहा है कि हे संहस्राबाहु! (हजार हाथों वाले) आप चतुर्भुज रूप में आइए। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञानदाता केवल हजार भुजाओं वाला है। इसलिए गीता अध्याय 13 श्लोक 13 में गीता ज्ञान दाता अपने से अन्य सब और हाथ-पैर वाले, सब और नेत्र सिर और मुख वाले और सब और कान वाले परमात्मा की महिमा कह रहा है। कहा है कि वह परमात्मा संसार में सबको व्याप्त करके अर्थात् अपनी शक्ति से सब रोके है और स्वयं सत्यलोक (शाश्वत स्थानम् तिष्ठति) में बैठा है।

स्पष्ट हुआ कि गीता ज्ञानदाता से अन्य समर्थ परमात्मा है, वही सब संसार का संचालन, पालन करता है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 13)

❖ गीता के अध्याय 13 श्लोक 14 श्लोक में भी स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता अपने से अन्य परमात्मा का ज्ञान कराया है। कहा है :- सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला अर्थात्् अन्तर्यामी है। सब इन्द्रियों से रहित है अर्थात् परमात्मा की इन्द्रियाँ हम मानव तथा अन्य प्राणियों जैसी विकारग्रस्त नहीं है। वह परमात्मा आसक्ति रहित है अर्थात् वह इस काल लोक (इक्कीस ब्रह्माण्डों) की किसी वस्तु-पदार्थ में आसक्ति नहीं रखता क्योंकि उस परमेश्वर का सत्यलोक इस काल के क्षेत्र से असख्यों गुणा उत्तम है। इसलिए वह परमात्मा आसक्ति रहित कहा है। वही सबका धारण-पोषण करने वाला है। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में भी है। वह परमात्मा निर्गुण है, परंतु सगुण होकर ही अपना महत्व दिखाता है। उदाहरण के लिए :- जैसे आम का पेड़ आम के बीज (गुठली) में निर्गुण अवस्था में होता है। उस बीज को जब बीजा जाता है, तब वह पौधा

फिर पेड़ रूप में सगुण होकर अपना महत्व प्रकट करता है। परन्तु परमात्मा सत्यलोक में सर्गुण रूप में बैठा है क्योंकि परमात्मा ने अपने वचन शक्ति से सर्व संष्टि रचकर विधान बनाकर छोड़ दिया। उस परमात्मा के विधान अनुसार सर्व प्राणी तथा नक्षत्र बनते-बिगड़ते रहते हैं, जीव कर्मानुसार जन्मते-मरते रहते हैं। परमात्मा को कोई टैंशन नहीं, परन्तु जब परमात्मा पंथ्वी पर प्रकट होता है, उस समय सर्व गुणों को भोगता है। जैसे आम के वंक्ष को तो निर्गुण से सर्गुण होने में बहुत समय लगता है। परन्तु परमात्मा के लिए समय सीमा नहीं है। वे तो क्षण में निर्गुण, अगले क्षण में सर्गुण हो सकते हैं। जैसे क्षण में सत्यलोक चले जाते हैं तो हमारे लिए निर्गुण हो गए। हम उनके गुणों का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। क्षण में पंथ्वी पर प्रकट हो जाते हैं तो वे सगुण हो गए। हमारे को आशीर्वाद देकर अपने गुणों का लाभ देते हैं। इस प्रकार निर्गुण-सगुण कहा है। इससे भी सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से अन्य कोई सबका धारण-पोषण करने वाला परमात्मा है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 15-16 में भी यही प्रमाण है। गीता ज्ञानदाता ने कहा है कि जैसे सूर्य दूर स्थान पर स्थित होते हुए भी यहाँ पंथ्वी पर अपना प्रभाव बनाए है। उसी प्रकार परमात्मा सत्यलोक में स्थित होकर भी सर्व ब्रह्माण्डों पर अपनी शक्ति का प्रभाव बनाए हुए है। सर्व चर-अचर भूतों के बाहर-भीतर है। इसी प्रकार सूक्ष्म होने से हम उसको चर्मदंष्टि से देख नहीं पाते। इसलिए अविज्ञय अर्थात् हमारे ज्ञान से परे है तथा वही परमात्मा हमारे समीप में तथा दूर भी वही स्थित है। परमात्मा तो दूर सत्यलोक (शाश्वत स्थान) में है, उसकी शक्ति का प्रभाव प्रत्येक के साथ है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 15)

❖ जैसे सूर्य दूर स्थित है, परन्तु पंथ्वी के ऊपर प्रत्येक प्राणी को अपने साथ दिखाई देता है। जैसे एक स्थान पर कई घड़े जल के भरे रखे हैं तो सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है, टुकड़ों में नहीं दिखता। इसी प्रकार परमात्मा प्रत्येक व्यक्ति को दिखाई देता है। परमात्मा ऐसे ही एक स्थान पर स्थित है। वह परमात्मा जानने योग्य है। भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरे से अन्य परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए, वह जानने योग्य है। वही परमात्मा अपने विधानानुसार सर्व का धारण-पोषण, उत्पत्ति तथा मंत्यु करता है। वास्तव में "ब्रह्मा" (सब का उत्पत्तिकर्ता) वही है। वास्तव में विष्णु (सबका धारण-पोषण करने वाला) वही है, वास्तव में शंकर (संहार करने वाला) वही है। अन्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर तो केवल एक ब्रह्माण्ड के कर्ता-धरता हैं। परन्तु वह परमात्मा तो सर्व ब्रह्माण्डों का ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर रूप में अकेला ही है। जैसे भारत वर्ष में केन्द्र का भी गंहमन्त्री होता है तथा राज्यों में भी गंहमन्त्री होते हैं। देश के प्रधानमंत्री जी अपने पास अन्य विभाग भी रख लेते हैं। उस समय प्रधानमंत्री जी गंहमंत्री आदि-आदि भी होते हैं और प्रधानमंत्री भी होते हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य समर्थ परमात्मा की

महिमा बताई है। गीता ज्ञान दाता से अन्य कोई पूर्ण परमात्मा है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 16) गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा की महिमा कही है जो इस प्रकार है:-

❖ वह दूसरा परमात्मा (परम् ब्रह्म) सब ज्योतियों की भी ज्योति है अर्थात् सर्व प्रकाशस्रोत है, उसी अन्य समर्थ परमात्मा की शक्ति से सब प्रकाशमान हैं। और उस परमात्मा का प्रकाश सर्व से अधिक है। वह परमात्मा माया से अति परे कहा जाता है। वास्तव में निरंजन वही है। जो गीता ज्ञान दाता है, यह माया सहित "ज्योति निरंजन" कहा जाता है। वह परमात्मा ज्ञान का भण्डार है, वह जानने योग्य है, वह (ज्ञानगम्यम्) तत्व ज्ञान द्वारा प्राप्त होने योग्य है।

इस गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में मूल पाठ में "ज्ञानम् ज्ञेयम् ज्ञान गम्यम्" लिखा है जिसका भावार्थ है कि (ज्ञानम्) जो ज्ञान परमात्मा स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर तत्वज्ञान अपने मुख कमल से बोलता है। इसलिए वह ज्ञान रूप है अर्थात् ज्ञान का भण्डार है। वह परमात्मा (ज्ञेयम् ज्ञानग्यम्) उसी तत्वज्ञान से जानने योग्य तथा उसी तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है। वह परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी प्रत्येक घड़े के जल में दिखाई देता है। वास्तव में वह उन घड़ों में नहीं हैं। परंतु घड़ों के ऊपर अपना प्रभाव रखता है, उष्णता देता है। सूक्ष्म वेद में कहा है कि :-

ब्रह्मा विष्णु शिव राई झूमकरा। नहीं सब बाजी के खम्ब सुनों राई झूमकरा।
वह सर्व ठाम सब ठौर है राई झूमकरा। सकल लोक भरपूर सुनो राई झूमकरा।।

यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में भी है कहा है कि हे अर्जुन! शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया अर्थात् अपनी शक्ति से उनके कर्मानुसार भ्रमण कराता है अर्थात् संस्कारों के अनुसार अच्छी-बुरी योनियों में घूमाता है। वही सर्व शक्तिमान परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है अर्थात् विराजमान है। इसी प्रकार परमेश्वर की महिमा गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कही है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा की महिमा कही है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 17)

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 18 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि इस प्रकार क्षेत्र अर्थात् शरीर, ज्ञानम् तत्व ज्ञान और ज्ञेयम् अर्थात् जानने योग्य परमात्मा की महिमा मैंने संक्षेप में कही है। मेरा भक्त पहले मुझे ही सर्वेस्वा जानकर मुझ पर आश्रित था। वह इस (विज्ञाय) तत्वज्ञान के आधार से मेरे भाव अर्थात् मेरी शक्ति से परिचित होकर तथा उस समर्थ की शक्ति से परिचित होकर (उप पद्यते) उसके उपरान्त भक्ति करके उसी भाव को प्राप्त होता है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 18)

❖ इसी प्रकार गीता अध्याय 13 श्लोक 19 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से

अन्य पुरूष अर्थात् परमात्मा की महिमा कही है। कहा है कि प्रकृति और पुरूष दोनों ही अनादि हैं। यहाँ पर प्रकृति से तात्पर्य सत्यलोक की प्रकृति से है। जिसको पराशक्ति, परानन्दनी, महान प्रकृति कहा जाता है। पुरूष का अर्थ पूर्ण परमात्मा है, ये दोनों अनादि हैं। इस प्रकृति का भावार्थ दुर्गा स्त्री रूप की तरह स्त्री रूप प्रकृति से नहीं है। जैसे सूर्य है तो उसकी प्रकृति उष्णता भी साथ ही है। इसी प्रकार सत्यपुरूष तथा उसकी प्रकृति अर्थात् शक्ति दोनों अनादि हैं।

इस प्रकार विकार तथा तीनों गुण जिस से उत्पन्न हुए हैं, वह अन्य प्रकृति है, उससे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जान। गीता अध्याय 7 श्लोक 4-5 में दो प्रकृति कही हैं, एक जड़ और दूसरी चेतन दुर्गा देवी। यहाँ पर दूसरी प्रकृति दुर्गा कही है। (गीता अध्याय 13 श्लोक 19)

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 20 में भी अन्य (पुरूषः) परमात्मा का वर्णन है। गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता के इस श्लोक के अनुवाद में "पुरूषः" का अर्थ जीवात्मा किया। वास्तव में यहाँ पुरूष का अर्थ परमात्मा है। गीता अध्याय 13 श्लोक 20 का यथार्थ अनुवाद देखें "गहरी नजर गीता में" जो हमारी Web site पर देखी व डाऊनलोड की जा सकती है। Web site का नाम है "www. jagatgururampalji.org"

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 21 में भी अन्य (पुरूषः) परमात्मा का वर्णन है। इसके अनुवाद में गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित में "पुरूषः" का अर्थ पुरूष ही किया है, यह ठीक है। पुरूषः का अर्थ परमात्मा होता है। प्रकरणवश पुरूषः का अर्थ मनुष्य भी किया जाता है क्योंकि परमात्मा ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुरूप बनाया है। इसलिए कहा जाता है कि :-

नर नारायण रूप है, तू ना समझ देहि।

''चौरासी लाख प्रकार के जीवों से मानव देह उत्तम है''

गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में भी गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा का प्रत्यक्ष प्रमाण बताया है। गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता में इस श्लोक का अर्थ बिल्कुल गलत किया है। (देखें इसी पुस्तक में पृष्ठ 204 से 357 तक।)

❖ यथार्थ अनुवाद :- जैसे पूर्व के श्लोकों में वर्णन आया है कि परमात्मा प्रत्येक जीव के साथ ऐसे रहता है, जैसे सूर्य प्रत्येक घड़े के जल में स्थित दिखाई देता है। उस जल को अपनी उष्णता दे रहा है। इसी प्रकार परमात्मा प्रत्येक जीव के हृदय कमल में ऐसे विद्यमान है जैसे सौर ऊर्जा सयन्त्र जहाँ भी लगा है तो वह सूर्य से उष्णता प्राप्त करके ऊर्जा संग्रह करता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव के साथ परमात्मा रहता है। इसलिए इस श्लोक (गीता अध्याय 13 श्लोक 22) में कहा है कि वह परमात्मा सब प्रभुओं का भी स्वामी होने से "महेश्वर", सब का धारण-पोषण करने से "कर्ता", सत्यलोक में बैठा प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक

गतिविधि को देखने वाला होने से "उपदृष्टा", जीव परमात्मा की शक्ति से सर्व कार्य करता है। जीव परमात्मा का अंश है। (रामायण में भी कहा है, ईश्वर अंश जीव अविनाशी) जिस कारण से जीव जो कुछ भी अपने किए कर्म का सुख, दुःख भोगता है तो अपने अंश के सुख-दुःख का परमात्मा को भी अहसास होता है।

सूक्ष्म वेद में लिखा है - "कबीर कह मेरे जीव को दुःख ना दिजो कोय।
भक्त दुःखाऐ मैं दुःखी मेरा आपा भी दुःखी होय।।"

इसलिए "भोक्ता" कहलाता है। प्रत्येक प्राणी को गुप्त रूप से उचित राय देता है, जिस कारण से परमात्मा "अनुमन्ता" कहलाता है। (परमात्मा शब्द का संधि विच्छेद = परम+आत्मा = श्रेष्ठ आत्मा = परमात्मा।) यदि कोई दुःख का भोग भी देता है, सुख का भोग भी देता है। जैसे कर्म करेगा जीव वैसे अवश्य भोगेगा तो वह "परमात्मा" नहीं कहा जा सकता, वह श्रेष्ठ आत्मा नहीं होता। जैसे इस काल (ब्रह्म के) लोक में विधान है कि जैसा कर्म करोगे, वैसा फल आपको भगवान अवश्य देगा। तो यह प्रभु (स्वामी)तो है, परन्तु ''परम आत्मा'' नहीं है। इस मानव शरीर में (परः) दूसरा (पुरूषः) परमात्मा जो जीव के साथ अभिन्न रूप से रहता है, जैसे सूर्य प्रत्येक को अपनी ऊर्जा देता है, उसी प्रकार यह दूसरा परमात्मा उपरोक्त महिमा वाला है। जैसे सौर ऊर्जा से जो बल्ब जगता है, उसमें सूर्य होता है यानि सूर्य की ऊर्जा कार्य करती है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा की भूमिका समझें।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 23 में भी अन्य (पुरूषम्) परमात्मा बताया है। कहा है कि जो सन्त उपरोक्त प्रकार से (पुरूषम्) परमात्मा, प्रकृति, तथा गुणों सहित जानता है, वह सन्त-साधक सब प्रकार से परमात्मा में लीन (वर्तमान) रहता हुआ पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका पूर्ण मोक्ष हो जाता है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 24 भी अन्य परमात्मा का वर्णन है जो गीता ज्ञान दाता से अन्य है। कहा है कि जो परमात्मा सूर्य के सदृश जीवात्मा के साथ अभेद रूप से रहता है। उसको साधक ध्यान द्वारा दिव्य दृष्टि से हृदय में देखते हैं जैसे बिजली को टैस्टर द्वारा देख लेते हैं, अन्य साधक ज्ञान सुनकर विश्वास करके परमात्मा का स्वरूप स्वीकार कर लेते हैं। अन्य भक्तजन (कर्मयोगेन) परमात्मा के कर्मों अर्थात् लीलाओं को देखकर परमात्मा का अस्तित्व जान लेते हैं। जैसे संसार में लगभग 7 अरब जनसँख्या है। किसी का भी चेहरा (face) एक-दूसरे से नहीं मिलता। (कवि ने कहा है :- कई अरब बनाए बन्दे आँख, नाक, हाथ लगाए, एक-दूसरे के नाल कोई भी रलदे नहीं रलाए) इससे भी सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ शक्ति है, उसे "परमात्मा" कहा जाता है। कुछ भक्तजन परमात्मा के इस प्रकार के कार्य देखकर परमात्मा को मानते हैं।

❖ गीता अध्याय 12 श्लोक 25 में कहा है कि जो शिक्षित नहीं और जो न ध्यान करते हैं, न ज्ञान को समझ पाते हैं और न वे परमात्मा की संरचना से

परमात्मा को समझ पाते हैं। वे अन्य शिक्षित, विद्वान व्यक्तियों से परमात्मा की महिमा सुनकर मान लेते हैं कि जब यह शिक्षित और ज्ञानी व्यक्ति कह रहा है तो परमात्मा है। फिर वे उपासना करने लग जाते हैं। वे उसे सुनने के कारण परमात्मा के अस्तित्व को मानकर उपासना करने के कारण इस मतलोक (मत्यु संसार) से पार हो जाते हैं।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 26 में तो इतना ही कहा है कि सर्व प्राणी क्षेत्र अर्थात् दुर्गा के शरीर तथा क्षेत्रज्ञ अर्थात् गीता ज्ञान दाता क्षर ब्रह्म के संयोग से उत्पन्न होते हैं। ध्यान रहे गीता ज्ञान दाता ने गीता के इसी अध्याय 13 के श्लोक 1 में कहा है कि "क्षेत्र" तो शरीर को कहते हैं तथा जो शरीर के विषय में जानता है, उसे "क्षेत्रज्ञ" कहते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 2 में कहा है। इस काल लोक (इक्कीस ब्रह्माण्डों के क्षेत्र में) में जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे दुर्गा जी तथा काल भगवान के संयोग से होते हैं अर्थात् नर-मादा से काल प्रेरणा से काल सष्टि उत्पन्न होती है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 27 में अन्य परमेश्वर स्पष्ट है जो गीता ज्ञान दाता से अन्य है। (भिन्न है) :- जैसे पूर्व के श्लोकों में प्रमाण सहित बताया गया है कि परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के शरीर में हृदय में ऐसे बैठा दिखाई देता है जैसे सूर्य जल से भरे घड़ों में दिखाई देता है। इसी प्रकार इस श्लोक 27 में कहा है कि परमेश्वर हृदय में बैठा है। जब प्राणी का शरीर नष्ट हो जाता है तो भी परमेश्वर नष्ट नहीं होता। जैसे कोई घड़ा फूट गया, उसका जल पथ्वी पर बिखर गया और पथ्वी में समा गया तो भी सूर्य तो यथावत् है। इसलिए परमेश्वर अविनाशी है जो सन्त परमात्मा को इस दष्टिकोण से देखता है, वह सही जानता है, वह तत्वज्ञानी सन्त है।

इस श्लोक (गीता अध्याय 13 श्लोक 27) में परमेश्वर शब्द लिखा है। जिससे भी गीता ज्ञान दाता से अन्य परमात्मा का बोध होता है। आओ जानें:-

"परमेश्वर" का सन्दिछेद = परम+ईश्वर

व्याख्या :— "ईश" का अर्थ है स्वामी, प्रभु, मालिक। "वर" का अर्थ है श्रेष्ठ, पति

1. ईश् तो गीता ज्ञान दाता "क्षर पुरूष" अर्थात् क्षर ब्रह्म है जो केवल इक्कीस ब्रह्माण्डों का प्रभु है।

2. ईश्वर = ईश् अर्थात् क्षर पुरूष से श्रेष्ठ प्रभु। वह केवल 7 शंख ब्रह्माण्डों का प्रभु है। इसे अक्षर पुरूष तथा परब्रह्म भी कहा जाता है।

3. परमेश्वर = ईश्वर अर्थात् अक्षर पुरुष से परम अर्थात् श्रेष्ठ है, जो असँख्य ब्रह्माण्डों का प्रभु है, उसे परम अक्षर ब्रह्म भी कहा जाता है। (गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में प्रमाण है) गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूषों का वर्णन है। क्षर पुरूष - यह गीता ज्ञान दाता ईश् है तथा अक्षर पुरूष है। यह ईश्वर है तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि (उत्तम पुरूषः) पुरूषोत्तम अर्थात्

वास्तव में सर्व श्रेष्ठ प्रभु तो ऊपर के श्लोक (गीता अध्याय 15 श्लोक 16) में कहे दोनों (क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष) से भिन्न है, उसी को वास्तव में "परमात्मा" कहा जाता है। वही तीनों लोकों (क्षर पुरूष के 21 ब्रह्माण्डों का क्षेत्र काल लोक कहा जाता है तथा अक्षर पुरूष के 7 शंख ब्रह्माण्डों के क्षेत्र को परब्रह्म का लोक कहा जाता है और ऊपर चार लोकों (सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक तथा अकह लोक) का क्षेत्र अमर लोक परमेश्वर का लोक कहा जाता है। इस प्रकार तीन लोकों का यहाँ पर वर्णन है। इन तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण-पोषण करता है। वह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। गीता अध्याय 13 श्लोक 27 में "परमेश्वर" शब्द है जो गीता ज्ञान दाता से भिन्न सर्व शक्तिमान, सर्व का पालन कर्ता का बोधक है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 28 में भी गीता ज्ञान दाता से अन्य प्रभु का प्रमाण है। इस श्लोक में "ईश्वर" शब्द परमेश्वर का बोधक है, जैसे ईश् का अर्थ स्वामी, वर का अर्थ श्रेष्ठ। वास्तव में सब का "ईश" स्वामी तो परम अक्षर ब्रह्म है। वही श्रेष्ठ ईश है, इसलिए "ईश्वर" शब्द प्रकरणवश पूर्ण परमात्मा का बोधक है। यदि अन्य "ईश" नकली स्वामी नहीं होते तो ईश्वर तथा परमेश्वर शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए इस श्लोक में "ईश्वर" शब्द सत्य पुरूष का बोध जानें।

गीता अध्याय 13 श्लोक 28 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो साधक सब प्रकार से परमेश्वर को समभाव में देखता हुआ (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (आत्मना) अपनी अज्ञान आत्मा द्वारा नष्ट नहीं करता अर्थात् वह परमात्मा को सही समझकर उसकी साधना करके (ततः) उससे (पराम् = परा) दूसरी (गतिम्) गति अर्थात् मोक्ष को (याति) प्राप्त होता है अर्थात् वह साधक गीता ज्ञान दाता वाली परमगति (जो गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कही है) से अन्य गति को प्राप्त होता है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 30 में स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा की महिमा बताई है। कहा है कि जो सन्त सर्व प्रणियों की स्थिति भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक परमात्मा सर्वशक्तिमान के अन्तर्गत मानता है तो वह समझो ''सच्चिदानन्दघन ब्रह्म'' अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त हो गया है, वह सत्य भक्ति करके उस परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 31 में भी गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य "परमात्मा" के विषय में कहा है। इस श्लोक में "परमात्मा" शब्द है जिसकी स्पष्ट परिभाषा गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में बताई है। कहा है कि जो उत्तम पुरूष अर्थात् सर्वश्रेष्ठ प्रभु है। वह तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। वह वास्तव अविनाशी परमेश्वर है। उसी को "परमात्मा" कहा जाता है। वह क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष से अन्य है।

इस श्लोक (गीता अध्याय 13 श्लोक 31) में भी यही स्पष्ट किया है कि वह

परमात्मा अनादि होने से, निर्गुण होने से प्रत्येक प्राणी के शरीर में (सूर्य जैसे घड़े में) स्थित होने पर भी न तो कुछ करता है क्योंकि सब कार्य परमात्मा की शाक्ति करती है, (जैसे घड़े के जल में सूर्य दिखाई देता है उससे जल गर्म हो रहा है। वह सूर्य करता नहीं दिखाई देता, उसकी उष्णता कर रही है। सूर्य कुछ नहीं करता दिखता) और न परमात्मा उस शरीर में लिप्त होता है, जैसे सूर्य घड़े के जल में लिप्त नहीं होता।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 32 में भी यही प्रमाण है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 33 में आत्मा और शरीर की स्थिति बताई है।

❖ गीता अध्याय 13 श्लोक 34 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर की जानकारी दी है। कहा है कि इस प्रकार क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (गीता ज्ञान दाता) के भेद को तथा कर्म करते-करते भक्ति करके काल की प्रकति अर्थात् काल जाल से मुक्त जो साधक ज्ञान नेत्रों द्वारा जानकर तत्वदर्शी सन्त की खोज करके सत्य शास्त्रानुकूल साधना करके तत्वज्ञान को समझकर उस परम् अर्थात् दूसरे परमब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा है जिसकी भक्ति की साधना करके साधक उस पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाता है जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में वर्णित है कि तत्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद को खोजना चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आता।

सारांश :- पूर्वोक्त प्रमाणों से तथा इस गीता अध्याय 13 के उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हुआ कि गीता ज्ञान दाता से अन्य परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा है। जिसकी शरण में जाने के लिए गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 18 श्लोक 62, 66 में कहा है। वही पूर्ण मोक्षदायक है, वही पूजा करने योग्य है, वही सबका रचनहार है, वही सबका पालनहार, धारण करने वाला सर्व सुखदायक है। उसको "परमात्मा" कहा जाता है।

प्रश्न 49 :- (धर्मदास जी का) :- गीता अध्याय 4 श्लोक 6 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं अजन्मा और अविनाशी रुप होते हुए भी समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ। इस में श्री कष्ण जी अपने आप को समस्त प्राणियों का अविनाशी ईश्वर कह रहे हैं, अपने को अजन्मा भी कहा है।

उत्तर :- (जिन्दा परमेश्वर जी का) : हे धर्मदास जी! गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने श्री कष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके कहा है। श्री कष्ण जी की कोई भूमिका नहीं है। गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म है। गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जितने प्राणी मेरे 21 ब्रह्माण्डों में मेरे अन्तर्गत हैं। मैं उनका श्रेष्ठ प्रभु (ईश्वर) हूँ। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 18 में भी है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं लोक वेद (सुनी-सुनाई बातें) के आधार से अपने 21 ब्रह्माण्डों वाले लोक

में पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूँ क्योंकि मैं शरीरधारी प्राणियों से तथा अविनाशी जीवात्मा से भी श्रेष्ठ हूँ जो मेरे अन्तर्गत मेरे इक्कीश ब्रह्माण्डों में हैं। वास्तव में पुरुषोत्तम तो कोई अन्य ही है जिसका वर्णन गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में बताया गया है।

❖ गीता के अध्याय 4 श्लोक 6 में यह कहा है कि मैं (अजः) अजन्मा अर्थात् मैं तुम्हारी तरह जन्म नहीं लेता, मैं लीला से प्रकट होता हूँ। जैसे गीता अध्याय 10 में विराट रुप दिखाया था, फिर कहा है कि (अव्ययात्मा) मेरी आत्मा अमर है। फिर कहा है कि (आत्ममायया) अपनी लीला से (सम्भवामि) उत्पन्न होता हूँ। यहाँ पर उत्पन्न होने की बात है क्योंकि यह काल ब्रह्म अक्षर पुरुष के एक युग के उपरान्त मरता है। फिर उस समय एक ब्रह्माण्ड का विनाश हो जाता है (देखें प्रश्न 9 का उत्तर) फिर दूसरे ब्रह्माण्ड में सर्व जीवात्माएं चली जाती हैं। काल ब्रह्म की आत्मा भी चली जाती है। वहाँ इसको पुनः युवा शरीर प्राप्त होता है। इसी प्रकार देवी दुर्गा की मंत्यु होती है। फिर काल ब्रह्म के साथ ही इसको भी युवा शरीर प्राप्त होता है। यह परम अक्षर ब्रह्म (सत्य पुरूष) का विधान है। तो फिर उस नए ब्रह्माण्ड में दोनों पति-पत्नी रुप में नए रजगुण युक्त ब्रह्मा, सतगुण युक्त विष्णु तथा तमगुण युक्त शिव को उत्पन्न करते हैं। फिर उस ब्रह्माण्ड में संष्टि क्रम प्रारम्भ होता है। इस प्रकार इस काल ब्रह्म की मंत्यु तथा लीला से जन्म होता है। गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में भी स्पष्ट है जिसमें गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरे जन्म तर्था कर्म अलौकिक हैं। वास्तव में यह नाशवान है। आत्मा सर्व प्राणियों की भी अमर है। आप के महामण्डलेश्वरों आचार्यों तथा शंकराचार्यों को अध्यात्मिक ज्ञान बिल्कुल नहीं है। इसलिए अनमोल ग्रन्थों को ठीक से न समझकर लोकवेद (दन्तकथा) सुनाते हैं। आप देखें इस गीता अध्याय 4 श्लोक 5 में स्वयं कह रहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता। इसका अभिप्राय ऊपर स्पष्ट कर दिया है। सम्भवात् का अर्थ उत्पन्न होना है।

प्रमाण :- यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 में भी कहा है कि कोई तो परमात्मा को (सम्भवात्) जन्म लेने वाला राम व कंष्ण की तरह मानता है, कोई (असम्भवात्) उत्पन्न न होने वाला निराकार मानता है अर्थात् तत्वदर्शी सन्त जो सत्यज्ञान बताते हैं, उनसे सुनो। वे बताएंगे कि परमात्मा उत्पन्न होता है या नहीं। वास्तव में परमात्मा स्वयंभू है। वह कभी नहीं जन्मा है और न जन्मेगा। मंत्यु का तो प्रश्न ही नहीं। दूसरी ओर गीता ज्ञान दाता स्वयं कह रहा है कि मैं जन्मता और मरता हूँ, अविनाशी नहीं हूँ। अविनाशी तो ''परम अक्षर ब्रह्म'' है।

प्रश्न 50 :- (जिन्दा बाबा परमेश्वर जी का) : आप जी ने कहा है कि हम शुद्र को निकट भी नहीं बैठने देते, शुद्ध रहते हैं। इससे भक्ति में क्या हानि होती है?

उत्तर :- (धर्मदास जी का) :- शुद्र के छू लेने से भक्त अपवित्र हो जाता है, परमात्मा रुष्ट हो जाता है, आत्मग्लानि हो जाती है। मैं ऊँची जाति के वैश्य हूँ।

''कथनी और करनी में अंतर''

प्रश्न 51 (धर्मदास जी का) :- हे जिन्दा! यह तो सत्य ही है कि शुद्र से दूरी बनाए रखने से भक्त की पवित्रता बनी रहती है। क्या आप नहीं मानते?

उत्तर (बाबा जिन्दा का) :- यह शिक्षा किसने दी? धर्मदास जी ने कहा हमारे धर्मगुरु बताते हैं, आचार्य, शंकराचार्य तथा ब्राह्मण बताते हैं। परमेश्वर कबीर जी ने धर्मदास को बताया (उस समय तक धर्मदास जी को ज्ञान नहीं था कि आपसे वार्ता करने वाला ही कबीर जुलाहा है) कि कबीर जुलाहा एक बार स्वामी रामानन्द पंडित जी के साथ तोताद्रिक नामक स्थान पर सत्संग-भण्डारे में गया। वह स्वामी रामानन्द जी का शिष्य है। सत्संग में मुख्य पण्डित आचार्यों ने सत्संग में बताया कि भगवान राम ने शुद्र भीलनी के झूठे बेर खाए। भगवान तो समदर्शी थे। वे तो प्रेम से प्रसन्न होते हैं। भक्त को ऊँचे-नीचे का अन्तर नहीं देखना चाहिए, श्रद्धा देखी जाती है। लक्ष्मण ने सबरी को शुद्र जानकर ग्लानि करके बेर नहीं खाये, फैंक दिए, बाद में वे बेर संजीवन बूटी बने। रावण के साथ युद्ध में लक्ष्मण मुर्छित हो गया। तब हनुमान जी द्रोणागिरी पर्वत को उठाकर लाए जिस पर संजीवन बूटी उन झूठे बेरों से उगी थी। उस बूटी को खाने से लक्ष्मण सचेत हुआ, जीवन रक्षा हुई। शबरी की भगवान के प्रति ऐसी श्रद्धा थी।। किसी की श्रद्धा को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए। सत्संग के तुरन्त बाद लंगर (भोजन-भण्डारा) शुरु हुआ। पण्डितों ने पहले ही योजना बना रखी थी कि स्वामी रामानन्द ब्राह्मण के साथ शुद्र जुलाहा कबीर आया है। वह स्वामी रामानन्द का शिष्य है। रामानन्द जी के साथ खाना खाएगा। हम ब्राह्मणों का अपमान होगा। इसलिए दो स्थानों पर लंगर शुरु कर दिया। जो पण्डितों के लिए भण्डार था। उसमें खाना खाने के लिए एक शर्त रखी कि जो पण्डितों वाले भण्डारे में खाना खाएगा, उसको वेदों के चार मन्त्र सुनाने होंगे। जो मन्त्र नहीं सुना पाएगा, वह सामान्य भण्डारे में भोजन खाएगा। उनको पता था कि कबीर जुलाहा काशी वाला तो अशिक्षित है। उसको वेद मन्त्र कहाँ से याद हो सकते हैं? सब पण्डित जी चार-चार वेद मन्त्र सुना-सुनाकर पण्डितों वाले भोजन-भण्डारे में प्रवेश कर रहे थे। पंक्ति लगी थी। उसी पंक्ति में कबीर जुलाहा (धाणक) भी खड़ा था। वेद मन्त्र सुनाने की कबीर जी की बारी आई। थोड़ी दूरी पर एक भैंसा (झोटा) घास चर रहा था। कबीर जी ने भैंसे को पुकारा। कहा कि हे भैंस पंडित! कपया यहाँ आइएगा। भैंसा दौड़ा-दौड़ा आया। कबीर जी के पास आकर खड़ा हो गया। कबीर जी ने भैंसे की कमर पर हाथ रखा और कहा कि हे विद्वान भैंसे! वेद के चार मन्त्र सुना। भैंसे ने (1) यजुर्वेद अध्याय 5 का मन्त्र 32 सुनाया जिसका भावार्थ भी बताया कि जो परम शान्तिदायक (उसिग असि), जो पाप नाश कर सकता है (अंघारि), जो

बन्धनों का शत्रु अर्थात् बन्दी छोड़ है = बम्भारी, वह ''कविरसि'' कबीर है। स्वर्ज्योति = स्वयं प्रकाशित अर्थात् तेजोमय शरीर वाला ''ऋतधामा'' = सत्यलोक वाला अर्थात् वह सत्यलोक में निवास करता है। ''सम्राटसि'' = सब भगवानों का भी भगवान अर्थात् सर्व शक्तिमान सम्राट यानि महाराजा है।

(2) ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मन्त्र 26 सुनाया। जिसका भावार्थ है कि परमात्मा ऊपर के लोक से गति (प्रस्थान) करके आता है, नेक आत्माओं को मिलता है। भक्ति करने वालों के संकट समाप्त करता है। वह कर्विदेव (कबीर परमेश्वर) है।

(3) ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 17 सुनाया जिसका भावार्थ है कि (''कविः'' = कविर) कबीर परमात्मा स्वयं पंथ्वी पर प्रकट होकर तत्वज्ञान प्रचार करता है। कविर्वाणी (कबीर वाणी) कहलाती है। सत्य आध्यात्मिक ज्ञान (तत्वज्ञान) को कबीर परमात्मा लोकोक्तियों, दोहों, शब्दों, चौपाइयों व कविताओं के रुप में पदों में कबीर वाणी द्वारा बोलकर सुनाता है।

(4) ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मन्त्र 1 भी सुनाया। जिसका भावार्थ है कि परमात्मा कवियों की तरह आचरण करता हुआ पंथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान जाता है। भैंसा फिर बोलता है कि भोले पंडितो जो मेरे पास इस पंक्ति में जो मेरे ऊपर हाथ रखे खड़ा है, यह वही परमात्मा कबीर है जिसे लोग ''कवि'' कहकर पुकारते हैं। इन्हीं की कंपा से मैं आज मनुष्यों की तरह वेद मन्त्र सुना रहा हूँ।

कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि भैंसा पंडित आप पंडितो वाले लंगर में प्रवेश करके भोजन ग्रहण करें। मैं तो शुद्र हूँ, अशिक्षित हूँ। इसलिए आम जनता के लिए लगे लंगर मैं भोजन करने जाता हूँ।

उसी समय सर्व पंडित जो भैंसे को वेदमन्त्र बोलते देखकर एकत्रित हो गए थे। कबीर जी के चरणों में गिर गए तथा अपनी भूल की क्षमा याचना की। परमेश्वर कबीर जी ने कहा :-

करनी तज कथनी कथैं, अज्ञानी दिन रात ।
कुकर ज्यों भौंकत फिरें सुनी सुनाई बात ।।

सत्संग में तो कह रहे थे कि भगवान रामचन्द्र जी ने शुद्र जाति की शबरी (भीलनी) के झूठे बेर रुचि-रुचि खाए, कोई छुआछूत नहीं की और स्वयं को तुम परमात्मा से भी उत्तम मानते हो। कहते हो, करते नहीं। एक-दूसरे से सुनी-सुनाई बात कुत्ते की तरह भौंकते रहते हो। सर्व उपस्थित पंडितों सहित हजारों की सँख्या में कबीर जुलाहे के शिष्य बने, दीक्षा ली। शास्त्रविरुद्ध भक्ति त्यागकर, शास्त्रविधि अनुसार भक्ति शुरु की, आत्म कल्याण कराया।

हे धर्मदास! यही बात आप कह रहे हो कि हम शुद्र को पास भी नहीं बैठने

देते। धर्मदास बहुत शर्मसार हुआ। परन्तु परमात्मा की शिक्षा को अपने ऊपर व्यंग्य समझकर खीझ गया तथा कहा कि हे जिन्दा! आप की जली-भूनी बातें अच्छी नहीं लगती। आप को बोलने की सभ्यता नहीं है। कहते हो कि कुत्ते की तरह सुनी-सुनाई बातें तुम सब भौंकते फिरते हो। यह कहकर धर्मदास जी ने मुँह बना लिया। नाराजगी जाहिर की। परमात्मा जिन्दा रुप में अन्तर्ध्यान हो गए। चौथी बार अर्न्तधान हो गए तो धर्मदास का जीना मुश्किल हो गया। पछाड़ खा-खा कर रोने लगा। उस दिन फिर वंदावन में धर्मदास से परमात्मा की वार्ता हुई थी। (इस प्रकार परमेश्वर कबीर जी कुल मिलाकर छः बार अन्तर्ध्यान हुए, तब धर्मदास की अक्ल ठिकाने आई) वन्दावन मथुरा से चलकर धर्मदास रोता हुआ अपने गांव बांधवगढ़ की ओर वापिस चल पड़ा। धर्मदास जी ने छः महीनों का कार्यक्रम तीर्थों पर भ्रमण का बना रखा था। वह 15 दिन में ही वापिस घर आ गया। गरीब दास जी ने अपनी अमतवाणी में कहा है :-

तहां वहां रोवत है धर्मनी नागर, कहां गए मेरे सुख के सागर।
अति वियोग हुआ हम सेती, जैसे निर्धन की लुट जाय खेती।
हम तो जाने तुम देह स्वरुपा, हमरी बुद्धि अन्ध गहर कूपा।
कल्प करे और मन में रोवै, दशों दिशा कूं वो मघ जोहै।
बेग मिलो करहूं अपघाता, मैं ना जीवूं सुनो विधाता।

जब धर्मदास जी बाँधवगढ़ पहुँचा, उस समय बहुत रो रहा था। घर में प्रवेश करके मुँह के बल गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी पत्नी का नाम आमिनी देवी था। अपने पति को रोते देखकर तथा समय से पूर्व वापिस लौटा देखकर मन-मन में विचार किया कि लगता है भक्तजी को किसी ने लूट लिया है। धन न रहने के कारण वापिस लौट आया है। धर्मदास जी के पास बैठकर अपने हाथों आँसू पौंछती हुई बोली - क्यों कच्चा मन कर रहे हो। कोई बात नहीं, किसी ने आपकी यात्रा का धन लूट लिया। आपके पास धन की कमी थोड़े है और ले जाना। अपनी तीर्थ यात्रा पूरी करके आना। मैं मना थोड़े करुँगी। कुछ देर बाद दढ़ मन करके धर्मदास जी ने कहा कि आमिनी देवी यदि रुपये पैसे वाला धन लुट गया होता तो मैं और ले जाता। मेरा ऐसा धन लुट गया है जो शायद अब नहीं मिलेगा। वह मैंने अपने हाथों अपनी मूर्खता से गँवाया है। जिन्दा महात्मा से हुई सर्वज्ञान चर्चा तथा जिन्दा बाबा से सुनी सष्टि रचना आमिनी देवी को सुनाया। सर्वज्ञान प्रमाणों सहित देखकर आमिनी ने कहा कि सेठ जी आप तो निपुण व्यापारी थे, कभी घाटे का सौदा नहीं करते थे। इतना प्रमाणित ज्ञान फिर भी आप नहीं माने, साधु को तो नाराज होना ही था। कितनी बार आप को मिले-बच्चे की तरह समझाया, आपने उस दाता को क्यों ठुकराया? धर्मदास ने कहा आमिनी! जीवन में पहली बार हानि का सौदा किया है। यह हानि अब पूर्ति नहीं

हो पावेगी। वह धन नहीं मिला तो मैं जीवित नहीं रह पाऊँगा।

''धर्मदास जी को सतलोक में ले जाना''

छः महीने तक परमेश्वर जिन्दा नहीं आए। धर्मदास रो-रो अकुलाए, खाना नाममात्र रह गया। दिन में कई-कई बार घण्टों रोना। शरीर सूखकर काँटा हो गया। एक दिन धर्मदास जी से आमिनी देवी ने पूछा कि हे स्वामी! आपकी यह हालत मुझ से देखी नहीं जा रही है। आप विश्वास रखो, जब पहले कितनी बार आए हैं तो अबकी बार भी आऐंगे। धर्मदास ने कहा कि इतना समय पहले कभी नहीं लगाया। लगता है मुझ पापी से बहुत नाराज हो गए हैं, बात भी नाराजगी की है। मैं महामूर्ख हूँ आमिनी देवी! अब मुझे उनकी कीमत का पता चला है। भोले-भाले नजर आते हैं, वे परमात्मा के विशेष कंपा पात्र हैं। इतना ज्ञान देखा न सुना। आमिनी ने पूछा कि उन्होंने बताया हो कि वे कैसे-कैसे मिलते हैं, कहाँ-कहाँ जाते हैं? धर्मदास जी ने कहा कि वे कह रहे थे कि मैं वहाँ अवश्य जाता हूँ जहाँ पर धर्म-भण्डारे (लंगर) होते हैं। वहाँ लोगों को ज्ञान समझाता हूँ। आमिनी देवी ने कहा कि आप भण्डारा कर दो। हो सकता है कि जिन्दा बाबा आ जाए। धर्मदास जी बोले कि मैं तो तीन दिन का भण्डारा करुँगा। आमिनी देवी पहले तो कंजूसी करती थी। धर्मदास तीन दिन का भण्डारा कहता था तो वह एक दिन पर अड़ जाती थी। परन्तु उस दिन आमिनी ने तुरन्त हाँ कर दी कि कोई बात नहीं आप तीन दिन का भण्डारा करो। धर्मदास जी ने दूर-दूर तक तीन दिन के भोजन-भण्डारे का संदेश भिजवा दिया। साधुओं का निमन्त्रण भिजवा दिया। निश्चित दिन को भण्डारा प्रारम्भ हो गया। दो दिन बीत गए। साधु-महात्मा आए, ज्ञान चर्चा होती रही। परन्तु जो ज्ञान जिन्दा बाबा ने बताया था। उसका उत्तर किसी के पास नहीं पाया। धर्मदास जी जान-बूझकर साधुओं से प्रश्न करते थे कि क्या ब्रह्मा, विष्णु, शिव का भी जन्म होता है। उत्तर वही घिसा-पिटा मिलता कि इनके कोई माता-पिता नहीं हैं। इससे धर्मदास को स्पष्ट हो जाता कि वह जिन्दा महात्मा नहीं आया है। वेश बदलकर आता तो भी ज्ञान तो सही बताता। तीसरे दिन भी दो पहर तक में जिन्दा बाबा नहीं आए। धर्मदास जी ने दंढ़ निश्चय करके कहा कि यदि आज जिन्दा बाबा नहीं आए तो मैं आत्महत्या करुँगा, ऐसे जीवन से मरना भला। परमात्मा तो अन्तर्यामी हैं। जान गए कि आज भक्त पक्का मरेगा। उसी समय कुछ दूरी पर कंदब का पेड़ था। उसके नीचे उसी जिन्दा वाली वेशभूषा में बैठे धर्मदास को दिखाई दिए। धर्मदास दौड़कर गया, ध्यानपूर्वक देखा, जिन्दा महात्मा के गले से लग गया। अपनी गलती की क्षमा माँगी। कभी ऐसी गलती न करने का बार-बार वचन किया। तब परमात्मा धर्मदास के घर में गए। आमिनी तथा धर्मदास दोनों ने बहुत सेवा की, दोनों ने दीक्षा ली। परमात्मा

ने जिन्दा रुप में उनको प्रथम मन्त्र की दीक्षा दी। कुछ दिन परमेश्वर उनके बाग में रहे। फिर एक दिन धर्मदास ने ऐसी ही गलती कर दी, परमात्मा अचानक गायब हो गए। धर्मदास जी ने अपनी गलती को घना (बहुत) महसूस किया। खाना-पीना त्याग दिया, प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक दर्शन नहीं दोगे, पीना-खाना बन्द। धर्मदास शरीर से बहुत दुर्बल हो गए। उठा-बैठा भी नहीं जाता था। छठे दिन परमात्मा आए। धर्मदास को अपने हाथों उठाकर गले से लगाया। अपने हाथों खाना खिलाया। धर्मदास ने पहले चरण धोकर चरणामृत लिया। फिर ज्ञान चर्चा शुरु हुई। धर्मदास जी ने पूछा कि आप जी को इतना ज्ञान कैसे हुआ?

परमेश्वर जी ने कहा कि मुझे सतगुरु मिले हैं। वे काशी शहर में रहते हैं। उनका नाम कबीर है। वे तो स्वयं परमेश्वर हैं। सतगुरु का रुप बनाकर लीला कर रहे हैं, जुलाहे का कार्य करते हैं। उन्होंने मुझे सतलोक दिखाया, वह लोक सबसे न्यारा है। वहाँ जो सुख है, वह स्वर्ग में भी नहीं है। सदाबहार फलदार वृक्ष, सुन्दर बाग, दूध की नदियाँ बहती हैं। सुन्दर नर-नारी रहते हैं। वे कभी वृद्ध नहीं होते। कभी मृत्यु नहीं होती। जो सतगुरु से तत्वज्ञान सुनकर सत्यनाम की प्राप्ति करके भक्ति करता है, वह उस परमधाम को प्राप्त करता है। इसी का वर्णन गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में भी है। धर्मदास जी ने हठ करके कहा कि हे महाराज! मुझे वह अमर लोक दिखाने की कृपा करें ताकि मेरा विश्वास दृढ़ हो। परमेश्वर जी ने कहा कि आप भक्ति करो। जब शरीर त्यागकर जाएगा तो उस लोक को प्राप्त करेगा। धर्मदास जी के अधिक आग्रह करने पर परमेश्वर जिन्दा ने कहा कि चलो आपको सत्यलोक ले चलता हूँ। धर्मदास की आत्मा को निकालकर ऊपर सत्यलोक में ले गए। परमेश्वर के दरबार के द्वार पर एक सन्त्री खड़ा था। जिन्दा बाबा के रुप में खड़े परमेश्वर ने द्वारपाल से कहा कि धर्मदास को परमेश्वर के दर्शन कराकर लाओ। द्वारपाल ने एक अन्य हंस (सतलोक में भक्त को हंस कहते हैं) से कहा कि धर्मदास को परमेश्वर के सिंहासन के पास ले जाओ, सत्यपुरुष के दर्शन कराकर लाओ। वहाँ पर बहुत सारे हंस (भक्त) तथा हंसनी (नारी-भक्तमति) इकट्ठे होकर नाचते-गाते धर्मदास जी को सम्मान के साथ लेकर चले। सब हंसों तथा नारियों ने गले में सुन्दर मालाएं पहन रखी थी। उनके शरीर का प्रकाश 16 सूर्यों के समान था। जब धर्मदास जी ने तख्त (सिंहासन) पर बैठे सत्य पुरुष जी को देखा तो वही स्वरुप था जो धरती पर जिन्दा बाबा के रुप में था। परन्तु यहाँ पर परमेश्वर के एक रोम (शरीर के बाल) का प्रकाश करोड़ सूर्यों तथा करोड़ चन्द्रमा के प्रकाश से भी कहीं अधिक था। जिन्दा रूप में नीचे से गए परमात्मा तख्त पर विराजमान अपने ही दूसरे स्वरूप पर चँवर करने लगा। धर्मदास ने सोचा कि जिन्दा तो इस परमेश्वर का सेवक होगा। परन्तु सूरत मिलती-जुलती है। कुछ देर में तख्त पर बैठा परमात्मा खड़ा हुआ

तथा जिन्दा सिंहासन पर बैठ गया। तेजोमय शरीर वाले प्रभु जिन्दा के शरीर में समा गया। धर्मदास शर्म के मारे पानी-पानी हो गया। अपने आपको कोसने लगा कि मैं कैसा दुष्ट हूँ। मैंने परमेश्वर को कितना दुःखी किया, कितना अपमानित किया। मुझे वहाँ विश्वास नहीं हुआ। जब दर्शन कराकर सतलोक के भक्त वापिस लाए। तीन दिन तक परमात्मा के सत्यलोक में रहा। उधर से धर्मदास को तीन दिन से अचेत देखकर घर, गाँव तथा रिश्तेदार व मित्र बान्धवगढ़ में धर्मदास जी के घर पर इकट्ठे हो गए। कोई झाड़-फूँक करा रहा था। कोई वैध से उपचार करा रहा था, परन्तु सब उपाय व्यर्थ हो चुके थे। किसी को आशा नहीं रही थी कि धर्मदास जिन्दा हो जाएगा। तीसरे दिन परमात्मा ने उसकी आत्मा को शरीर में प्रवेश कर दिया। धर्मदास जी को उस बाग से उठाकर घर ले गए थे। जहाँ से परमात्मा उसको सत्यलोक लेकर गए थे। धर्मदास सचेत हो गया था। धर्मदास जी सचेत होते ही उस बाग में उसी स्थान पर गए तो वही परमात्मा जिन्दा बाबा के रुप में बैठे थे। धर्मदास जी चरणों में गिर गए और कहने लगे हे प्रभु! मुझ अज्ञानी को क्षमा करो प्रभु! :-

"अवगुण मेरे बाप जी, बख्सो गरीब निवाज"।
जो मैं पूत कुपुत हूँ, बहुर पिता को लाज"

मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि आप परमात्मा हैं, आप परम अक्षर ब्रह्म हैं। कभी-कभी आत्मा तो कहती थी कि पूर्ण ब्रह्म के बिना ऐसा ज्ञान पृथ्वी पर कौन सुना सकता है, परन्तु मन तुरन्त विपरीत विचार खड़े कर देता था। हे सत्य पुरुष! आपने अपने शरीर की वह शोभा जो सत्यलोक में है, यहाँ क्यों प्रकट नहीं कर रखी?

परमेश्वर जी ने कहा कि धर्मदास! यदि मैं उसी प्रकाशयुक्त शरीर से इस काल लोक में आ जाऊँ तो क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन भी इसी को कहते हैं) व्याकुल हो जाए। मैं अपना सर्व कार्य गुप्त करता हूँ। यह मुझे एक सिद्धी वाला सन्त मानता है। लेकिन इसको यह नहीं मालूम कि मैं कहाँ से आया हूँ? कौन हूँ? परमेश्वर ने धर्मदास से प्रश्न किया कि आपको कैसा लगा मेरा देश? धर्मदास बोले कि हे परमेश्वर इस संसार में अब मन नहीं लग रहा। उस पवित्र स्थान के सामने तो यह काल का सम्पूर्ण लोक (21 ब्रह्माण्डों का क्षेत्र) नरक के समान लग रहा है। जन्म-मरण यहाँ का अटल विधान है। चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के जीवन भोगना भी अनिवार्य है। प्रत्येक प्राणी इसी आशा को लेकर जीवित है कि अभी नहीं मरुंगा परन्तु फिर भी कभी भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे से कपट से बातें करता है। लेकिन आप के सत्यलोक में सब व्यक्ति प्यार से बातें करते हैं। निष्कपट व्यवहार करते हैं। मैंने तीनों दिन यही जाँच की थी। यदि धर्मदास जी अपने घर पर उपस्थित स्वजनों को न देखते जो उस के

अचेत होने के साक्षी थे तो समझते कि कोई स्वप्न देखा होगा। परन्तु अब दढ़ निश्चय हो गया था।

(उपरोक्त वर्णन पवित्र कबीर सागर अध्याय ''ज्ञान प्रकाश'' पष्ठ 57-58 पर, ''मोहम्मद बोध'' पष्ठ 20-21 पर, दश मुकामी रेखता ''ज्ञान स्थिति बोध'' पष्ठ 83 पर, ''अमर मूल'' पष्ठ 202 पर।)

''क्या गुरू बदल सकते हैं?''

धर्मदास ने प्रश्न किया :-

प्रश्न 52 (धर्मदास जी का) :- हे प्रभु क्या गुरु बदल सकते हैं? सुना है सन्तों से कि गुरु नहीं बदलना चाहिए। गुरु एक, ज्ञान अनेक।

उत्तर (सत्यपुरुष का) :- जब तक गुरु मिले नहीं साचा, तब तक गुरु करो दस पाँचा।

कबीर झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न लागै वार। द्वार न पावै मोक्ष का, रह वार का वार।।

भावार्थ : जब तक सच्चा गुरु (सतगुरु) न मिले, तब तक गुरु बदलते रहना चाहिए। चाहे कितने ही गुरु क्यों न बनाने पड़ें और बदलने पड़ें। झूठे गुरु को तुरन्त त्याग देना।

कबीर, डूबै थे पर उभरे, गुरु के ज्ञान चमक। बेड़ा देखा जरजरा, उतर चले फड़क।।

भावार्थ : जिस समय मुझे सत्य गुरु मिले, उनके ज्ञान के प्रकाश से पता चला कि हमारा ज्ञान और समाधान (साधना) गलत है तो ऐसे गुरु बदल दिया जैसे किसी डर से पशु फड़क कर बहुत तेज दौड़ता है और जैसे रात्रि में सफर कर रहे यात्रियों को सुबह प्रकाश में पता चले कि जिस नौका में हम सवार हैं, उसमें पानी प्रवेश कर रहा है और साथ में सुरक्षित और साबुत नौका खड़ी है तो समझदार यात्री जिसने कोई नशा न कर रखा हो, वह तुरंत फूटी नौका को त्यागकर साबुत (Leak Proof) नौका में बैठ जाता है। मैंने जब काशी में कबीर जी सच्चे गुरु का यह ज्ञान सुना जो आपको सुनाया है तो जाति, धर्म को नहीं देखा। उसी समय सत्यगुरु की शरण में चला गया और दीक्षा मन्त्र लेकर भक्ति कर रहा हूँ। सतगुरु ने मुझे दीक्षा देने का आदेश दे रखा है। हे धर्मदास! विचार कीजिए यदि एक वैध से रोगी स्वस्थ नहीं होता तो क्या अन्य डॉक्टर के पास नहीं जाता?

धर्मदास ने कहा कि जाता है, जाना भी चाहिए, जीवन रक्षा करनी चाहिए। परमेश्वर ने कहा कि इसी प्रकार मनुष्य जन्म जीव कल्याण के लिए मिलता है। जीव को जन्म-मरण का दीर्घ रोग लगा है। यह सत्यनाम तथा सारनाम बिना समाप्त नहीं हो सकता। दोनों मंत्र काशी में सतगुरु कबीर रहते हैं, उनसे मिलते हैं, पथ्वी पर और किसी के पास नहीं हैं। आप काशी में जाकर दीक्षा लेना,

आपका कल्याण हो जाएगा क्योंकि सत्यगुरु के बिना मेरा वह सत्यलोक प्राप्त नहीं हो सकता।

धर्मदास जी ने कहा कि आप स्वयं सत्य पुरूष हैं। अब मैं धोखा नहीं खा सकता। आप अपने को छुपाए हुए हैं। हे प्रभु! मैंने गुरु रुपदास जी से दीक्षा ले रखी है। मैं पहले उनसे गुरु बदलने की आज्ञा लूँगा, यदि वे कहेंगे तो मैं गुरु बदलूंगा परन्तु धर्मदास की मूर्खता की हद देखकर परमेश्वर छठी बार अन्तर्ध्यान हो गए। धर्मदास जी फिर व्याकुल हो गए। पहले रुपदास जी के पास गए जो श्री कृष्ण अर्थात् श्री विष्णु जी के पुजारी थे। जो वैष्णव पंथ से जुड़े थे।

धर्मदास जी ने सन्त रुपदास जी से सर्व घटना बताई तथा गुरु बदलने की आज्ञा चाही। सन्त रुपदास जी अच्छी आत्मा के इन्सान थे। उन्होंने कहा बेटा धर्मदास! जो ज्ञान आपने सुना है जिस जिन्दा बाबा से, यह ज्ञान भगवान ही बता सकता है। मेरी तो आयु अधिक हो गई है। मैं तो इस मार्ग को त्याग नहीं सकता। आप की इच्छा है तो आप उस महात्मा से दीक्षा ले सकते हो।

तब धर्मदास जी काशी में गए, वहाँ पर कबीर जुलाहे की झोंपड़ी का पता किया। वहाँ कपड़ा बुनने का कार्य करते कबीर परमेश्वर को देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। खुशी भी अपार हुई कि सतगुरु तथा परमेश्वर यही है। तब उनसे दीक्षा ली और अपना कल्याण कराया। कबीर परमेश्वर जी ने धर्मदास जी को फिर दो अक्षर (जिस में एक ओम् ऊँ मन्त्र है तथा दूसरा तत् जो सांकेतिक है) का सत्यनाम दिया। फिर सारनाम देकर सतलोक का वासी किया।

❖ <u>कलयुग में परमात्मा अन्य निम्न अच्छी आत्माओं (दृढ़ भक्तों) को मिलेः-</u>

2. संत मलूक दास (अरोड़ा) जी को मिले।

3. संत दादू दास जी (आमेर, राजस्थान वाले) को मिले।

4. संत नानक देव जी को सुल्तानपुर शहर के पास बह रही बेई नदी पर मिले जहाँ गुरु द्वारा ''सच्चखण्ड साहेब'' यादगार रूप में बना है।

5. संत गरीब दास जी गाँव छुड़ानी जिला झज्जर (हरियाणा) वाले को मिले, उस स्थान पर वर्तमान में यादगार बनी हुई है।

संत गरीब दास जी 10 वर्ष के बच्चे थे। अपने ही खेतों में अन्य कई ग्वालों के संग गऊएं चराने जाया करते थे, परमेश्वर जिन्दा बाबा के रूप में सत्यलोक (सच्चखण्ड) से चलकर आए। यह लोक सर्व भवनों के ऊपर ही जहाँ परमात्मा रहते हैं, सन्त गरीब दास जी की आत्मा को ऊपर अपने लोक में परमेश्वर लेकर गए। बच्चे को मृत जानकर शाम को चिता पर रखकर अंतिम संस्कार करने वाले थे। तत्काल परमात्मा ने सन्त गरीबदास जी की आत्मा को ऊपर ब्रह्माण्डों का भ्रमण कराकर सत्य ज्ञान बताकर शरीर में प्रवेश कर दिया, बालक जीवित हो गया। यह घटना फाल्गुन शुद्धि द्वादशी संवत 1784 सन् 1727 की है। संत गरीब

दास जी को परमात्मा ने तत्वज्ञान प्रदान किया। उनका ज्ञान योग खोल दिया। जिस कारण से संत गरीब दास जी ने 24 हजार वाणी बोली जो संत गोपाल दास जी द्वारा लिखी गई। उन अमृतवाणियों को छपवाकर ग्रन्थ रूप दे दिया है। यह दास (संत रामपाल दास) उसी से सत्संग किया करता है।

संत गरीब दास जी ने अमृत वाणी में कहा है :-

गरीब, हम सुलतानी नानक तारे, दादू को उपदेश दिया।
जाति जुलाहा भेद ना पाया, काशी मांहे कबीर हुआ।।
गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का, एक रति नहीं भार।
सतगुरू पुरूष कबीर हैं, कुल के सिरजनहार।।

भावार्थ :- संत गरीब दास जी ने परमात्मा से प्राप्त दिव्य दृष्टि से देखकर भूत-भविष्य का ज्ञान कहा है, बताया है कि जो काशी नगर (उत्तर प्रदेश) में जुलाहा कबीर जी थे। वे सर्व ब्रह्माण्डों के सृजनहार हैं। सर्व ब्रह्माण्डों को अपनी शक्ति से ठहराया है। परमेश्वर कबीर जी पर उनका कोई भार नहीं है। जैसे वैज्ञानिकों ने हवाई जहाज, रॉकेट बनाकर उड़ा दिये, स्वयं भी बैठ कर यात्रा करते हैं, इस प्रकार संत गरीब दास जी ने परमेश्वर जी को आँखों देखकर उनकी महिमा बताई है।

6. संत घीसा दास जी गाँव-खेखड़ा जिला बागपत (उत्तर प्रदेश) को मिले थे।

पुस्तक विस्तार को मध्यनजर रखते हुए अधिक विस्तार नहीं कर रहा हूँ, अधिक जानकारी के लिए www.jagatgururampalji.org से खोलकर अधिक ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं।

(देखें फोटोकापी वेदमन्त्रों की)

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 86 मन्त्र 26-27)

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥

पदार्थः—(**यज्यवे**) यज्ञ करने वाले यजमानों के लिये परमात्मा (**विश्वानि सुपथानि**) सब रास्तों को (**कृण्वन्**) सुगम करता हुआ (**मृधः**) उनके विघ्नों को (**अतिगाहते**) मर्द्दन करता है। और (**पुनानः**) उनको पवित्र करता हुआ और (**निर्निजं**) अपने रूप को (**गाः कृण्वानः**) सरल करता हुआ (**हर्य्यतः**) वह कान्तिमय परमात्मा (**कविः**) सर्वज्ञ (**अत्यो न**) विद्युत् के समान (**क्रीळन्**) क्रीड़ा करता हुआ (**वारं**)वरणीय पुरुष को (**पर्य्यर्षति**) प्राप्त होता है ॥२६॥

विवेचन :- यह फोटोकापी ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मन्त्र 26 की है जो आर्यसमाज के आचार्यों व महर्षि दयानन्द के चेलों द्वारा अनुवादित है जिसमें स्पष्ट

है कि यज्ञ करने वाले अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान करने वाले यजमानों अर्थात् भक्तों के लिए परमात्मा, सब रास्तों को सुगम करता हुआ अर्थात् जीवन रूपी सफर के मार्ग को दुःखों रहित करके सुगम बनाता हुआ। उनके विघ्नों अर्थात् संकटों का मर्दन करता है अर्थात् समाप्त करता है। भक्तों को पवित्र अर्थात् पाप रहित, विकार रहित करता है। जैसा की अगले मन्त्र 27 में कहा है कि ''जो परमात्मा द्यूलोक अर्थात् सत्यलोक के तीसरे पंष्ठ पर विराजमान है, वहाँ पर परमात्मा के शरीर का प्रकाश बहुत अधिक है।'' उदाहरण के लिए परमात्मा के एक रोम (शरीर के बाल) का प्रकाश करोड़ सूर्य तथा इतने ही चन्द्रमाओं के मिले-जुले प्रकाश से भी अधिक है। यदि वह परमात्मा उसी प्रकाश युक्त शरीर से पंथ्वी पर प्रकट हो जाए तो हमारी चर्म दंष्टि उन्हें देख नहीं सकती। जैसे उल्लु पक्षी दिन में सूर्य के प्रकाश के कारण कुछ भी नहीं देख पाता है। यही दशा मनुष्यों की हो जाए। इसलिए वह परमात्मा अपने रूप अर्थात् शरीर के प्रकाश को सरल करता हुआ उस स्थान से जहाँ परमात्मा ऊपर रहता है, वहाँ से गति करके बिजली के समान क्रीड़ा अर्थात् लीला करता हुआ चलकर आता है, श्रेष्ठ पुरूषों को मिलता है। यह भी स्पष्ट है कि आप कविः अर्थात् कविर्देव हैं। हम उन्हें कबीर साहेब कहते हैं।

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥

पदार्थः—(**उदन्युवः**) प्रेम की (**ताः**) वे (**शतधाराः**) सैंकड़ों धाराए (**असश्चतः**) जो नानारूपों में (**अभिश्रियः**) स्थिति को लाभ कर रही हैं । वे (**हरिं**) परमात्मा को (**अवनवन्ते**) प्राप्त होती हैं । (**गोभिरावृतं**) प्रकाशपुञ्ज परमात्मा को (**क्षिपः**) बुद्धिवृत्तियां (**मृजन्ति**) विषय करती हैं । जो परमात्मा (**दिवस्तृतीये पृष्ठे**) द्युलोक के तीसरे पृष्ठ पर विराजमान है और (**रोचने**) प्रकाशस्वरूप है उसको बुद्धिवृत्तियाँ प्रकाशित करती हैं ॥२७॥

विवेचन :- यह फोटोकापी ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 के मन्त्र 27 की है। इसमें स्पष्ट है कि ''परमात्मा द्यूलोक अर्थात् अमर लोक के तीसरे पंष्ठ अर्थात् भाग पर विराजमान है। सत्यलोक अर्थात् शाश्वत् स्थान के तीन भाग हैं। एक भाग में वन-पहाड़-झरने, बाग-बगीचे आदि हैं। यह बाह्य भाग है अर्थात् बाहरी भाग है। (जैसे भारत की राजधानी दिल्ली भी तीन भागों में बँटी है। बाहरी दिल्ली जिसमें गाँव खेत-खलिहान और नहरें हैं, दूसरा बाजार बना है। तीसरा संसद भवन तथा कार्यालय हैं।)

इसके पश्चात् द्यूलोक में बस्तियाँ हैं। सपरिवार मोक्ष प्राप्त हंसात्माऐं रहती हैं। (पंथ्वी पर जैसे भक्त को भक्तात्मा कहते हैं, इसी प्रकार सत्यलोक में हंसात्मा कहलाते हैं।) (3) तीसरे भाग में सर्वोपरि परमात्मा का सिंहासन है। उसके

आस-पास केवल नर आत्माऐं रहती हैं, वहाँ स्त्री-पुरूष का जोड़ा नहीं है। वे यदि अपना परिवार चाहते हैं तो शब्द (वचन) से केवल पुत्र उत्पन्न कर लेते हैं। इस प्रकार शाश्वत् स्थान अर्थात् सत्यलोक तीन भागों में परमात्मा ने बाँट रखा है। वहाँ यानि सत्यलोक में प्रत्येक स्थान पर रहने वालों में वद्धावस्था नहीं है, वहाँ मत्यु नहीं है। इसीलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में कहा है कि जो जरा अर्थात् वद्ध अवस्था तथा मरण अर्थात् मत्यु से छूटने का प्रयत्न करते हैं, वे तत् ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को जानते हैं। सत्यलोक में सत्यपुरूष रहता है, वहाँ पर जरा-मरण नहीं है, बच्चे युवा होकर सदा युवा रहते हैं।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 82 मन्त्र 1-2)

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) जो सर्वोत्पादक प्रभु (अरुषः) प्रकाशस्वरूप (वृषा) सद्गुणों की वृष्टि करने वाला (हरिः) पापों के हरण करने वाला है, वह (राजेव) राजा के समान (दस्मः) दर्शनीय है। और वह (गाः) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के चारों ओर (अभि अचिक्रदत्) शब्दायमान हो रहा है। वह (वारं) वरणीय पुरुष को जो (अव्ययं) दृढ़भक्त है उसको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (पर्य्येति) प्राप्त होता है। (न) जिस प्रकार (श्येनः) विद्युत् (घृतवन्तं) स्नेहवाले (आसदं) स्थानों को (योनिं) आधार बनाकर प्राप्त होता है। इसी प्रकार उक्त गुण वाले परमात्मा ने (असावि) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया ॥१॥

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (वेधस्या) उपदेश करने की इच्छा से आप (माहिनं) महापुरुषों को (पर्येषि) प्राप्त होते हो। और आप (अत्यः) अत्यन्त गतिशील पदार्थ के (न) समान (अभिवाजं) हमारे आध्यात्मिक यज्ञ को (अभ्यर्षसि) प्राप्त होते हैं। आप (कविः) सर्वज्ञ हैं (मृष्टः) शुद्ध स्वरूप हैं (दुरिता) हमारे पापों को (अपसेधन्) दूर करके (सोम) हे सोम! (मृळय) आप हमको सुख दें। और (घृतं वसानः) प्रेम-भाव को उत्पन्न करते हुए (निर्निजं) पवित्रता को (परियासि) उत्पन्न करें ॥२॥

विवेचन :- ऊपर ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 82 मन्त्र 1-2 की फोटोकापी हैं, यह अनुवाद महर्षि दयानन्द जी के दिशा-निर्देश से उन्हीं के चेलों ने किया है और

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली से प्रकाशित है।

इनमें स्पष्ट है कि :- मन्त्र 1 में कहा है ''सर्व की उत्पत्ति करने वाला परमात्मा तेजोमय शरीर युक्त है, पापों को नाश करने वाला और सुखों की वर्षा करने वाला अर्थात् सुखों की झड़ी लगाने वाला है, वह ऊपर सत्यलोक में सिंहासन पर बैठा है जो देखने में राजा के समान है।

यही प्रमाण सूक्ष्मवेद में है कि :-

अर्श कुर्श पर सफेद गुमट है, जहाँ परमेश्वर का डेरा।
श्वेत छत्र सिर मुकुट विराजे, देखत न उस चेहरे नूं।।

यही प्रमाण बाईबल ग्रन्थ तथा कुर्आन् शरीफ में है कि परमात्मा ने छः दिन में सृष्टि रची और सातवें दिन ऊपर आकाश में तख्त अर्थात् सिंहासन पर जा विराजा। (बाईबल के उत्पत्ति ग्रन्थ 2/26-30 तथा कुर्आन् शरीफ की सुर्त ''फुर्कानि 25 आयत 52 से 59 में है।)

वह परमात्मा अपने अमर धाम से चलकर पृथ्वी पर शब्द वाणी से ज्ञान सुनाता है। वह वर्णीय अर्थात् आदरणीय श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त होता है, उनको मिलता है। {जैसे 1. सन्त धर्मदास जी बांधवगढ(मध्य प्रदेश वाले को मिले) 2. सन्त मलूक दास जी को मिले, 3. सन्त दादू दास जी को आमेर (राजस्थान) में मिले 4. सन्त नानक देव जी को मिले 5. सन्त गरीब दास जी गाँव छुड़ानी जिला झज्जर हरियाणा वाले को मिले 6. सन्त घीसा दास जी गाँव खेखड़ा जिला बागपत (उत्तर प्रदेश) वाले को मिले 7. सन्त जम्भेश्वर जी (बिश्नोई धर्म के प्रवर्तक) को गाँव समराथल राजस्थान वाले को मिले}

वह परमात्मा अच्छी आत्माओं को मिलते हैं। जो परमात्मा के दृढ़ भक्त होते हैं, उन पर परमात्मा का विशेष आकर्षण होता है। उदाहरण भी बताया है कि जैसे विद्युत अर्थात् आकाशीय बिजली स्नेह वाले स्थानों को आधार बनाकर गिरती है। जैसे कांसी धातु पर बिजली गिरती है, पहले कांसी धातु के कटोरे, गिलास-थाली, बेले आदि-आदि होते थे। वर्षा के समय तुरन्त उठाकर घर के अन्दर रखा करते थे। वृद्ध कहते थे कि कांसी के बर्तन पर बिजली अमूमन गिरती है, इसी प्रकार परमात्मा अपने प्रिय भक्तों पर आकर्षित होकर मिलते हैं।

मन्त्र नं. 2 में तो यह भी स्पष्ट किया है कि परमात्मा उन अच्छी आत्माओं को उपदेश करने की इच्छा से स्वयं महापुरूषों को मिलते हैं। उपदेश का भावार्थ है कि परमात्मा तत्वज्ञान बताकर उनको दीक्षा भी देते हैं। उनके सतगुरू भी स्वयं परमात्मा होते हैं। यह भी स्पष्ट किया है कि परमात्मा अत्यन्त गतिशील पदार्थ अर्थात् बिजली के समान तीव्रगामी होकर हमारे धार्मिक अनुष्ठानों में आप पहुँचते हैं। आप जी ने पीछे पढ़ा कि सन्त धर्मदास को परमात्मा ने यही कहा था कि मैं वहाँ पर अवश्य जाता हूँ जहाँ धार्मिक अनुष्ठान होते हैं क्योंकि मेरी अनुस्थिति में काल कुछ भी उपद्रव कर देता है। जिससे साधनों की आस्था परमात्मा से छूट जाती है। मेरे रहते वह ऐसी गड़बड़ नहीं कर सकता। इसीलिए गीता अध्याय 3

श्लोक 15 में कहा है कि वह अविनाशी परमात्मा जिसने ब्रह्म को भी उत्पन्न किया, सदा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों में उसी को इष्ट रूप में मानकर आरती स्तुति करनी चाहिए।

इस ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 82 मन्त्र 2 में यह भी स्पष्ट किया है कि आप (कविर्वेधस्य) कविर्देव है जो सर्व को उपदेश देने की इच्छा से आते हो, आप पवित्र परमात्मा हैं। हमारे पापों को छुड़वाकर अर्थात् नाश करके हे अमर परमात्मा! आप हम को सुःख दें और (द्युतम् वसानः निर्निजम् परियसि) हम आप की सन्तान हैं। हमारे प्रति वह वात्सल्य वाला प्रेम भाव उत्पन्न करते हुए उसी (निर्निजम्) सुन्दर रूप को (परियासि) उत्पन्न करें अर्थात् हमारे को अपने बच्चे जानकर जैसे पहले और जब चाहें तब आप अपनी प्यारी आत्माओं को प्रकट होकर मिलते हैं, उसी तरह हमें भी दर्शन दें।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 96 मन्त्र 16 से 20)

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ।।१६।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गुह्यम्) सर्वोपरि रहस्य (चारु) श्रेष्ठ (नाम) जो तुम्हारी संज्ञा है । (अभ्यर्ष) उसका ज्ञान करायें । आप (सोतृभिः, पूयमानः) उपासक लोगों से स्तूयमान हैं । (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्ति से युक्त हैं और (सप्तिरिव) विद्युत् के समान (श्रवस्याभि) ऐश्वर्य के सम्मुख प्राप्त कराइये और (वायुमभि) हमको प्राणों की विद्या का वेत्ता बनाइये । (देव) हे सर्वशक्ति-सम्पन्न परमेश्वर ! हमको (गाः) इन्द्रियों के (अभिगमय) नियमन का ज्ञाता बनाइये ।।१६।।

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ।।१७।।

पदार्थः—(शिशुम्) "श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले जगदिति शिशुः परमात्मा" उस परमात्मा को (जज्ञानम्) जो सदा प्रकट है, (हर्यतः) जो अत्यन्त कमनीय है, उसको उपासक लोग (मृजन्ति) बुद्धिविषय करते हैं और (शुंभन्ति) उसकी स्तुति द्वारा उसके गुणों का वर्णन करते हैं और (मरुतः) विद्वान् लोग (वह्निम्) उस गतिशील परमात्मा का (गणेन) गुणों के गणों द्वारा वर्णन करते हैं और (कविः) कवि लोग (गीर्भिः) वाणो द्वारा और (काव्येन) कवित्व से उसकी स्तुति करते हैं । (सोमः) सोमस्वरूप (पवित्रम्) पवित्र वह परमात्मा कारणावस्था में अतिसूक्ष्म प्रकृति को (रेभन्, सन्) गर्जता हुआ (अत्येति) अतिक्रमण करता है ।।१७।।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 के मंत्र 16 में कहा है कि हे परमात्मन्! आप अपने श्रेष्ठ गुप्त नाम का ज्ञान कराऐं। उस नाम को मंत्र 17 में बताया है कि वह कविः

यानि कविर्देव है।

मंत्र 17 की केवल हिन्दी :- (शिशुम् जज्ञानम् हर्यन्तम्) परमेश्वर जान-बूझकर तत्वज्ञान बताने के उद्देश्य से शिशु रूप में प्रकट होता है, उनके ज्ञान को सुनकर (मरूतो गणेन) भक्तों का बहुत बड़ा समूह उस परमात्मा का अनुयाई बन जाता है। (मृजन्ति शुम्यन्ति वहिन्)

वह ज्ञान बुद्धिजीवी लोगों को समझ आता है, वे उस परमेश्वर की स्तुति भक्ति तत्वज्ञान के आधार से करते हैं, वह भक्ति (वहिन्) शीघ्र लाभ देने वाली होती है। वह परमात्मा अपने तत्वज्ञान को (काव्येना) कवित्व से अर्थात् कवियों की तरह दोहों, शब्दों, लोकोक्तियों, चौपाईयों द्वारा (कविर् गीर्भिः) कविर् वाणी द्वारा अर्थात् कबीर वाणी द्वारा (पवित्रम् अतिरेभन्) शुद्ध ज्ञान को उच्चे स्वर में गर्ज-गर्जकर बोलते हैं। वह (कविः) कवि की तरह आचरण करने वाला कविर्देव (सन्त्) सन्त रूप में प्रकट (सोम) अमर परमात्मा होता है। (ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 17) विशेष :- इस मन्त्र के मूल पाठ में दो बार ''कविः'' शब्द है, आर्य समाज के अनुवादकर्ताओं ने एक (कविः) का अर्थ ही नहीं किया है।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ।।१८।।

पदार्थः—(सोमः) सोमस्वरूप परमात्मा (सिसासन्) पालन की इच्छा करता हुआ (महिषः) जो महान् है वह परमात्मा (तृतीयं, धाम) देवयान और पितृयान इन दोनों से पृथक तीसरा जो मुक्तिधाम है । उसमें (विराजम्) विराजमान जो ज्ञानयोगी है उसको (अनुराजति) प्रकाश करने वाला है और (स्तुप्) स्तूयमान है । (कवीनाम्, पदवीः) जो क्रान्तदर्शियों की पदवी अर्थात् मुख्य स्थान है और (सहस्रनीथः) अनन्त प्रकार से स्तवनीय है, (ऋषिमनाः) सर्वज्ञान के साधनरूप मनवाला वह परमात्मा (यः) जो (ऋषिकृत) सब ज्ञानों का प्रदाता (स्वर्षाः) सूर्यादिकों को प्रकाशक है । वह जिज्ञासु के लिए उपासनीय है ।।१८।।

विवेचन :- यह ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 18 की फोटोकापी है जिसका अनुवाद महर्षि दयानन्द जी के अनुयाईयों ने किया है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा अनुवादित है। इस पर विवेचन करते हैं। इसके अनुवाद में भी बहुत-सी गलतियाँ हैं जो आर्यसमाज के आचार्यों ने की है। हम संस्कृत भी समझ सकते हैं, विवेचन करता हूँ तथा यथार्थ अनुवाद व भावार्थ स्पष्ट करता हूँ। मन्त्र 17 में कहा है कि ऋषि या सन्त रूप में प्रकट होकर परमात्मा अमृतवाणी अपने मुख कमल से बोलता है और उस ज्ञान को समझकर अनेकों अनुयाईयों का समूह बन जाता है। (य) जो वाणी परमात्मा तत्वज्ञान की सुनाता है, वे (ऋषिकृत्) ऋषि रूप में प्रकट परमात्मा कृत (सहंस्रणीयः) हजारों वाणियाँ अर्थात् कबीर

वाणियाँ (ऋषिमना) ऋषि स्वभाव वाले भक्तों के लिए (स्वर्षाः) आनन्ददायक होती हैं। (कविनाम पदवीः) कवित्व से दोहों, चौपाईयों में वाणी बोलने के कारण वह परमात्मा प्रसिद्ध कवियों में से एक कवि की भी पदवी प्राप्त करता है। वह (सोम) अमर परमात्मा (सिषासन्) सर्व की पालन की इच्छा करता हुआ प्रथम स्थिति में (महिषः) बड़ी पृथ्वी अर्थात् ऊपर के लोकों में (तृतीयम् धाम) तीसरे धाम अर्थात् सत्यलोक के तीसरे पृष्ठ पर (अनुराजति) तेजोमय शरीर युक्त (स्तुप) गुम्बज में (विराजम्) विराजमान है, वहाँ बैठा है। यही प्रमाण ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3 में है कि परमात्मा सर्व लोकों के ऊपर के लोक में विराजमान है, (तिष्ठन्ति) बैठा है।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९।

पदार्थः—(**अपामूर्मिम्**) प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों के साथ (**सचमानः**) जो संगत है और (**समुद्रम्**) "सम्यक् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः" जिससे सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। वह (**तुरीयम्**) चौथा (**धाम**) परमपद परमात्मा है। उसको (**महिषः**) मह्यते इति महिषः महिष इति महन्नामसु पठितम् नि० ३—१३। महापुरुष उक्त तुरीय परमात्मा का (**विवक्ति**) वर्णन करता है। वह परमात्मा (**चमूसत्**) जो प्रत्येक बल में स्थित है (**श्येनः**) सर्वोपरि प्रशंसनीय है और (**शकुनः**) सर्वशक्तिमान् है। (**गोविन्दुः**) यजमानों को तृप्त करके जो (**द्रप्सः**) शीघ्रगति वाला है (**आयुधानि, बिभ्रत्**) अनन्त शक्तियों को धारण करता हुआ इस सम्पूर्ण संसार का उत्पादक है ॥१९॥

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 19 का भी आर्य समाज के विद्वानों ने अनुवाद किया है। इसमें भी बहुत सारी गलतियाँ है। पुस्तक विस्तार के कारण केवल अपने मतलब की जानकारी प्राप्त करते हैं।

इस मन्त्र में चौथे धाम का वर्णन है जो आप जी सृष्टि रचना में पढ़ेंगे, उससे पूर्ण जानकारी होगी पढ़ें इसी पुस्तक के पृष्ठ 120 पर।

परमात्मा ने ऊपर के चार लोक अजर-अमर रचे हैं। 1. अनामी लोक जो सबसे ऊपर है। 2. अगम लोक 3. अलख लोक 4. सत्यलोक।

हम पृथ्वी लोक पर हैं, यहाँ से ऊपर के लोकों की गिनती करेंगे तो 1. सत्यलोक 2. अलख लोक 3. अगम लोक तथा 4. अनामी लोक गिना जाता है। उस चौथे धाम में बैठकर परमात्मा ने सर्व ब्रह्माण्डों व लोकों की रचना की। शेष रचना सत्यलोक में बैठकर की थी। आर्य समाज के अनुवादकों ने तुरिया परमात्मा अर्थात् चौथे परमात्मा का वर्णन किया है। यह चौथा धाम है। उसमें मूल पाठ मन्त्र 19 का भावार्थ है कि तत्वदर्शी सन्त चौथे धाम तथा चौथे परमात्मा का (विवक्ति)

भिन्न-भिन्न वर्णन करता है। पाठक जन कृपया पढ़ें सृष्टि रचना इसी पुस्तक के पृष्ठ 120 पर जिससे आप जी को ज्ञान होगा कि लेखक (संत रामपाल दास) ही वह तत्वदर्शी संत है जो तत्वज्ञान से परिचित है।

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम्।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥

पदार्थः—वह परमात्मा (यूथा, वृषेव) जिस प्रकार एक संघ को उसका सेनापति प्राप्त होता है, इसी प्रकार (कोशम्) इस ब्रह्माण्डरूपी कोश को (अर्षन्) प्राप्त होकर (कनिक्रदत्) उच्च स्वर से गर्जता हुआ (चम्वोः) इस ब्रह्माण्ड रूपी विस्तृत प्रकृति-खण्ड में (पर्याविवेश) भली-भांति प्रविष्ट होता है और (न) जैसे कि (मर्यः) मनुष्य (शुभ्रस्तन्वं, मृजानः) शुभ्र शरीर को धारण करता हुआ (अत्योन) अत्यन्त गतिशील पदार्थों के समान (सनये) प्राप्ति के लिए (सृत्वा) गतिशील होता हुआ (धनानाम्) धनों के लिए कटिबद्ध होता है; इसी प्रकार प्रकृति-रूपी ऐश्वर्य को धारण करने के लिए परमात्मा सदैव उद्यत है ॥२०॥

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 20 का यथार्थ ज्ञान जानते हैं:-

इस मन्त्र का अनुवाद महर्षि दयानन्द के चेलों द्वारा किया गया है, इनका दृष्टिकोण यह रहा है कि परमात्मा निराकार है क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने यह बात दृढ़ की है कि परमात्मा निराकार है। इसलिए अनुवादक ने सीधे मन्त्र का अनुवाद घुमा-फिराकर किया है। जैसे मूल पाठ में लिखा है:-

मर्य न शुभ्रः तन्वा मृजानः अत्यः न सृत्वा सनये धनानाम्।
वृषेव यूथा परि कोशम अर्षन् कनिक्रदत् चम्वोः आविवेश।।

अनुवाद :- जैसे (मर्यः न) मनुष्य सुन्दर वस्त्र धारण करता है, ऐसे परमात्मा मनुष्य के समान (शुभ्रः तन्व) सुन्दर शरीर (मृजानः) धारण करके (अत्यः) अत्यन्त गति से चलता हुआ (सनये धनानाम्) भक्ति धन के धनियों अर्थात् पुण्यात्माओं को (सनये) प्राप्ति के लिए आता है। (यूथा वृषेव) जैसे एक समुदाय को उसका सेनापति प्राप्त होता है, ऐसे वह परमात्मा संत व ऋषि रूप में प्रकट होता है तो उसके बहुत सँख्या में अनुयाई बन जाते हैं और परमात्मा उनका गुरू रूप में मुखिया होता है। वह परमात्मा (परि कोशम्) प्रथम ब्रह्माण्ड में (अर्षन्) प्राप्त होकर अर्थात् आकर (कनिक्रदत्) ऊँचे स्वर में सत्यज्ञान उच्चारण करता हुआ (चम्वोः) पृथ्वी खण्ड में (अविवेश) प्रविष्ट होता है।

भावार्थ :- जैसे पूर्व में वेद मन्त्रों में कहा है कि परमात्मा ऊपर के लोक में रहता है, वहाँ से गति करके अपने रूप को अर्थात् शरीर के तेज को सरल करके पृथ्वी पर आता है। इस ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 20 में उसी की पुष्टि की है। कहा है कि जैसे मनुष्य वस्त्र धारण करता है, ऐसे अन्य शरीर धारण करके परमात्मा मानव रूप में पृथ्वी पर आता है और (धनानाम्) दृढ़ भक्तों

(अच्छी पुण्यात्माओं) को प्राप्त होता है, उनको वाणी उच्चारण करके तत्वज्ञान सुनाता है।

विवेचन :- ये ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 16 से 20 की फोटोकापियाँ हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज प्रवर्तक के दिशा-निर्देश से उनके आर्यसमाजी चेलों ने किया है। यह अनुवाद कुछ-कुछ ठीक है, अधिक गलत है। पहले अधिक ठीक या कुछ-कुछ गलत था जो मेरे द्वारा शुद्ध करके विवेचन में लिख दिया है। अब अधिक गलत को शुद्ध करके लिखता हूँ।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 16 में कहा है कि :-

हे परमात्मा! आपका जो गुप्त वास्तविक (चारू) श्रेष्ठ (नाम) नाम है, उसका ज्ञान कराऐं। प्रिय पाठको! जैसे भारत के राजा को प्रधानमन्त्री कहते हैं, यह उनकी पदवी का प्रतीक है। उनका वास्तविक नाम कोई अन्य ही होता है। जैसे पहले प्रधानमन्त्री जी पंडित जवाहर लाल नेहरू जी थे। ''जवाहरलाल'' उनका वास्तविक नाम है। इस मंत्र 16 में कहा है कि हे परमात्मा! आपका जो वास्तविक नाम है वह (सोतमिः) उपासना करने का (स्व आयुधः) स्वचालित शस्त्र के समान (पूयमानः) अज्ञान रूपी गन्द को नाश करके पापनाशक है। आप अपने उस सत्य मन्त्र का हमें ज्ञान कराऐं। (देव सोम) हे अमर परमेश्वर! आपका वह मन्त्र श्वांसों द्वारा नाक आदि (गाः) इन्द्रियों से (वासुम् अभि) श्वांस-उश्वांस से जपने से (सप्तिरिव = सप्तिः इव) विद्युत् जैसी गति से अर्थात् शीघ्रता से (अभिवाजं) भक्ति धन से परिपूर्ण करके (श्रवस्यामी) ऐश्वर्य को तथा मोक्ष को प्राप्त कराईये।

प्रिय पाठकों से निवेदन है कि इस ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 16 के अनुवाद में बहुत-सी गलतियाँ थी जो शुद्ध कर दी हैं। प्रमाण के लिए मूल पाठ मे ''अभिवाजं'' शब्द है इसका अनुवाद नहीं किया गया है। इसके स्थान पर ''अभिगमय'' शब्द का अर्थ जोड़ा है जो मूल पाठ में नहीं है।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 17 के अनुवाद में भी बहुत गलतियाँ हैं जो आर्यसमाजियों द्वारा अनुवादित है। अब शुद्ध करके लिखता हूँ:-

जैसा कि पूर्वोक्त ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 तथा 82 के मन्त्रों में प्रमाण है कि परमात्मा अपने शाश्वत् स्थान से जो द्यूलोक के तीसरे स्थान पर विराजमान है, वहाँ से चलकर पथ्वी पर जान-बूझकर किसी खास उद्देश्य से प्रकट होता है। परमात्मा सर्व ब्रह्माण्डों में बसे प्राणियों की परवरिश तीन स्थिति में करते हैं। 1. परमात्मा ऊपर सत्यलोक अर्थात् अविनाशी धाम में सिंहासन (तख्त) पर बैठकर सर्व ब्रह्माण्डों का संचालन करते हैं। 2. जब चाहें साधु सन्त के रूप में अपने शरीर का तेज सरल करके अच्छी आत्माओं को मिलते हैं। 3. प्रत्येक युग में किसी जलाशय में खिले कमल के फूल पर नवजात शिशु का रूप बनाकर प्रकट

होते हैं, वहाँ से निःसन्तान दम्पति अपने घर ले जाते हैं। बचपन से ही वह परमात्मा अपना वास्तविक भक्ति ज्ञान जिसे तत्वज्ञान भी कहते हैं, चौपाइयों, दोहों, साखियों व कविताओं के रूप में सुनाते हैं। जैसे सन् 1398 वि.सं. 1455 में परमात्मा अपने निज स्थान से चलकर भारत वर्ष के काशी शहर के बाहर लहरतारा नामक जलाशय में कमल के फूल पर शिशु रूप धारकर प्रकट हुए थे। वहाँ से नीरू-नीमा जुलाहा दम्पति अपने घर ले गए थे। धीरे-धीरे परमात्मा बड़े हुए। कबीर वाणी बोलकर ज्ञान सुनाया था। प्रमाण ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 1 मन्त्र 9 में है जो आर्य समाज के आचार्यों द्वारा अनुवादित है। उसमें भी कुछ गलती है, अधिक नहीं। कृप्या पढ़ें यह ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 1 मन्त्र 9 की फोटोकापी:-

अभी३॒ममघ्न्या॑ उ॒त श्री॒णन्ति॑ धे॒नवः॒ शिशु॑म् ।
सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥९॥

पदार्थः—(इमं) उस (सोमं) सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को (शिशुं) कुमारावस्था में ही (अभि) सब प्रकार से (अघ्न्याः) अहिंसनीय (धेनवः) गौवें (श्रीणन्ति) तृप्त करती हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य की (पातवे) वृद्धि के लिये। (उत) अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियें ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये संस्कृत करती हैं ॥९॥

विवेचन :- यह फोटो कापी ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 1 मन्त्र 9 की है इसमें स्पष्ट है कि (सोम) अमर परमात्मा जब शिशु रूप में प्रकट होता है तो उसकी परवरिश की लीला कुंवारी गायों (अभि अध्न्या धेनुवः) द्वारा होती है। यही प्रमाण कबीर सागर के अध्याय ''ज्ञान प्रकाश'' में है कि जिस परमेश्वर कबीर जी को नीरू-नीमा अपने घर ले गए। तब शिशु रूपधारी परमात्मा ने न अन्न खाया, न दूध पीया। फिर स्वामी रामानन्द जी के बताने पर एक कुंवारी गाय अर्थात् एक बछिया नीरू लाया, उसने तत्काल दूध दिया। उस कुंवारी गाय के दूध से परमेश्वर की परवरिश की लीला हुई थी। कबीर सागर लगभग 600 (छः सौ) वर्ष पहले का लिखा हुआ है।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 1 मन्त्र 9 के अनुवाद में कुछ गलती की है। जैसे (अभिअध्न्या) का अर्थ अहिंसनीय कर दिया जो गलत है। हरियाणा प्रान्त के जिला रोहतक में गाँव धनाना में लेखक का जन्म हुआ जो वर्तमान में जिला सोनीपत में है। इस क्षेत्र में जिस गाय ने गर्भ धारण न किया हो तो कहते हैं कि यह धनाई नहीं है, यह बिना धनाई है। यह अपभ्रंस शब्द है। एक गाय के लिए ''अध्नि'' शब्द है। बहुवचन के लिए ''अध्न्या'' शब्द है। ''अध्न्या'' का अर्थ है बिना धनाई गौवें तथा अभिध्न्या का अर्थ है पूर्ण रूप से बिना धनायी अर्थात् कुंवारी गायें

अर्थात् बछियाँ।

अब ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 17 का शुद्ध अनुवाद करता हूँ:-

केवल हिन्दी :- (शिशुम् जज्ञानम् हर्यन्तम्) परमेश्वर जान-बूझकर तत्वज्ञान बताने के उद्देश्य से शिशु रूप में प्रकट होता है, उनके ज्ञान को सुनकर (मरूतो गणेन) भक्तों का बहुत बड़ा समूह उस परमात्मा का अनुयाई बन जाता है। (मंजन्ति शुम्यन्ति वहिन्)

वह ज्ञान बुद्धिजीवी लोगों को समझ आता है। वे उस परमेश्वर की स्तुति-भक्ति तत्वज्ञान के आधार से करते हैं, वह भक्ति (वहिन्) शीघ्र लाभ देने वाली होती है। वे परमात्मा अपने तत्वज्ञान को (काव्येना) कवित्व से अर्थात् कवियों की तरह दोहों, शब्दों, लोकोक्तियों, चौपाईयों द्वारा (कविर् गीर्भिः) कविर् वाणी द्वारा अर्थात् कबीर वाणी द्वारा (पवित्रम् अतिरेभन्) शुद्ध ज्ञान को ऊँचे स्वर में गर्ज-गर्जकर बोलते हैं। वह (कविः) कवि की तरह आचरण करने वाला कविर्देव (सन्त्) सन्त रूप में प्रकट (सोम) अमर परमात्मा होता है। (ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 17)

विशेष :- इस मन्त्र के मूल पाठ में दो बार ''कविः'' शब्द है, आर्य समाज के अनुवादकर्ताओं ने एक (कविः) का अर्थ ही नहीं किया है।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 18 पर विवेचन करते हैं। इसके अनुवाद में भी बहुत-सी गलतियाँ है। हम संस्कृत भी समझ सकते हैं। विवेचन करता हूँ तथा यथार्थ अनुवाद व भावार्थ स्पष्ट करता हूँ। मन्त्र 17 में कहा कि ऋषि या सन्त रूप में प्रकट होकर परमात्मा अमृतवाणी अपने मुख कमल से बोलता है और उस ज्ञान को समझकर अनेकों अनुयाईयों का समूह बन जाता है। (य) जो वाणी परमात्मा तत्वज्ञान की सुनाता है। वे (ऋषिकृत्) ऋषि रूप में प्रकट परमात्मा कृत (सहंस्रणीथः) हजारों वाणियाँ अर्थात् कबीर वाणियाँ (ऋषिमना) ऋषि स्वभाव वाले भक्तों के लिए (स्वर्षाः) आनन्ददायक होती हैं। (कविनाम पदवीः) कवित्व से दोहों, चौपाईयों में वाणी बोलने के कारण वह परमात्मा कवियों में से एक प्रसिद्ध कवि की पदवी भी प्राप्त करता है। वह (सोम) अमर परमात्मा (सिषासन्) सर्व की पालन की इच्छा करता हुआ प्रथम स्थिति में (महिषः) बड़ी पृथ्वी अर्थात् ऊपर के लोकों में (तृतीयम् धाम) तीसरे धाम अर्थात् सत्यलोक के तीसरे पृष्ठ पर (अनुराजति) तेजोमय शरीर युक्त (स्तुप) गुम्बज में (विराजम्) विराजमान है, वहाँ बैठा है। यही प्रमाण ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3 में है कि परमात्मा सर्व लोकों के ऊपर के लोक में विराजमान है, (तिष्ठन्ति) बैठा है।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 19 का भी आर्यसमाज के विद्वानों ने अनुवाद किया है। इसमें भी बहुत सारी गलतियाँ हैं। पुस्तक विस्तार के कारण केवल अपने मतलब की जानकारी प्राप्त करते हैं।

इस मन्त्र में चौथे धाम का वर्णन है। आप जी संष्टि रचना में पढ़ेंगे, उससे पूर्ण जानकारी होगी। पढ़ें इसी पुस्तक के पंष्ठ 120 पर।

परमात्मा ने ऊपर के चार लोक अजर-अमर रचे हैं। 1. अनामी लोक जो सबसे ऊपर है 2. अगम लोक 3. अलख लोक 4. सत्य लोक।

हम पंथ्वी लोक पर हैं, यहाँ से ऊपर के लोकों की गिनती करेंगे तो 1. सत्यलोक 2. अलख लोक 3. अगम लोक तथा चौथा अनामी लोक उस चौथे धाम में बैठकर परमात्मा ने सर्व ब्रह्माण्डों व लोकों की रचना की। शेष रचना सत्यलोक में बैठकर की थी। आर्यसमाज के अनुवादकों ने तुरिया परमात्मा अर्थात् चौथे परमात्मा का वर्णन किया है। यह चौथा धाम है। उसमें मूल पाठ मन्त्र 19 का भावार्थ है कि तत्वदर्शी सन्त चौथे धाम तथा चौथे परमात्मा का (विवक्ति) भिन्न-भिन्न वर्णन करता है। पाठकजन कंपया पढ़ें संष्टि रचना इसी पुस्तक के पंष्ठ 120 पर जिससे आप जी को ज्ञान होगा कि लेखक (संत रामपाल दास) ही वह तत्वदर्शी संत है जो तत्वज्ञान से परिचित है।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 20 का यथार्थ जानते हैं:-

इस मन्त्र का अनुवाद महर्षि दयानन्द के चेलों द्वारा किया गया है। इनका दंष्टिकोण यह रहा है कि परमात्मा निराकार है क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने यह बात दंढ़ की है कि परमात्मा निराकार है। इसलिए अनुवादक ने सीधे मन्त्र का अनुवाद घुमा-फिराकर किया है। जैसे मंत्र 20 के मूल पाठ में लिखा है:-

मर्य न शभ्रः तन्वा मंजानः अत्यः न संत्वा सनये धनानाम्।
वंर्षेव यूथा परि कोशम अर्षन् कनिक्रदत् चम्वोः आविवेश।।

अनुवाद :- (मर्यः) मनुष्य (न) जैसे सुन्दर वस्त्र धारण करता है, ऐसे परमात्मा (शुभ्रः तन्व) सुन्दर शरीर (मंजानः) धारण करके (अत्यः) अत्यन्त गति से (संत्वा) चलता हुआ (धनानाम्) भक्ति धन के धनियों अर्थात् पुण्यात्माओं को (सनये) प्राप्ति के लिए आता है (यूथा वंषेव) जैसे एक समुदाय को उसका सनापति प्राप्त होता है। ऐसे वह परमात्मा संत व ऋषि रूप में प्रकट होता है तो उसके बहुत सँख्या में अनुयाई बन जाते हैं और परमात्मा उनका गुरू रूप में मुखिया होता है। वह परमात्मा (परि कोशम्) प्रथम ब्रह्माण्ड में (अर्षन्) प्राप्त होकर अर्थात् आकर (कनिक्रदत्) ऊँचे स्वर में सत्यज्ञान उच्चारण करता हुआ (चम्वौ) पंथ्वी खण्ड में (अविवेश) प्रविष्ट होता है।

भावार्थ :- जैसे पूर्व में वेद मन्त्रों में कहा है कि परमात्मा ऊपर के लोक में रहता है, वहाँ से गति करके पंथ्वी पर आता है, अपने रूप को अर्थात् शरीर के तेज को सरल करके आता है। इस ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 20 में उसी की पुष्टि की है। कहा है कि परमात्मा ऐसे अन्य शरीर धारण करके पंथ्वी पर आता है। जैसे मनुष्य वस्त्र धारण करता है और (धनानाम्) दंढ़ भक्तों (अच्छी

पुण्यात्माओं) को प्राप्त होता है, उनको वाणी उच्चारण करके तत्वज्ञान सुनाता है।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 95 मन्त्र 2)

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ।।२।।

पदार्थः—(हरिः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (सृजानः) साक्षात्कार को प्राप्त हुआ (ऋतस्य पथ्यां) वाक् द्वारा मुक्ति मार्ग की (इर्यात) प्रेरणा करता है। (अरितेव नावम्) जैसा कि नौका के पार लगाने के समय में नाविक प्रेरणा करता है और (देवानां देवः) सब देवों का देव (गुह्यानि) गुप्त (नामाविष्कृणोति) संज्ञाओं को प्रकट करता है (बर्हिषि प्रवाचे) वाणीरूप यज्ञ के लिए ।।२।।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 95 मन्त्र 2 का अनुवाद महर्षि दयानन्द के चेलों ने किया है जो बहुत ठीक किया है।

इसका भावार्थ है कि पूर्वोक्त परमात्मा अर्थात् जिस परमात्मा के विषय में पहले वाले मन्त्रों में ऊपर कहा गया है, वह (सजानः) अपना शरीर धारण करके (ऋतस्य पथ्यां) सत्यभक्ति का मार्ग अर्थात् यथार्थ आध्यात्मिक ज्ञान अपनी अमतमयी वाक् अर्थात् वाणी द्वारा मुक्ति मार्ग की प्रेरणा करता है।

वह मन्त्र ऐसा है जैसे (अरितेव नावम्) नाविक नौका में बैठाकर पार कर देता है, ऐसे ही परमात्मा सत्यभक्ति मार्ग रूपी नौका के द्वारा साधक को संसार रूपी दरिया के पार करता है। वह (देवानाम् देवः) सब देवों का देव अर्थात् सब प्रभुओं का प्रभु परमेश्वर (बर्हिषि प्रवाचे) वाणी रूपी ज्ञान यज्ञ के लिए (गुह्यानि) गुप्त (नामा आविष्कणोति) नामों का अविष्कार करता है अर्थात् जैसे गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''ऊँ तत् सत्'' में तत् तथा सत् ये गुप्त मन्त्र हैं जो उसी परमेश्वर ने मुझे (संत रामपाल दास) को बताऐ हैं। उनसे ही पूर्ण मोक्ष सम्भव है।

सूक्ष्म वेद में परमेश्वर ने कहा है कि :-

''सोहं'' शब्द हम जग में लाए, सारशब्द हम गुप्त छिपाए।

भावार्थ :- परमेश्वर ने स्वयं ''सोहं'' शब्द भक्ति के लिए बताया है। यह सोहं मन्त्र किसी भी प्राचीन ग्रन्थ (वेद, गीता, कुर्आन, पुराण तथा बाईबल) में नहीं है। फिर सूक्ष्म वेद में कहा है कि :-

सोहं ऊपर और है, सत्य सुकत एक नाम।
सब हंसो का जहाँ बास है, बस्ती है बिन ठाम।।

भावार्थ :- ''सोहं'' नाम तो परमात्मा ने प्रकट कर दिया, आविष्कार कर दिया परन्तु सार शब्द को गुप्त रखा था। अब मुझे (लेखक संत रामपाल को) बताया है जो साधकों को दीक्षा के समय बताया जाता है। इसका गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में कहे ''ऊँ तत् सत्'' से सम्बन्ध है।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 94 मन्त्र 1)

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ।।१।।

पदार्थः—(सूर्य्ये) सूर्य के विषय में (न) जैसे (विशः) रश्मियां प्रकाशित करती हैं । उसी प्रकार (धियः) मनुष्यों की बुद्धियां (स्पर्धन्ते) अपनी-अपनी उत्कट शक्ति से विषय करती हैं । (अस्मिन् अधि) जिस परमात्मा में (वाजिनीव) सर्वोपरि बलों के समान (शुभः) शुभ बल है वह परमात्मा (अपोवृणानः) कर्मों का अध्यक्ष होता हुआ (पवते) सबको पवित्र करता हैं । (कवीयन्) कवियों की तरह आचरण करता हुआ (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्व पद के लिए (व्रजं, न) इन्द्रियों के अधिकरण मन के समान 'व्रजन्ति इन्द्रियाणि यस्मिन् तद्व्रजम्' (मन्म) जो अधिकरणरूप है वही श्रेय का धाम है ।।१।।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मन्त्र 1 का अनुवाद भी आर्यसमाज के विद्वानों द्वारा किया गया है।

विवेचन :- पुस्तक विस्तार को ध्यान में रखते हुए उन्हीं के अनुवाद से अपना मत सिद्ध करते हैं। जैसे पूर्व में लिखे वेदमन्त्रों में बताया गया है कि परमात्मा अपने मुख कमल से वाणी उच्चारण करके तत्वज्ञान बोलता है, लोकोक्तियों के माध्यम से, कवित्व से दोहों, शब्दों, साखियों, चौपाईयों के द्वारा वाणी बोलने से प्रसिद्ध कवियों में से भी एक कवि की उपाधि प्राप्त करता है। उसका नाम कविर्देव अर्थात् कबीर साहेब है।

इस ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मन्त्र 1 में भी यही स्पष्ट है कि जो सर्वशक्तिमान परमेश्वर है, वह (कवियन् व्रजम् न) कवियों की तरह आचरण करता हुआ पृथ्वी पर विचरण करता है।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 20 मन्त्र 1)

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ।।१।।

पदार्थः—वह परमात्मा (कविः) मेधावी है और (अव्यः) सबका रक्षक है (देववीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (अर्षति) ज्ञान देता है (साह्वान्) सहनशील है (विश्वाः, स्पृधः) सम्पूर्ण दुष्टों को संग्रामों में (अभि) तिरस्कृत करता है ।।१।।

विवेचन :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 20 मन्त्र 1 का अनुवाद भी आर्यसमाज के विद्वानों ने किया है। इसका अनुवाद ठीक कम गलत अधिक है। इसमें मूल पाठ में लिखा है:-

'प्र कविर्देव वीतये अव्यः वारेभिः अर्षति साह्वान् बिश्वाः अभि स्पंर्धः

सरलार्थ :- (प्र) वेद ज्ञान दाता से जो दूसरा (कविर्देव) कविर्देव कबीर परमेश्वर है, वह विद्वानों अर्थात् जिज्ञासुओं को, (वीतये) ज्ञान धन की तंप्ति के लिए (वारेभिः) श्रेष्ठ आत्माओं को (अर्षति) ज्ञान देता है। वह (अव्यः) अविनाशी है, रक्षक है, (साह्वान्) सहनशील (विश्वाः) तत्वज्ञान हीन सर्व दुष्टों को (स्पंधः) अध्यात्म ज्ञान की कंपा स्पर्धा अर्थात् ज्ञान गोष्ठी रूपी वाक् युद्ध में (अभि) पूर्ण रूप से तिरस्कंत करता है, उनको फिट्टे मुँह कर देता है।

विशेष :- (क) इस मन्त्र के अनुवाद में आप फोटोकापी में देखेंगे तो पता चलेगा कि कई शब्दों के अर्थ आर्य विद्वानों ने छोड़ रखे हैं जैसे = ''प्र'' ''वारेभिः'' जिस कारण से वेदों का यथार्थ भाव सामने नहीं आ सका।

(ख) मेरे अनुवाद से स्पष्ट है कि वह परमात्मा अच्छी आत्माओं (दंढ़ भक्तों) को ज्ञान देता है, उसका नाम भी लिखा है :- ''कविर्देव''। हम कबीर परमेश्वर कहते हैं।

(प्रमाण ऋग्वेद मण्डल नं. 9 सुक्त 54 मन्त्र 3)

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थः—(सूर्यः, न) सूर्य के समान जगत्प्रेरक (अयम्) यह परमात्मा (सोमः, देवः) सौम्य स्वभाव वाला और जगत्प्रकाशक है और (विश्वानि, पुनानः) सब लोकों को पवित्र करता हुआ (भुवनोपरि, तिष्ठति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के ऊर्ध्व भाग में भी वर्तमान है ॥३॥

विवेचनः- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3 की फोटोकापी में आप देखें, इसका अनुवाद आर्यसमाज के विद्वानों ने किया है। उनके अनुवाद में भी स्पष्ट है कि वह परमात्मा (भूवनोपरि) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर (तिष्ठति) विराजमान है, ऊपर बैठा हैः-

इसका यथार्थ अनुवाद इस प्रकार है :-

(अयं) यह (सोमः देव) अमर परमेश्वर (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (विश्वानि) सर्व को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (भूवनोपरि) सर्व ब्रह्माण्डों के ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर (तिष्ठति) बैठा है।

भावार्थ :- जैसे सूर्य ऊपर है और अपना प्रकाश तथा उष्णता से सर्व को लाभ दे रहा है। इसी प्रकार यह अमर परमेश्वर जिसका ऊपर के मन्त्रों में वर्णन किया है। सर्व ब्रह्माण्डों के ऊपर बैठकर अपनी निराकार शक्ति से सर्व प्राणियों को लाभ दे रहा है तथा सर्व ब्रह्माण्डों का संचालन कर रहा है।

तर्क :- महर्षि दयानन्द का अर्थात् आर्यसमाजियों का मत है कि परमात्मा

किसी एक स्थान पर किसी लोक विशेष में नहीं रहता।

प्रमाण :- सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास (Chapter) नं. 7 पृष्ठ 148 पर (आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट 427 गली मन्दिर वाली नया बांस दिल्ली-78वां संस्करण)

किसी ने प्रश्न किया:- ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तर (महर्षि दयानन्द जी का) :- व्यापक है क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्व अन्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का सृष्टा, सब का धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का होना असम्भव है। (सत्यार्थ प्रकाश से लेख समाप्त)

महर्षि दयानन्द जी नहीं मानते थे कि परमात्मा किसी देश अर्थात् स्थान विशेष पर रहता है। महर्षि दयानन्द जी वेद ज्ञान को सत्य ज्ञान मानते थे।

आप जी ने अनेकों वेदमन्त्रों में अपनी आँखों पढ़ा कि परमेश्वर ऊपर एक स्थान पर रहता है। वहाँ से गति करके यहाँ भी प्रकट होता है। महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाजी परमात्मा को निराकार मानते हैं।

प्रमाण :- सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास नं. 9 पृष्ठ 176, समुल्लास 7 पृष्ठ 149 समुल्लास 11 पृष्ठ 251 पर कहा है कि परमात्मा निराकार है।

प्रिय पाठकों ने अनेकों वेदमंत्रों में पढ़ा कि परमात्मा साकार है, वह मनुष्य जैसा है। ऊपर के लोक में रहता है, वहाँ से गति करके चलकर आता है, पृथ्वी पर प्रकट होता है। अच्छी आत्माओं को जो दृढ़ भक्त होते हैं, उनको मिलता है। उनको तत्वज्ञान अपने मुख कमल से बोलकर सुनाता है, कवियों की तरह आचरण करता है। पृथ्वी पर विचरण करके परमात्मा अपना अध्यात्म ज्ञान ऊँचे स्वर में उच्चारण करके सुनाता है।

गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में भी यही प्रमाण है।

प्रिय पाठको! आप स्वंय निर्णय करें किसको कितना अध्यात्म ज्ञान था। विशेष आश्चर्य यह है कि वेद मन्त्रों का अनुवाद भी महर्षि दयानन्द जी तथा उनके चेलों आर्यसमाजियों ने किया हुआ है। जिसमें उनके मत का विरोध है।

निवेदन :- वेद मन्त्रों की फोटोकापियाँ लगाने का उद्देश्य यह है कि यदि मैं (लेखक) अनुवाद करके पुस्तक में लगाता तो अन्य व्यक्ति यह कह देते कि संत रामपाल को संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है। इसलिए इनके अनुवाद पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अब यह शंका उत्पन्न नहीं हो सकती। अब तो यह दृढ़ता आएगी कि संत रामपाल दास ने जो वेद मन्त्रों का अनुवाद किया है, वह यथार्थ है।

अब विश्व की उत्पत्ति का ज्ञान कराता हूँ जो स्वयं परमेश्वर ने अपने द्वारा रचे जगत का ज्ञान बताया है।

''संक्षिप्त सृष्टि रचना''

सबसे पहले सतपुरुष अकेले थे, कोई रचना नहीं थी। सर्वप्रथम परमेश्वर जी ने चार अविनाशी लोक की रचना वचन (शब्द) से की।

1. अनामी लोक जिसको अकह लोक भी कहते हैं।

2. अगम लोक 3. अलख लोक 4. सतलोक।

फिर परमात्मा ने चारों लोकों में चार रुप धारण किए। चार उपमात्मक नामों से प्रत्येक लोक में प्रसिद्ध हुए।

1. अनामी लोक में अनामी पुरुष या अकह पुरुष।

2. अगम लोक में अगम पुरुष।

3. अलख लोक में अलख पुरुष।

4. सतलोक में सतपुरुष उपमात्मक नाम रखे।

फिर चारों लोकों में परमात्मा ने वचन से ही एक-एक सिंहासन (तख्त) बनाया। प्रत्येक सिंहासन पर सम्राट के समान मुकुट आदि धारण करके विराजमान हो गए। फिर सतलोक में परमेश्वर ने अन्य रचना की। एक शब्द (वचन) से 16 द्वीपों तथा एक मानसरोवर की रचना की। पुनः 16 वचन से 16 पुत्रों की उत्पत्ति की। उनमें मुख्य भूमिका अचिन्त, तेज, सहजदास, जोगजीत, कूर्म, इच्छा, धैर्य और ज्ञानी की रही है।

अपने पुत्रों को सबक सिखाने के लिए कि समर्थ के बिना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता। जिसका काम उसी को साजे और करे तो मूर्ख बाजे।

सतपुरुष ने अपने पुत्र अचिन्त से कहा कि आप अन्य रचना सतलोक में करें। मैंने कुछ शक्ति तेरे को प्रदान कर दी है। अचिन्त ने अपने वचन से अक्षर पुरुष की उत्पत्ति की। अक्षर पुरुष युवा उत्पन्न हुआ। मानसरोवर में स्नान करने गया, उसी जल पर तैरने लगा। कुछ देर में निंद्रा आ गई। सरोवर में गहरा नीचे चला गया। (सतलोक में अमर शरीर है, वहाँ पर शरीर श्वांसों पर निर्भर नहीं है।) बहुत समय तक अक्षर पुरूष जल से बाहर नहीं आया। अचिन्त आगे सृष्टि नहीं कर सका, तब सतपुरुष (परम अक्षर पुरुष) ने मानसरोवर पर जाकर कुछ जल अपनी चुल्लु (हाथ) में लिया। उसका एक विशाल अण्डा वचन से बनाया तथा एक आत्मा वचन से उत्पन्न करके अण्डे में प्रवेश की और अण्डे को जल में छोड़ दिया। जल में अण्डा नीचे जाने लगा तो उसकी गड़गड़ाहट के शोर से अक्षर पुरूष की निंद्रा भंग हो गई। अक्षर पुरुष ने क्रोध से देखा कि किसने मुझे जगा दिया। क्रोध उस अण्डे पर गिरा तो अण्डा फूट गया। उसमें एक युवा तेजोमय व्यक्ति निकला। उसका नाम क्षर पुरुष रखा। (आगे चलकर यही काल कहलाया) सतपुरुष ने दोनों से कहा कि आप जल से बाहर आओ। अक्षर पुरुष

तुम निंद्रा में थे, तेरे को नींद से उठाने के लिए यह सब किया है। अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष से सतपुरुष ने कहा कि आप दोनों अचिंत के लोक में रहो।

कुछ समय के पश्चात् (क्षर पुरुष जिसे ज्योति निरंजन काल भी कहते हैं) ने मन में विचार किया कि हम तीन तो एक लोक में रह रहे हैं। मेरे अन्य भाई एक-एक द्वीप में रह रहे हैं। यह विचार कर उसने अलग द्वीप प्राप्त करने के लिए तप प्रारम्भ किया। इससे पहले सतपुरुष जी ने अपने पुत्र अचिन्त से कहा कि आप सृष्टि रचना नहीं कर सकते। मैंने तुम्हें यह शिक्षा देने के लिए ही आप से कहा कि अन्य रचना कर। परन्तु अचिन्त आप तो अक्षर पुरुष को भी नहीं उठा सके। अब आगे कोई भी यह कोशिश न करना। सर्व रचना मैं अपनी शब्द शक्ति से रचूँगा।

सतपुरुष जी ने सतलोक में असँख्यों लोक रचे तथा प्रत्येक में अपने वचन (शब्द) से अन्य आत्माओं की उत्पत्ति की। ये सब लोक सतपुरुष के सिंहासन के इर्द-गिर्द थे। इनमें केवल नर हंस (सतलोक में मनुष्यों को हंस कहते हैं) ही रहते हैं और उनको परमेश्वर ने शक्ति दे रखी है कि वे अपना परिवार (नर हंस) वचन से उत्पन्न कर सकते है। वे केवल दो पुत्र ही उत्पन्न कर सकते हैं।

क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) ने तप करना शुरु किया। उसने 70 युग तक तप किया। सत्पुरुष जी ने क्षर पुरुष से पूछा कि आप तप किसलिए कर रहे हो? क्षर पुरुष ने कहा कि यह स्थान मेरे लिए कम है। मुझे अलग स्थान चाहिए। परमेश्वर (सतपुरुष) जी ने उसे 70 युग के तप के प्रतिफल में 21 ब्रह्माण्ड दे दिए जो सतलोक के बाहरी क्षेत्र में थे जैसे 21 प्लॉट मिल गए हों। ज्योति निरंजन (क्षर पुरुष) ने विचार किया कि इन ब्रह्माण्डों में कुछ रचना भी होनी चहिए। उसके लिए, फिर 70 युग तक तप किया। फिर सतपुरुष जी ने पूछा कि अब क्या चाहता है? क्षर पुरुष ने कहा कि सृष्टि रचना की सामग्री देने की कृपा करें। सतपुरुष जी ने उसको पाँच तत्व (जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु तथा आकाश) तथा तीन गुण (रजगुण, सतगुण तथा तमगुण) दे दिये तथा कहा कि इनसे अपनी रचना कर।

क्षर पुरूष ने तीसरी बार फिर तप प्रारम्भ किया। जब 64 (चौंसठ) युग तप करते हो गए तो सत्य पुरूष जी ने पूछा कि आप और क्या चाहते हैं? क्षर पुरूष (ज्योति निरंजन) ने कहा कि मुझे कुछ आत्मा दे दो। मेरा अकेले का दिल नहीं लग रहा। क्षर पुरूष को आत्मा ऐसे मिली, आगे पढ़ें :-

"हम काल के लोक में कैसे आए ?"

जिस समय क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) एक पैर पर खड़ा होकर तप कर रहा था। तब हम सभी आत्माऐं इस क्षर पुरुष पर आकर्षित हो गए। जैसे जवान बच्चे अभिनेता व अभिनेत्री पर आसक्त हो जाते हैं। लेना एक न देने दो। व्यर्थ में चाहने लग जाते हैं। वे अपनी कमाई करने के लिए नाचते-कूदते हैं। युवा-बच्चे उन्हें देखकर अपना धन नष्ट करते हैं। ठीक इसी प्रकार हम अपने परमपिता सतपुरुष को छोड़कर काल पुरुष (क्षर पुरुष) को हृदय से चाहने लग गए थे। जो परमेश्वर हमें सर्व सुख सुविधा दे रहा था। उससे मुँह मोड़कर इस नकली ड्रामा करने वाले काल ब्रह्म को चाहने लगे। सत पुरुष जी ने बीच-बीच में बहुत बार आकाशवाणी की कि बच्चो तुम इस काल की क्रिया को मत देखो, मस्त रहो। हम ऊपर से तो सावधान हो गए, परन्तु अन्दर से चाहते रहे। परमेश्वर तो अन्तर्यामी है। इन्होंने जान लिया कि ये यहाँ रखने के योग्य नहीं रहे। काल पुरुष (क्षर पुरुष = ज्योति निरंजन) ने जब दो बार तप करके फल प्राप्त कर लिया तब उसने सोचा कि अब कुछ जीवात्मा भी मेरे साथ रहनी चाहिए। मेरा अकेले का दिल नहीं लगेगा। इसलिए जीवात्मा प्राप्ति के लिए तप करना शुरु किया। 64 युग तक तप करने के पश्चात् परमेश्वर जी ने पूछा कि ज्योति निरंजन अब किसलिए तप कर रहा है? क्षर पुरुष ने कहा कि कुछ आत्माएं प्रदान करो, मेरा अकेले का दिल नहीं लगता। सतपुरुष ने कहा कि तेरे तप के बदले में और ब्रह्माण्ड दे सकता हूं, परन्तु अपनी आत्माएं नहीं दूँगा। ये मेरे शरीर से उत्पन्न हुई हैं। हाँ, यदि वे स्वयं जाना चाहते हैं तो वह जा सकते हैं। युवा कविर् (समर्थ कबीर) के वचन सुनकर ज्योति निरंजन हमारे पास आया। हम सभी हंस आत्मा पहले से ही उस पर आसक्त थे। हम उसे चारों तरफ से घेरकर खड़े हो गए। ज्योति निरंजन ने कहा कि मैंने पिता जी से अलग 21 ब्रह्माण्ड प्राप्त किए हैं। वहाँ नाना प्रकार के रमणीय स्थल बनाए हैं। क्या आप मेरे साथ चलोगे? हम सभी हंसों ने जो आज 21 ब्रह्माण्डों में परेशान हैं, कहा कि हम तैयार हैं। यदि पिता जी आज्ञा दें, तब क्षर पुरूष(काल), पूर्ण ब्रह्म महान् कविर् (समर्थ कबीर प्रभु) के पास गया तथा सर्व वार्ता कही। तब कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने कहा कि मेरे सामने स्वीकंति देने वाले को आज्ञा दूँगा। क्षर पुरूष तथा परम अक्षर पुरूष (कविर्मितौजा) दोनों हम सभी हंसात्माओं के पास आए। सत् कविर्देव ने कहा कि जो हंसात्मा ब्रह्म के साथ जाना चाहता हैं, हाथ ऊपर करके स्वीकंति दें। अपने पिता के सामने किसी की हिम्मत नहीं हुई। किसी ने स्वीकंति नहीं दी। बहुत समय तक सन्नाटा छाया रहा। तत्पश्चात् एक हंस आत्मा ने साहस किया तथा कहा कि पिता जी मैं जाना चाहता हूँ। फिर तो उसकी देखा-देखी (जो आज काल(ब्रह्म) के इक्कीस

ब्रह्माण्डों में फँसी हैं) हम सभी आत्माओं ने स्वीकृति दे दी। परमेश्वर कबीर जी ने ज्योति निरंजन से कहा कि आप अपने स्थान पर जाओ। जिन्होंने तेरे साथ जाने की स्वीकृति दी है, मैं उन सर्व हंस आत्माओं को आपके पास भेज दूँगा। ज्योति निरंजन अपने 21 ब्रह्माण्डों में चला गया। उस समय तक यह इक्कीस ब्रह्माण्ड सतलोक में ही थे।

तत्पश्चात् पूर्ण ब्रह्म ने सर्व प्रथम स्वीकृति देने वाले हंस को लड़की का रूप दिया परन्तु स्त्री इन्द्री नहीं रची तथा सर्व आत्माओं को (जिन्होंने ज्योति निरंजन (ब्रह्म) के साथ जाने की सहमति दी थी) उस लड़की के शरीर में प्रवेश कर दिया तथा उसका नाम आष्ट्रा (आदि माया/प्रकृति देवी/दुर्गा) पड़ा तथा सत्यपुरूष ने कहा कि पुत्री मैंने तेरे को शब्द शक्ति प्रदान कर दी है। जितने जीव ब्रह्म कहे आप उत्पन्न कर देना। पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर साहेब) ने अपने पुत्र सहज दास के द्वारा प्रकृति को क्षर पुरूष के पास भिजवा दिया। सहज दास जी ने ज्योति निरंजन को बताया कि पिता जी ने इस बहन के शरीर में उन सब आत्माओं को प्रवेश कर दिया है, जिन्होंने आपके साथ जाने की सहमति व्यक्त की थी। इसको वचन शक्ति प्रदान की है, आप जितने जीव चाहोगे प्रकृति अपने शब्द से उत्पन्न कर देगी। यह कहकर सहजदास वापिस अपने द्वीप में आ गया।

युवा होने के कारण लड़की का रंग-रूप निखरा हुआ था। ब्रह्म के अन्दर विषय-वासना उत्पन्न हो गई तथा प्रकृति देवी के साथ अभद्र गतिविधि प्रारम्भ की। तब दुर्गा ने कहा कि ज्योति निरंजन मेरे पास पिता जी की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है। आप जितने प्राणी कहोगे मैं वचन से उत्पन्न कर दूँगी। आप मैथुन परम्परा शुरू मत करो। आप भी उसी पिता के शब्द से अण्डे से उत्पन्न हुए हो तथा मैं भी उसी परमपिता के वचन से ही बाद में उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे बड़े भाई हो, बहन-भाई का यह योग महापाप का कारण बनेगा। परन्तु ज्योति निरंजन ने प्रकृति देवी की एक भी प्रार्थना नहीं सुनी तथा अपनी शब्द शक्ति द्वारा नाखुनों से स्त्री इन्द्री (भग) प्रकृति को लगा दी तथा बलात्कार करने की ठानी। उसी समय दुर्गा ने अपनी इज्जत रक्षा के लिए कोई और चारा न देखकर सूक्ष्म रूप बनाया तथा ज्योति निरंजन के खुले मुख के द्वारा पेट में प्रवेश करके पूर्ण ब्रह्म कविर् देव से अपनी रक्षा के लिए याचना की। उसी समय कविर्देव(कविर् देव) अपने पुत्र योग संतायन अर्थात् जोगजीत का रूप बनाकर वहाँ प्रकट हुए तथा कन्या को ब्रह्म के उदर से बाहर निकाला तथा कहा ज्योति निरंजन आज से तेरा नाम 'काल' होगा। तेरे जन्म-मृत्यु होते रहेंगे। इसीलिए तेरा नाम क्षर पुरूष होगा तथा एक लाख मानव शरीर धारी प्रणियों को प्रतिदिन खाया करेगा व सवा लाख उत्पन्न किया करेगा। आप दोनों को इक्कीस ब्रह्माण्ड सहित निष्कासित किया जाता है। इतना कहते ही इक्कीस ब्रह्माण्ड विमान की तरह चल पड़े। सहज

दास के द्वीप के पास से होते हुए सतलोक से सोलह शंख कोस (एक कोस लगभग 3 कि.मी. का होता है) की दूरी पर आकर रूक गए।

विशेष विवरण :- अब तक तीन शक्तियों का विवरण आया है।

1. पूर्णब्रह्म जिसे अन्य उपमात्मक नामों से भी जाना जाता है, जैसे सतपुरूष, अकालपुरूष, शब्द स्वरूपी राम, परम अक्षर ब्रह्म/पुरूष आदि। यह पूर्णब्रह्म असंख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी है तथा वास्तव में अविनाशी है।

2. परब्रह्म जिसे अक्षर पुरूष भी कहा जाता है। यह वास्तव में अविनाशी नहीं है। यह सात शंख ब्रह्माण्डों का स्वामी है।

3. ब्रह्म जिसे ज्योति निरंजन, काल, कैल, क्षर पुरूष तथा धर्मराय आदि नामों से जाना जाता है जो केवल इक्कीस ब्रह्माण्ड का स्वामी है। अब आगे इसी ब्रह्म (काल) की सृष्टि के एक ब्रह्माण्ड का परिचय दिया जाएगा जिसमें तीन और नाम आपके पढ़ने में आयेंगे:- ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव।

ब्रह्म तथा ब्रह्मा में भेद - एक ब्रह्माण्ड में बने सर्वोपरि स्थान पर ब्रह्म (क्षर पुरूष) स्वयं तीन गुप्त स्थानों की रचना करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी प्रकृति (दुर्गा) के सहयोग से तीन पुत्रों की उत्पत्ति करता है। उनके नाम भी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ही रखता है। जो ब्रह्म का पुत्र ब्रह्मा है, वह एक ब्रह्माण्ड में केवल तीन लोकों (पृथ्वी लोक, स्वर्ग लोक तथा पाताल लोक) में एक रजोगुण विभाग का मंत्री (स्वामी) है। इसे त्रिलोकिय ब्रह्मा कहा है तथा ब्रह्म जो ब्रह्मलोक में ब्रह्मा रूप में रहता है, उसे महाब्रह्मा व ब्रह्मलोकिय ब्रह्मा कहा है। इसी ब्रह्म (काल) को सदाशिव, महाशिव, महाविष्णु भी कहा है।

श्री विष्णु पुराण में प्रमाण :- चतुर्थ अंश अध्याय 1 पृष्ठ 230-231 पर श्री ब्रह्मा जी ने कहा:- जिस अजन्मा सर्वमय विधाता परमेश्वर का आदि, मध्य, अन्त, स्वरूप, स्वभाव और सार हम नहीं जान पाते। (श्लोक 83)

जो मेरा रूप धारण कर संसार की रचना करता है, स्थिति के समय जो पुरूष रूप है तथा जो रूद्र रूप से विश्व का ग्रास कर जाता है, अनन्त रूप से सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। (श्लोक 86)

(देखें एक ब्रह्माण्ड का लघु चित्र)

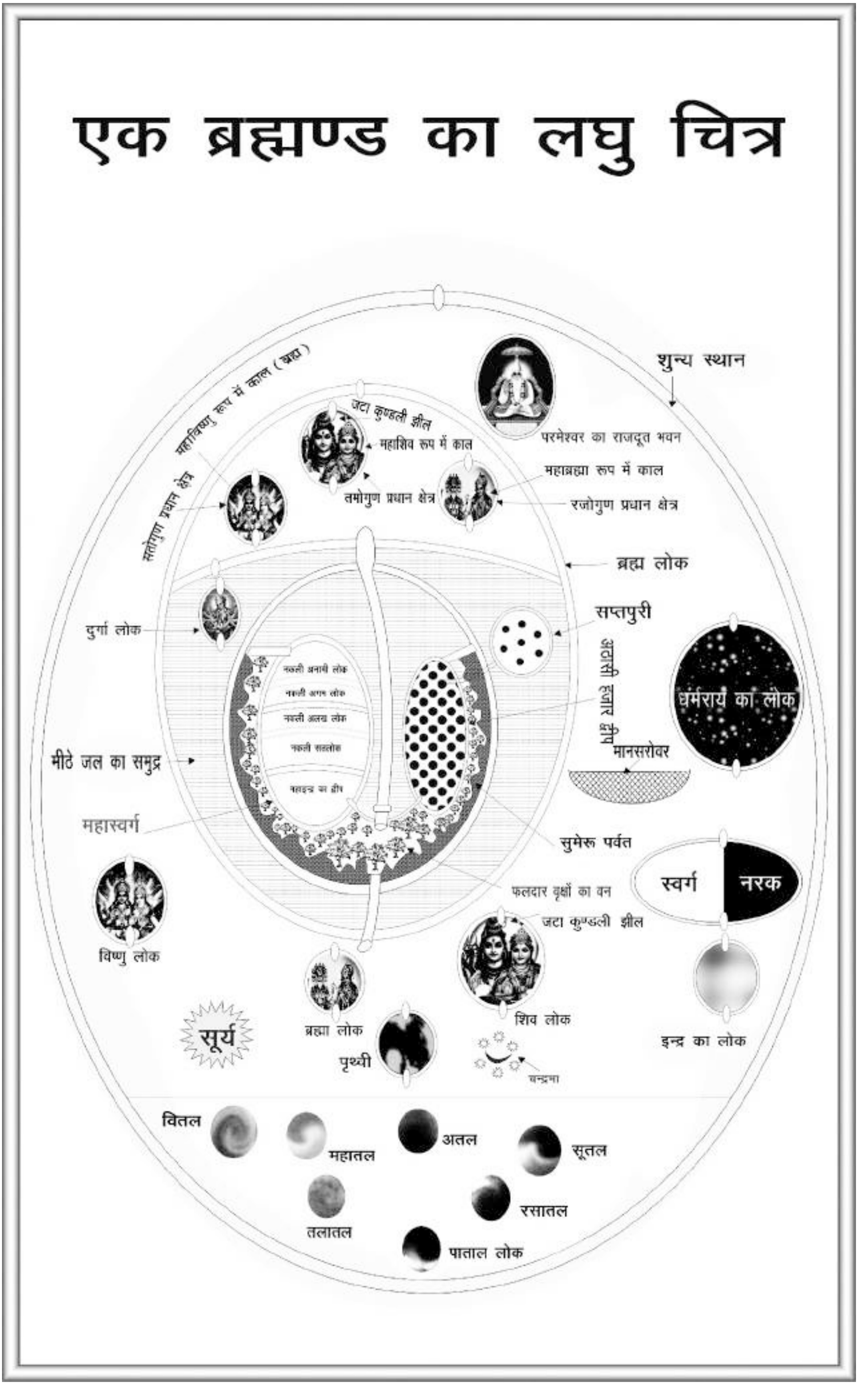

"श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी की उत्पत्ति"

काल(ब्रह्म) ने प्रकति (दुर्गा) से कहा कि अब मेरा कौन क्या बिगाड़ेगा? मनमानी करूँगा। प्रकति ने फिर प्रार्थना की कि आप कुछ शर्म करो। प्रथम तो आप मेरे बड़े भाई हो क्योंकि उसी पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) की वचन शक्ति से आपकी (ब्रह्म) की अण्डे से उत्पत्ति हुई तथा बाद मे मेरी उत्पत्ति उसी परमेश्वर के वचन से हुई है। दूसरे मैं आपके पेट से बाहर निकली हूँ। मैं आपकी बेटी हुई तथा आप मेरे पिता हुए। इन पवित्र नातों में बिगाड़ करना महापाप होगा। मेरे पास पिता की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है, जितने प्राणी आप कहोगे मैं वचन से उत्पन्न कर दूँगी। ज्योति निरंजन ने दुर्गा की एक भी विनय नहीं सुनी तथा कहा कि मुझे जो सजा मिलनी थी, मिल गई। मुझे सतलोक से निष्कासित कर दिया। अब मैं मनमानी करूँगा। यह कहकर काल पुरूष (क्षर पुरूष) ने प्रकति के साथ जबरदस्ती शादी की तथा तीन पुत्रों (रजगुण युक्त ब्रह्मा जी, सतगुण युक्त विष्णु जी तथा तमगुण युक्त शिव शंकर जी) की उत्पत्ति की। जवान होने तक तीनों पुत्रों को दुर्गा के द्वारा अचेत करवा देता है, फिर युवा होने पर श्री ब्रह्मा जी को कमल के फूल पर, श्री विष्णु जी को शेष नाग की शैय्या पर तथा श्री शिव जी को कैलाश पर्वत पर सचेत करके इकट्ठे कर देता है। तत्पश्चात् प्रकति (दुर्गा) द्वारा इन तीनों का विवाह कर दिया जाता है तथा एक ब्रह्माण्ड में तीन लोकों (स्वर्ग लोक, पथ्वी लोक, तथा पाताल लोक) में एक-एक विभाग के मंत्री पद को संभालता है। एक ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना की है। उसी में तीन गुप्त स्थान बनाए हैं। एक रजोगुण प्रधान स्थान है जहाँ पर यह ब्रह्म (काल) स्वयं महाब्रह्मा (मुख्यमंत्री) रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महासावित्री रूप में रखता है। इन दोनों के संयोग से जो पुत्र इस स्थान पर उत्पन्न होता है, वह स्वतः ही रजोगुणी बन जाता है। दूसरा स्थान सतोगुण प्रधान स्थान बनाया है। वहाँ पर यह क्षर पुरूष स्वयं महाविष्णु रूप बनाकर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महालक्ष्मी रूप में रखकर जो पुत्र उत्पन्न करता है उसका नाम विष्णु रखता है, वह बालक सतोगुण युक्त होता है तथा तीसरा इसी काल ने वहीं पर एक तमोगुण प्रधान क्षेत्र बनाया है। उसमें यह स्वयं सदाशिव रूप बनाकर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महापार्वती रूप में रखता है। इन दोनों के पति-पत्नी व्यवहार से जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसका नाम शिव रख देते हैं तथा तमोगुण युक्त कर देते हैं। (प्रमाण के लिए देखें पवित्र श्री शिव महापुराण, विध्वेश्वर संहिता के पष्ठ 24-26 पर जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र तथा महेश्वर से अन्य सदाशिव है तथा रूद्र संहिता अध्याय 6 तथा 7,9 पष्ठ नं०. 100 से, 105 तथा 110 पर अनुवादकर्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित

तथा पवित्र श्रीमद् देवी महापुराण तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 114 से 123 तक, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, जिसके अनुवाद कर्ता है श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार चिमन लाल गोस्वामी) फिर इन्हीं को धोखे में रखकर अपने खाने के लिए जीवों की उत्पत्ति श्री ब्रह्मा जी द्वारा तथा स्थिति (एक-दूसरे को मोह-ममता में रखकर काल जाल में रखना) श्री विष्णु जी से तथा संहार (क्योंकि काल पुरूष को शापवश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर से मैल निकालकर खाना होता है, उसके लिए इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में एक तप्तशिला है जो स्वतः गर्म रहती है, उस पर गर्म करके मैल पिघलाकर खाता है, जीव मरते नहीं परन्तु कष्ट असहनीय होता है, फिर प्राणियों को कर्म आधार पर अन्य शरीर प्रदान करता है) श्री शिव जी द्वारा करवाता है। जैसे किसी मकान में तीन कमरे बने हों। एक कमरे में अश्लील चित्र लगे हों। उस कमरे में जाते ही मन में वैसे ही मलीन विचार उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे कमरे में साधु-सन्तों, भक्तों के चित्र लगे हों तो मन में अच्छे विचार, प्रभु का चिंतन ही बना रहता है। तीसरे कमरे में देशभक्तों व शहीदों के चित्र लगे हों तो मन में वैसे ही जोशीले विचार उत्पन्न हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म(काल) ने अपनी सूझ-बूझ से उपरोक्त तीनों गुण प्रधान स्थानों की रचना की हुई है।

(देखें ब्रह्म लोक का लघु चित्र व ज्योति निरंजन (काल) ब्रह्म, के लोक 21 ब्रह्माण्ड का लघु चित्र इसी पुस्तक के पृष्ठ 128 व 129 पर)

ब्रह्म लोक का लघु चित्र

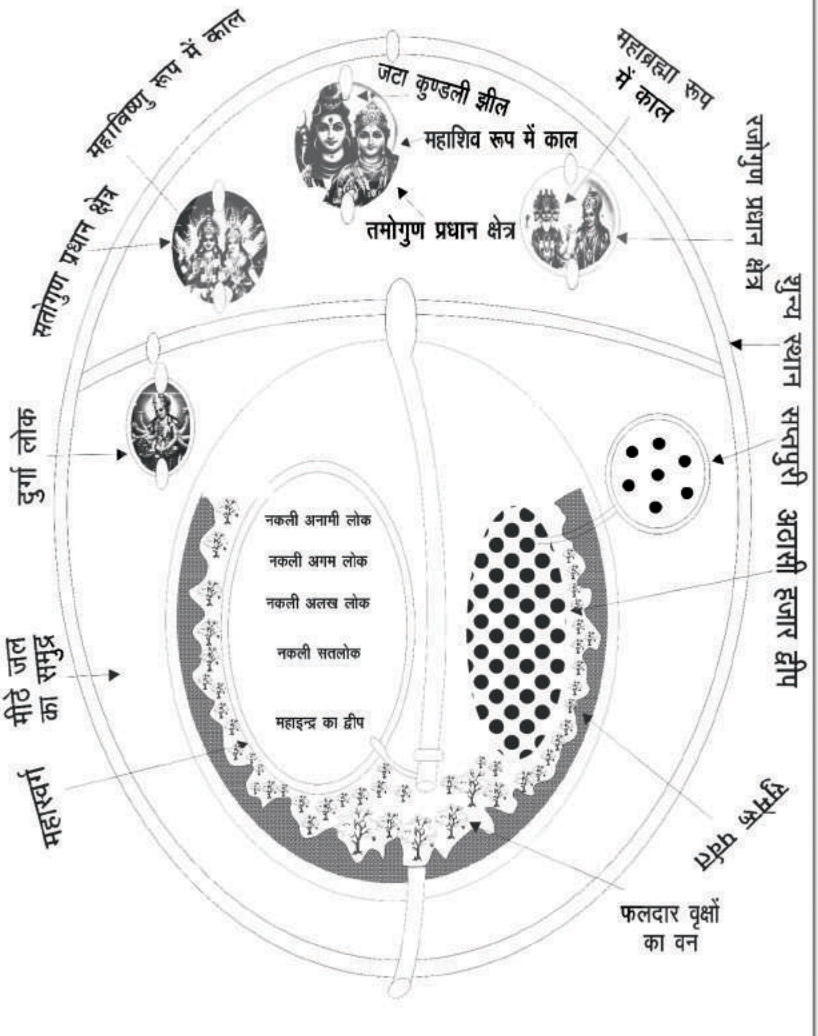

ज्योति निरंजन (काल) ब्रह्म के लोक (21 ब्रह्मण्ड) का लघु चित्र

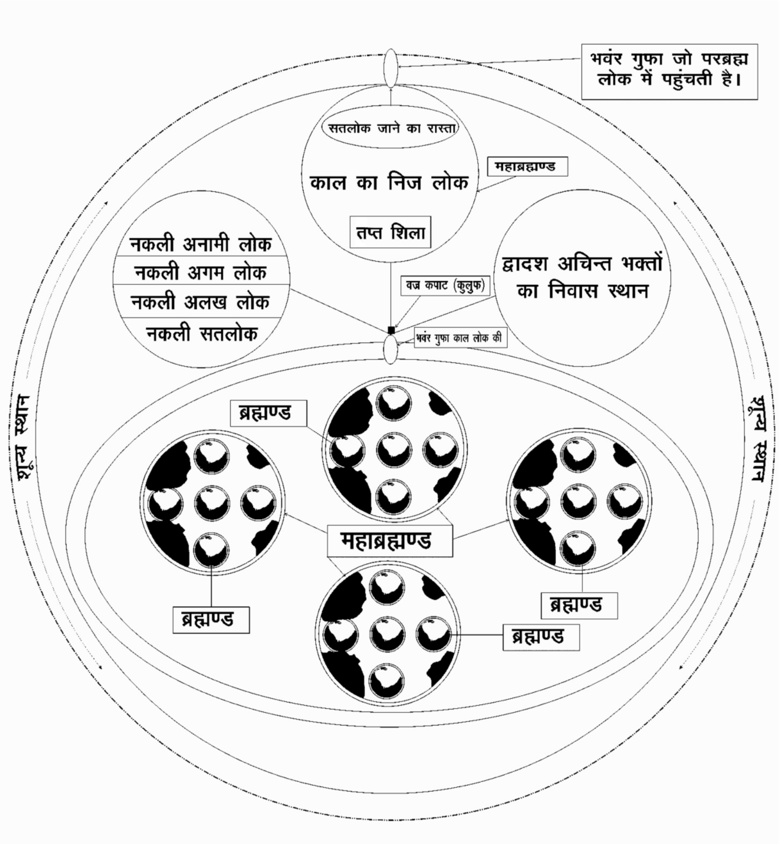

‘‘सम्पूर्ण सृष्टि रचना‘‘

(सूक्ष्मवेद से निष्कर्ष रूप सृष्टि रचना का वर्णन)

प्रभु प्रेमी आत्माऐं प्रथम बार निम्न सृष्टि की रचना को पढेंगे तो ऐसे लगेगा जैसे दन्त कथा हो, परन्तु सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के प्रमाणों को पढ़कर दाँतों तले उँगली दबाऐंगे कि यह वास्तविक अमृत ज्ञान कहाँ छुपा था? कृप्या धैर्य के साथ पढ़ते पढ़ें तथा इस अमृत ज्ञान को सुरक्षित रखें। आप की एक सौ एक पीढ़ी तक काम आएगा। पवित्रात्माऐं कृप्या सत्यनारायण (अविनाशी प्रभु/सतपुरुष) द्वारा रची सृष्टि रचना का वास्तविक ज्ञान पढ़ें।

1. पूर्ण ब्रह्म :- इस सृष्टि रचना में सतपुरुष-सतलोक का स्वामी (प्रभु), अलख पुरुष-अलख लोक का स्वामी (प्रभु), अगम पुरुष-अगम लोक का स्वामी (प्रभु) तथा अनामी पुरुष-अनामी अकह लोक का स्वामी (प्रभु) तो एक ही पूर्ण ब्रह्म है, जो वास्तव में अविनाशी प्रभु है जो भिन्न-२ रूप धारण करके अपने चारों लोकों में रहता है। जिसके अन्तर्गत असंख्य ब्रह्माण्ड आते हैं।

2. परब्रह्म :- यह केवल सात संख ब्रह्माण्ड का स्वामी (प्रभु) है। यह अक्षर पुरुष भी कहलाता है। परन्तु यह तथा इसके ब्रह्माण्ड भी वास्तव में अविनाशी नहीं है।

3. ब्रह्म :- यह केवल इक्कीस ब्रह्माण्ड का स्वामी (प्रभु) है। इसे क्षर पुरुष, ज्योति निरंजन, काल आदि उपमा से जाना जाता है। यह तथा इसके सर्व ब्रह्माण्ड नाशवान हैं।

(उपरोक्त तीनों पुरूषों (प्रभुओं) का प्रमाण पवित्र श्री मद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में भी है।)

4. ब्रह्मा :- ब्रह्मा इसी ब्रह्म का ज्येष्ठ पुत्र है, विष्णु मध्य वाला पुत्र है तथा शिव अंतिम तीसरा पुत्र है। ये तीनों ब्रह्म के पुत्र केवल एक ब्रह्माण्ड में एक विभाग (गुण) के स्वामी (प्रभु) हैं तथा नाशवान हैं। विस्तृत विवरण के लिए कृप्या पढ़ें निम्न लिखित सृष्टि रचना :-

{कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने सुक्ष्म वेद अर्थात् कबिर्बाणी में अपने द्वारा रची सृष्टि का ज्ञान स्वयं ही बताया है जो निम्नलिखित है}

सर्व प्रथम केवल एक स्थान ‘अनामी (अनामय) लोक‘ था। जिसे अकह लोक भी कहा जाता है, पूर्ण परमात्मा उस अनामी लोक में अकेला रहता था। उस परमात्मा का वास्तविक नाम कविर्देव अर्थात् कबीर परमेश्वर है। सभी आत्माऐं उस पूर्ण धनी के शरीर में समाई हुई थी। इसी कविर्देव का उपमात्मक (पदवी का) नाम अनामी पुरुष है (पुरुष का अर्थ प्रभु होता है। प्रभु ने मनुष्य को अपने ही स्वरूप में बनाया है, इसलिए मानव का नाम भी पुरुष ही पड़ा है।) अनामी पुरूष के एक रोम कूप का प्रकाश संख सूर्यों की रोशनी से भी अधिक है।

परमेश्वर कबीर साहेब के असंख्य ब्रह्मण्डों का लघु चित्र

अनामी लोक : इस लोक में आत्मा और परमात्मा एक रूप होकर कबीर साहेब ही अनामी रूप में है। जैसे मिट्टी के ढले (छोटे-छोटे टुकड़े) हो जाते हैं। फिर वर्षा होने पर एक पृथ्वी बन जाती है, अलग अस्तित्व नहीं रहता।

अगम लोक : इस लोक में भी कबीर साहेब अगम पुरूष रूप में रहते हैं।

अलख लोक : इस लोक में भी कबीर साहेब अलख पुरूष रूप में रहते हैं।

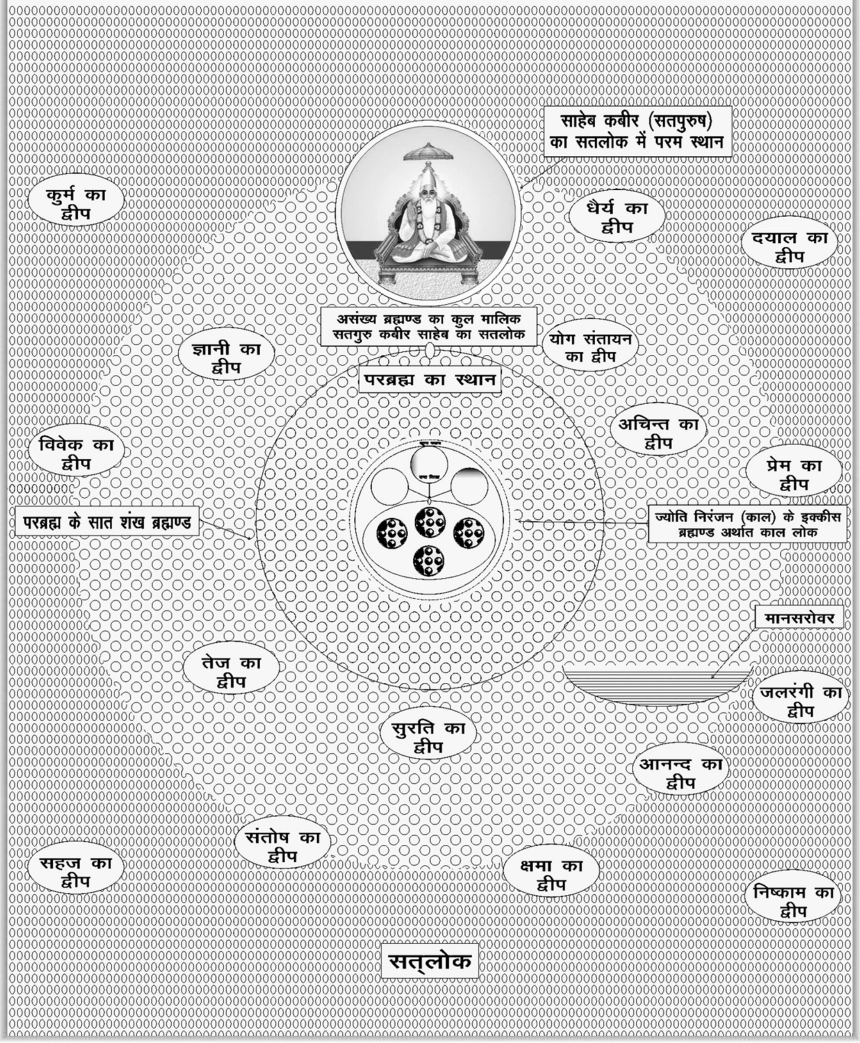

विशेष :- जैसे किसी देश के आदरणीय प्रधान मंत्री जी का शरीर का नाम तो अन्य होता है तथा पद का उपमात्मक (पदवी का) नाम प्रधानमंत्री होता है। कई बार प्रधानमंत्री जी अपने पास कई विभाग भी रख लेते हैं। तब जिस भी विभाग के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करते हैं तो उस समय उसी पद को लिखते हैं। जैसे गंह मंत्रालय के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करेगें तो अपने को गंह मंत्री लिखेगें। वहाँ उसी व्यक्ति के हस्ताक्षर की शक्ति कम होती है। इसी प्रकार कबीर परमेश्वर (कविर्देव) की रोशनी में अंतर भिन्न-२ लोकों में होता जाता है।

ठीक इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने नीचे के तीन और लोकों (अगमलोक, अलख लोक, सतलोक) की रचना शब्द(वचन) से की। यही पूर्णब्रह्म परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही अगम लोक में प्रकट हुआ तथा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) अगम लोक का भी स्वामी है तथा वहाँ इनका उपमात्मक (पदवी का) नाम अगम पुरुष अर्थात् अगम प्रभु है। इसी अगम प्रभु का मानव सदंश शरीर बहुत तेजोमय है जिसके एक रोम कूप की रोशनी खरब सूर्य की रोशनी से भी अधिक है।

यह पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबिर देव=कबीर परमेश्वर) अलख लोक में प्रकट हुआ तथा स्वयं ही अलख लोक का भी स्वामी है तथा उपमात्मक (पदवी का) नाम अलख पुरुष भी इसी परमेश्वर का है तथा इस पूर्ण प्रभु का मानव सदंश शरीर तेजोमय (स्वर्ज्योति) स्वयं प्रकाशित है। एक रोम कूप की रोशनी अरब सूर्यों के प्रकाश से भी ज्यादा है।

यही पूर्ण प्रभु सतलोक में प्रकट हुआ तथा सतलोक का भी अधिपति यही है। इसलिए इसी का उपमात्मक (पदवी का) नाम सतपुरुष (अविनाशी प्रभु)है। इसी का नाम अकालमूर्ति - शब्द स्वरूपी राम - पूर्ण ब्रह्म - परम अक्षर ब्रह्म आदि हैं। इसी सतपुरुष कविर्देव (कबीर प्रभु) का मानव सदंश शरीर तेजोमय है। जिसके एक रोमकूप का प्रकाश करोड़ सूर्यों तथा इतने ही चन्द्रमाओं के प्रकाश से भी अधिक है।

इस कविर्देव (कबीर प्रभु) ने सतपुरुष रूप में प्रकट होकर सतलोक में विराजमान होकर प्रथम सतलोक में अन्य रचना की।

एक शब्द (वचन) से सोलह द्वीपों की रचना की। फिर सोलह शब्दों से सोलह पुत्रों की उत्पत्ति की। एक मानसरोवर की रचना की जिसमें अमंत भरा। सोलह पुत्रों के नाम हैं :-(1) ''कूर्म'', (2)''ज्ञानी'', (3) ''विवेक'', (4) ''तेज'', (5) ''सहज'', (6) ''सन्तोष'', (7)''सुरति'', (8) ''आनन्द'', (9) ''क्षमा'', (10) ''निष्काम'', (11) 'जलरंगी' (12)''अचिन्त'', (13) ''प्रेम'', (14) ''दयाल'', (15) ''धैर्य'' (16) ''योग संतायन'' अर्थात् ''योगजीत''।

सतपुरुष कविर्देव ने अपने पुत्र अचिन्त को सत्यलोक की अन्य रचना का भार सौंपा तथा शक्ति प्रदान की। अचिन्त ने अक्षर पुरुष (परब्रह्म) की शब्द से उत्पत्ति

की तथा कहा कि मेरी मदद करना। अक्षर पुरुष स्नान करने मानसरोवर पर गया, वहाँ आनन्द आया तथा सो गया। लम्बे समय तक बाहर नहीं आया। तब अचिन्त की प्रार्थना पर अक्षर पुरुष को नींद से जगाने के लिए कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने उसी मानसरोवर से कुछ अमृत जल लेकर एक अण्डा बनाया तथा उस अण्डे में एक आत्मा प्रवेश की तथा अण्डे को मानसरोवर के अमृत जल में छोड़ा। अण्डे की गड़गड़ाहट से अक्षर पुरुष की निंद्रा भंग हुई। उसने अण्डे को क्रोध से देखा जिस कारण से अण्डे के दो भाग हो गए। उसमें से ज्योति निंरजन (क्षर पुरुष) निकला जो आगे चलकर 'काल' कहलाया। इसका वास्तविक नाम ''कैल'' है। तब सतपुरुष (कविर्देव) ने आकाशवाणी की कि आप दोनों बाहर आओ तथा अचिंत के द्वीप में रहो। आज्ञा पाकर अक्षर पुरुष तथा क्षर पुरुष (कैल) दोनों अचिंत के द्वीप में रहने लगे (बच्चों की नालायकी उन्हीं को दिखाई कि कहीं फिर प्रभुता की तड़फ न बन जाए, क्योंकि समर्थ बिन कार्य सफल नहीं होता) फिर पूर्ण धनी कविर्देव ने सर्व रचना स्वयं की। अपनी शब्द शक्ति से एक राजेश्वरी (राष्ट्री) शक्ति उत्पन्न की, जिससे सर्व ब्रह्माण्डों को स्थापित किया। इसी को पराशक्ति परानन्दनी भी कहते हैं। पूर्ण ब्रह्म ने सर्व आत्माओं को अपने ही अन्दर से अपनी वचन शक्ति से अपने मानव शरीर सदृश उत्पन्न किया। प्रत्येक हंस आत्मा का परमात्मा जैसा ही शरीर रचा जिसका तेज 16 (सोलह) सूर्यों जैसा मानव सदृश ही है। परन्तु परमेश्वर के शरीर के एक रोम कूप का प्रकाश करोड़ों सूर्यों से भी ज्यादा है। बहुत समय उपरान्त क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) ने सोचा कि हम तीनों (अचिन्त - अक्षर पुरुष - क्षर पुरुष) एक द्वीप में रह रहे हैं तथा अन्य एक-एक द्वीप में रह रहे हैं। मैं भी साधना करके अलग द्वीप प्राप्त करूँगा। उसने ऐसा विचार करके एक पैर पर खड़ा होकर सत्तर (70) युग तक तप किया।

“आत्माऐं काल के जाल में कैसे फँसी?”

विशेष :- जब ब्रह्म (ज्योति निरंजन) तप कर रहा था हम सभी आत्माऐं, जो आज ज्योति निरंजन के इक्कीस ब्रह्माण्डों में रहते हैं इसकी साधना पर आसक्त हो गए तथा अन्तरात्मा से इसे चाहने लगे। अपने सुखदाई प्रभु सत्य पुरूष से विमुख हो गए। जिस कारण से पतिव्रता पद से गिर गए। पूर्ण प्रभु के बार-बार सावधान करने पर भी हमारी आसक्ति क्षर पुरुष से नहीं हटी। {यही प्रभाव आज भी काल सृष्टि में विद्यमान है। जैसे नौजवान बच्चे फिल्म स्टारों (अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों) की बनावटी अदाओं तथा अपने रोजगार उद्देश्य से कर रहे भूमिका पर अति आसक्त हो जाते हैं, रोकने से नहीं रूकते। यदि कोई अभिनेता या अभिनेत्री निकटवर्ती शहर में आ जाए तो देखें उन नादान बच्चों की भीड़ केवल दर्शन करने के लिए बहु संख्या में एकत्रित हो जाती हैं। 'लेना एक न देने दो' रोजी रोटी

अभिनेता कमा रहे हैं, नौजवान बच्चे लुट रहे हैं। माता–पिता कितना ही समझाऐं किन्तु बच्चे नहीं मानते। कहीं न कहीं, कभी न कभी, लुक–छिप कर जाते ही रहते हैं।}

पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर प्रभु) ने क्षर पुरुष से पूछा कि बोलो क्या चाहते हो? उसने कहा कि पिता जी यह स्थान मेरे लिए कम है, मुझे अलग से द्वीप प्रदान करने की कंपा करें। हक्का कबीर (सत् कबीर) ने उसे 21 (इक्कीस) ब्रह्माण्ड प्रदान कर दिए। कुछ समय उपरान्त ज्योति निरंजन ने सोचा इस में कुछ रचना करनी चाहिए। खाली ब्रह्माण्ड(प्लाट) किस काम के। यह विचार कर 70 युग तप करके पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर प्रभु) से रचना सामग्री की याचना की। सतपुरुष ने उसे तीन गुण तथा पाँच तत्व प्रदान कर दिए, जिससे ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने अपने ब्रह्माण्डों में कुछ रचना की। फिर सोचा कि इसमें जीव भी होने चाहिए, अकेले का दिल नहीं लगता। यह विचार करके 64 (चौसठ) युग तक फिर तप किया। पूर्ण परमात्मा कविर् देव के पूछने पर बताया कि मुझे कुछ आत्मा दे दो, मेरा अकेले का दिल नहीं लग रहा। तब सतपुरुष कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने कहा कि ब्रह्म तेरे तप के प्रतिफल में मैं तुझे और ब्रह्माण्ड दे सकता हूँ, परन्तु मेरी आत्माओं को किसी भी जप-तप साधना के फल रूप में नहीं दे सकता। हाँ, यदि कोई स्वेच्छा से तेरे साथ जाना चाहे तो वह जा सकता है। युवा कविर् (समर्थ कबीर) के वचन सुन कर ज्योति निरंजन हमारे पास आया। हम सभी हंस आत्मा पहले से ही उस पर आसक्त थे। हम उसे चारों तरफ से घेर कर खड़े हो गए। ज्योति निंरजन ने कहा कि मैंने पिता जी से अलग 21 ब्रह्माण्ड प्राप्त किए हैं। वहाँ नाना प्रकार के रमणीय स्थल बनाए हैं। क्या आप मेरे साथ चलोगे? हम सभी हंसों ने जो आज 21 ब्रह्माण्डों में परेशान हैं, कहा कि हम तैयार हैं यदि पिता जी आज्ञा दें तब क्षर पुरुष पूर्ण ब्रह्म महान् कविर् (समर्थ कबीर प्रभु) के पास गया तथा सर्व वार्ता कही। तब कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने कहा कि मेरे सामने स्वीकंति देने वाले को आज्ञा दूंगा। क्षर पुरुष तथा परम अक्षर पुरुष (कविरमितौजा=कविर अमित औजा यानि जिसकी शक्ति का कोई वार नहीं, वह कबीर) दोनों हम सभी हंसात्माओं के पास आए। सत् कविर्देव ने कहा कि जो हंस आत्मा ब्रह्म के साथ जाना चाहता है हाथ ऊपर करके स्वीकंति दे। अपने पिता के सामने किसी की हिम्मत नहीं हुई। किसी ने स्वीकंति नहीं दी। बहुत समय तक सन्नाटा छाया रहा। तत्पश्चात् एक हंस आत्मा ने साहस किया तथा कहा कि पिता जी मैं जाना चाहता हूँ। फिर तो उसकी देखा-देखी (जो आज काल (ब्रह्म) के इक्कीस ब्रह्माण्डों में फंसी हैं) हम सभी आत्माओं ने स्वीकंति दे दी। परमेश्वर कबीर जी ने ज्योति निरंजन से कहा कि आप अपने स्थान पर जाओ। जिन्होंने तेरे साथ जाने की स्वीकंति दी है मैं उन सर्व हंस आत्माओं को आपके

पास भेज दूंगा। ज्योति निरंजन अपने 21 ब्रह्माण्डों में चला गया। उस समय तक यह इक्कीस ब्रह्माण्ड सतलोक में ही थे।

तत्पश्चात् पूर्ण ब्रह्म ने सर्व प्रथम स्वीकृति देने वाले हंस को लड़की का रूप दिया परन्तु स्त्री इन्द्री नहीं रची तथा सर्व आत्माओं को (जिन्होंने ज्योति निरंजन (ब्रह्म) के साथ जाने की सहमति दी थी) उस लड़की के शरीर में प्रवेश कर दिया तथा उसका नाम आष्ट्रा (आदि माया/ प्रकृति देवी/ दुर्गा) पड़ा तथा सत्य पुरूष ने कहा कि पुत्री मैंने तेरे को शब्द शक्ति प्रदान कर दी है जितने जीव ब्रह्म कहे आप उत्पन्न कर देना। पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर साहेब) अपने पुत्र सहज दास के द्वारा प्रकृति को क्षर पुरुष के पास भिजवा दिया। सहज दास जी ने ज्योति निरंजन को बताया कि पिता जी ने इस बहन के शरीर में उन सर्व आत्माओं को प्रवेश कर दिया है जिन्होंने आपके साथ जाने की सहमति व्यक्त की थी तथा इसको पिता जी ने वचन शक्ति प्रदान की है, आप जितने जीव चाहोगे प्रकृति अपने शब्द से उत्पन्न कर देगी। यह कह कर सहजदास वापिस अपने द्वीप में आ गया।

युवा होने के कारण लड़की का रंग-रूप निखरा हुआ था। ब्रह्म के अन्दर विषय-वासना उत्पन्न हो गई तथा प्रकृति देवी के साथ अभद्र गति विधि प्रारम्भ की। तब दुर्गा ने कहा कि ज्योति निरंजन मेरे पास पिता जी की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है। आप जितने प्राणी कहोगे मैं वचन से उत्पन्न कर दूँगी। आप मैथुन परम्परा शुरु मत करो। आप भी उसी पिता के शब्द से अण्डे से उत्पन्न हुए हो तथा मैं भी उसी परमपिता के वचन से ही बाद में उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे बड़े भाई हो, बहन-भाई का यह योग महापाप का कारण बनेगा। परन्तु ज्योति निरंजन ने प्रकृति देवी की एक भी प्रार्थना नहीं सुनी तथा अपनी शब्द शक्ति द्वारा नाखुनों से स्त्री इन्द्री (भग) प्रकृति को लगा दी तथा बलात्कार करने की ठानी। उसी समय दुर्गा ने अपनी इज्जत रक्षा के लिए कोई और चारा न देख सुक्ष्म रूप बनाया तथा ज्योति निरंजन के खुले मुख के द्वारा पेट में प्रवेश करके पूर्णब्रह्म कविर् देव से अपनी रक्षा के लिए याचना की। उसी समय कविर्देव (कविर् देव) अपने पुत्र योग संतायन अर्थात् जोगजीत का रूप बनाकर वहाँ प्रकट हुए तथा कन्या को ब्रह्म के उदर से बाहर निकाला तथा कहा कि ज्योति निरंजन आज से तेरा नाम 'काल' होगा। तेरे जन्म-मृत्यु होते रहेंगे। इसीलिए तेरा नाम क्षर पुरुष होगा तथा एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को प्रतिदिन खाया करेगा व सवा लाख उत्पन्न किया करेगा। आप दोनों को इक्कीस ब्रह्माण्ड सहित निष्कासित किया जाता है। इतना कहते ही इक्कीस ब्रह्माण्ड विमान की तरह चल पड़े। सहज दास के द्वीप के पास से होते हुए सतलोक से सोलह संख कोस (एक कोस लगभग 3 कि. मी. का होता है) की दूरी पर आकर रूक गए।

एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र

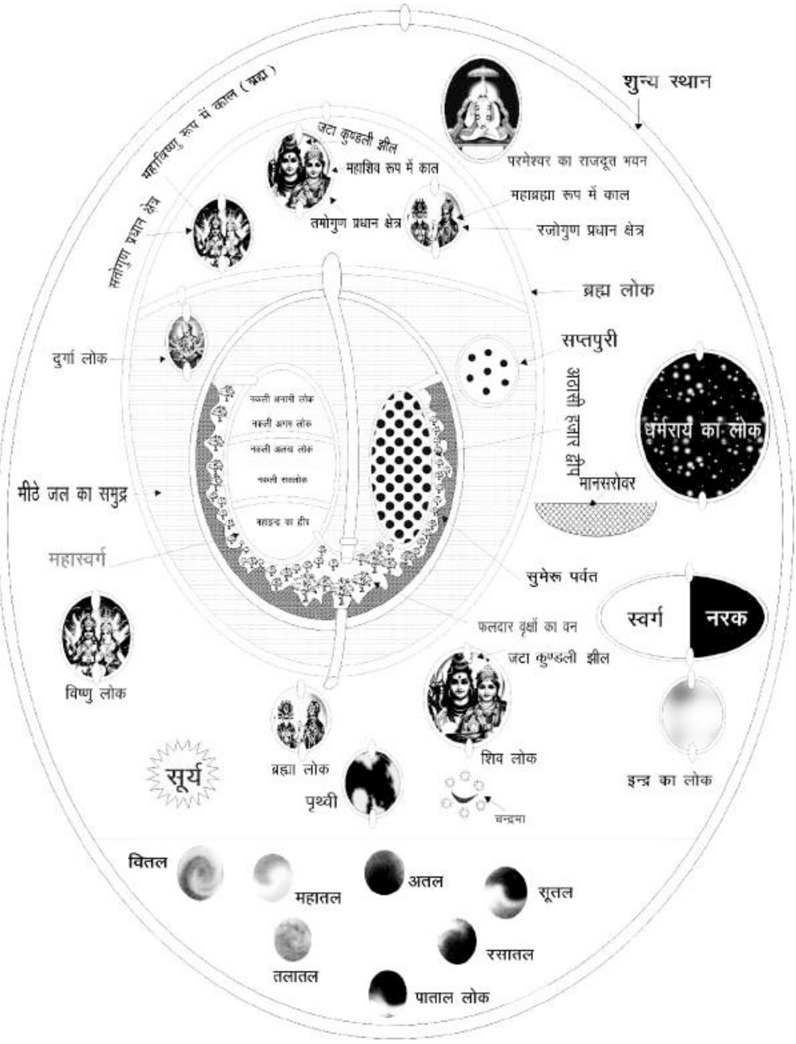

विशेष विवरण - अब तक तीन शक्तियों का विवरण आया है।

1. पूर्णब्रह्म जिसे अन्य उपमात्मक नामों से भी जाना जाता है, जैसे सतपुरुष, अकालपुरुष, शब्द स्वरूपी राम, परम अक्षर ब्रह्म/पुरुष आदि। यह पूर्णब्रह्म असंख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी है तथा वास्तव में अविनाशी है।

2. परब्रह्म जिसे अक्षर पुरुष भी कहा जाता है। यह वास्तव में अविनाशी नहीं है। यह सात शंख ब्रह्माण्डों का स्वामी है।

3. ब्रह्म जिसे ज्योति निरंजन, काल, कैल, क्षर पुरुष तथा धर्मराय आदि नामों से जाना जाता है, जो केवल इक्कीस ब्रह्माण्ड का स्वामी है। अब आगे इसी ब्रह्म (काल) की संष्टि के एक ब्रह्माण्ड का परिचय दिया जाएगा, जिसमें तीन और नाम आपके पढ़ने में आयेंगे - ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव।

ब्रह्म तथा ब्रह्मा में भेद - एक ब्रह्माण्ड में बने सर्वोपरि स्थान पर ब्रह्म (क्षर पुरुष) स्वयं तीन गुप्त स्थानों की रचना करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी प्रकंति (दुर्गा) के सहयोग से तीन पुत्रों की उत्पत्ति करता है। उनके नाम भी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ही रखता है। जो ब्रह्म का पुत्र ब्रह्मा है वह एक ब्रह्माण्ड में केवल तीन लोकों (पंथ्वी लोक, स्वर्ग लोक तथा पाताल लोक) में एक रजोगुण विभाग का मंत्री (स्वामी) है। इसे त्रिलोकीय ब्रह्मा कहा है तथा ब्रह्म जो ब्रह्मलोक में ब्रह्मा रूप में रहता है उसे महाब्रह्मा व ब्रह्मलोकिय ब्रह्मा कहा है। इसी ब्रह्म (काल) को सदाशिव, महाशिव, महाविष्णु भी कहा है।

श्री विष्णु पुराण में प्रमाण :- चतुर्थ अंश अध्याय 1 पंष्ठ 230-231 पर श्री ब्रह्मा जी ने कहा :- जिस अजन्मा, सर्वमय विधाता परमेश्वर का आदि, मध्य, अन्त, स्वरूप, स्वभाव और सार हम नहीं जान पाते (श्लोक 83)

जो मेरा रूप धारण कर संसार की रचना करता है, स्थिति के समय जो पुरूष रूप है तथा जो रूद्र रूप से विश्व का ग्रास कर जाता है, अनन्त रूप से सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। (श्लोक 86)

”श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी की उत्पत्ति“

काल (ब्रह्म) ने प्रकंति (दुर्गा) से कहा कि अब मेरा कौन क्या बिगाडेगा? मन मानी करूंगा प्रकंति ने फिर प्रार्थना की कि आप कुछ शर्म करो। प्रथम तो आप मेरे बड़े भाई हो, क्योंकि उसी पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) की वचन शक्ति से आप की (ब्रह्म की) अण्डे से उत्पत्ति हुई तथा बाद में मेरी उत्पत्ति उसी परमेश्वर के वचन से हुई है। दूसरे मैं आपके पेट से बाहर निकली हूँ, मैं आपकी बेटी हुई तथा आप मेरे पिता हुए। इन पवित्र नातों में बिगाड़ करना महापाप होगा। मेरे पास पिता की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है, जितने प्राणी आप कहोगे मैं वचन से

उत्पन्न कर दूंगी। ज्योति निरंजन ने दुर्गा की एक भी विनय नहीं सुनी तथा कहा कि मुझे जो सजा मिलनी थी मिल गई, मुझे सतलोक से निष्कासित कर दिया। अब मनमानी करूंगा। यह कह कर काल पुरूष (क्षर पुरूष) ने प्रकृति के साथ जबरदस्ती शादी की तथा तीन पुत्रों (रजगुण युक्त - ब्रह्मा जी, सतगुण युक्त - विष्णु जी तथा तमगुण युक्त - शिव शंकर जी) की उत्पत्ति की। जवान होने तक तीनों पुत्रों को दुर्गा के द्वारा अचेत करवा देता है, फिर युवा होने पर श्री ब्रह्मा जी को कमल के फूल पर, श्री विष्णु जी को शेष नाग की शैय्या पर तथा श्री शिव जी को कैलाश पर्वत पर सचेत करके इक्ट्ठे कर देता है। तत्पश्चात् प्रकृति (दुर्गा) द्वारा इन तीनों का विवाह कर दिया जाता है तथा एक ब्रह्माण्ड में तीन लोकों (स्वर्ग लोक, पृथ्वी लोक तथा पाताल लोक) में एक-एक विभाग के मंत्री (प्रभु) नियुक्त कर देता है। जैसे श्री ब्रह्मा जी को रजोगुण विभाग का तथा विष्णु जी को सत्तोगुण विभाग का तथा श्री शिव शंकर जी को तमोगुण विभाग का तथा स्वयं गुप्त (महाब्रह्मा - महाविष्णु - महाशिव) रूप से मुख्य मंत्री पद को संभालता है। एक ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना की है। उसी में तीन गुप्त स्थान बनाए हैं। एक रजोगुण प्रधान स्थान है जहाँ पर यह ब्रह्म (काल) स्वयं महाब्रह्मा (मुख्यमंत्री) रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महासावित्री रूप में रखता है। इन दोनों के संयोग से जो पुत्र इस स्थान पर उत्पन्न होता है वह स्वतः ही रजोगुणी बन जाता है। दूसरा स्थान सतोगुण प्रधान स्थान बनाया है। वहाँ पर यह क्षर पुरुष स्वयं महाविष्णु रूप बना कर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महालक्ष्मी रूप में रख कर जो पुत्र उत्पन्न करता है उसका नाम विष्णु रखता है, वह बालक सतोगुण युक्त होता है तथा तीसरा इसी काल ने वहीं पर एक तमोगुण प्रधान क्षेत्र बनाया है। उसमें यह स्वयं सदाशिव रूप बनाकर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महापार्वती रूप में रखता है। इन दोनों के पति-पत्नी व्यवहार से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसका नाम शिव रख देते हैं तथा तमोगुण युक्त कर देते हैं। (प्रमाण के लिए देखें पवित्र श्री शिव महापुराण, विद्यवेश्वर संहिता पृष्ठ 24-26 जिस में ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र तथा महेश्वर से अन्य सदाशिव है तथा रूद्र संहिता अध्याय 6 तथा 7, 9 पृष्ठ नं. 100 से, 105 तथा 110 पर अनुवाद कर्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित तथा पवित्र श्रीमद्देवीमहापुराण तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 114 से 123 तक, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, जिसके अनुवाद कर्ता हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार चिमन लाल गोस्वामी) फिर इन्हीं को धोखे में रख कर अपने खाने के लिए जीवों की उत्पत्ति श्री ब्रह्मा जी द्वारा तथा स्थिति (एक-दूसरे को मोह-ममता में रख कर काल जाल में रखना) श्री विष्णु जी से तथा संहार (क्योंकि काल पुरुष को शापवश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर से मैल निकाल कर खाना होता है उसके लिए इक्कीसवें

ब्रह्माण्ड में एक तप्तशिला है जो स्वतः गर्म रहती है, उस पर गर्म करके मैल पिंघला कर खाता है, जीव मरते नहीं परन्तु कष्ट असहनीय होता है, फिर प्राणियों को कर्म आधार पर अन्य शरीर प्रदान करता है) श्री शिव जी द्वारा करवाता है। जैसे किसी मकान में तीन कमरे बने हों। एक कमरे में अश्लील चित्र लगे हों। उस कमरे में जाते ही मन में वैसे ही मलिन विचार उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे कमरे में साधु-सन्तों, भक्तों के चित्र लगे हों तो मन में अच्छे विचार, प्रभु का चिन्तन ही बना रहता है। तीसरे कमरे में देश भक्तों व शहीदों के चित्र लगे हों तो मन में वैसे ही जोशीले विचार उत्पन्न हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म (काल) ने अपनी सूझ-बूझ से उपरोक्त तीनों गुण प्रधान स्थानों की रचना की हुई है।

''तीनों गुण क्या हैं? प्रमाण सहित''

''तीनों गुण रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। ब्रह्म (काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों नाशवान हैं''

प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार पृष्ठ सं. 24 से 26 विद्यवेश्वर संहिता तथा पृष्ठ 110 अध्याय 9 रूद्र संहिता ''इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पृष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कृपा से विद्यमान हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मृत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ ? अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हों। इस संसार की सृष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कृष्ण दास प्रकाशन मुम्बई, इसमें संस्कृत सहित हिन्दी अनुवाद किया है। तीसरा स्कंद अध्याय 4 पृष्ठ 10, श्लोक 42:-

ब्रह्मा – अहम् ईश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः
के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा। (42)

हिन्दी अनुवाद :- हे मात! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हैं, नित्य नही हैं अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकंति तथा सनातनी देवी हो।

पंष्ठ 11-12, अध्याय 5, श्लोक 8 :- यदि दयार्द्रमना न सदां▪बिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्वगुणों हरिः।(8)

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् जीवों के जन्म-मंत्यु रूपी दुष्कर्म में क्यों लगाया?

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

निष्कर्ष :- उपरोक्त प्रमाणों से प्रमाणित हुआ की रजगुण - ब्रह्म, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव है ये तीनों नाशवान है। दुर्गा का पति ब्रह्म (काल) है यह उसके साथ भोग विलास करता है।

"ब्रह्म (काल) की अव्यक्त रहने की प्रतिज्ञा"

सूक्ष्मवेद से शेष संष्टि रचना-------

तीनों पुत्रों की उत्पत्ति के पश्चात् ब्रह्म ने अपनी पत्नी दुर्गा (प्रकंति) से कहा मैं प्रतिज्ञा करता हुँ कि भविष्य में मैं किसी को अपने वास्तविक रूप में दर्शन नहीं दूंगा। जिस कारण से मैं अव्यक्त माना जाऊँगा। दुर्गा से कहा कि आप मेरा भेद किसी को मत देना। मैं गुप्त रहूँगा। दुर्गा ने पूछा कि क्या आप अपने पुत्रों को भी दर्शन नहीं दोगे? ब्रह्म ने कहा मैं अपने पुत्रों को तथा अन्य को किसी भी साधना से दर्शन नहीं दूंगा, यह मेरा अटल नियम रहेगा। दुर्गा ने कहा यह तो आपका उत्तम नियम नहीं है जो आप अपनी संतान से भी छुपे रहोगे। तब काल ने कहा दुर्गा मेरी विवशता है। मुझे एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करने का शाप लगा है। यदि मेरे पुत्रों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को पता लग गया तो ये उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कार्य नहीं करेंगे। इसलिए यह मेरा अनुत्तम नियम सदा रहेगा। जब ये तीनों कुछ बड़े हो जाऐं तो इन्हें अचेत कर देना। मेरे विषय में नहीं बताना, नहीं तो मैं तुझे भी दण्ड दूंगा, दुर्गा इस डर के मारे वास्तविकता नहीं बताती। इसीलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 24 में कहा है कि यह बुद्धिहीन जन समुदाय मेरे अनुत्तम नियम से अपरिचित हैं कि मैं कभी भी किसी के सामने प्रकट नहीं होता अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। इसलिए मुझ अव्यक्त को मनुष्य रूप में आया हुआ अर्थात् कंष्ण मानते हैं।

(अबुद्धयः) बुद्धि हीन (मम्) मेरे (अनुत्तमम्) अनुत्तम अर्थात् घटिया (अव्ययम्)

अविनाशी (परम् भावम्) विशेष भाव को (अजानन्तः) न जानते हुए (माम् अव्यक्तम्) मुझ अव्यक्त को (व्यक्तिम्) मनुष्य रूप में (आपन्नम) आया (मन्यन्ते) मानते हैं अर्थात् मैं कृष्ण नहीं हूँ। (गीता अध्याय 7 श्लोक 24)

गीता अध्याय 11 श्लोक 47 तथा 48 में कहा है कि यह मेरा वास्तविक काल रूप है। इसके दर्शन अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति न वेदों में वर्णित विधि से, न जप से, न तप से तथा न किसी क्रिया से हो सकती है।

जब तीनों बच्चे युवा हो गए तब माता भवानी (प्रकृति, अष्टंगी) ने कहा कि तुम सागर मन्थन करो। प्रथम बार सागर मन्थन किया तो (ज्योति निरंजन ने अपने श्वांसों द्वारा चार वेद उत्पन्न किए। उनको गुप्त वाणी द्वारा आज्ञा दी कि सागर में निवास करो) चारों वेद निकले वह ब्रह्मा ने लिए। वस्तु लेकर तीनों बच्चे माता के पास आए तब माता ने कहा कि चारों वेदों को ब्रह्मा रखे व पढे।

नोट :- वास्तव में पूर्णब्रह्म ने, ब्रह्म अर्थात् काल को पाँच वेद प्रदान किए थे। लेकिन ब्रह्म ने केवल चार वेदों को प्रकट किया। पाँचवां वेद छुपा दिया। जो पूर्ण परमात्मा ने स्वयं प्रकट होकर कविर्गिर्भीः अर्थात् कविर्वाणी (कबीर वाणी) द्वारा लोकोक्तियों व दोहों के माध्यम से प्रकट किया है।

दूसरी बार सागर मन्थन किया तो तीन कन्याऐं मिली। माता ने तीनों को बांट दिया। प्रकृति (दुर्गा) ने अपने ही अन्य तीन रूप (सावित्री,लक्ष्मी तथा पार्वती) धारण किए तथा समुन्द्र में छुपा दी। सागर मन्थन के समय बाहर आ गई। वही प्रकृति तीन रूप हुई तथा भगवान ब्रह्मा को सावित्री, भगवान विष्णु को लक्ष्मी, भगवान शंकर को पार्वती पत्नी रूप में दी। तीनों ने भोग विलास किया, सुर तथा असुर दोनों पैदा हुए।

{जब तीसरी बार सागर मन्थन किया तो चौदह रत्न ब्रह्मा को तथा अमृत विष्णु को व देवताओं को, मद्य(शराब) असुरों को तथा विष परमार्थ शिव ने अपने कंठ में ठहराया। यह तो बहुत बाद की बात है।} जब ब्रह्मा वेद पढ़ने लगा तो पता चला कि कोई सर्व ब्रह्माण्डों की रचना करने वाला कुल का मालिक पुरूष (प्रभु) और है। तब ब्रह्मा जी ने विष्णु जी व शंकर जी को बताया कि वेदों में वर्णन है कि सृजनहार कोई और प्रभु है परन्तु वेद कहते हैं कि भेद हम भी नहीं जानते, उसके लिए संकेत है कि किसी तत्वदर्शी संत से पूछो। तब ब्रह्मा माता के पास आया और सब वृतांत कह सुनाया। माता कहा करती थी कि मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है। मैं ही कर्ता हूँ। मैं ही सर्वशक्तिमान हूँ परन्तु ब्रह्मा ने कहा कि वेद ईश्वर कृत हैं यह झूठ नहीं हो सकते। दुर्गा ने कहा कि तेरा पिता तुझे दर्शन नहीं देगा, उसने प्रतिज्ञा की हुई है। तब ब्रह्मा ने कहा माता जी अब आप की बात पर अविश्वास हो गया है। मैं उस पुरूष (प्रभु) का पता लगाकर ही रहूँगा। दुर्गा ने कहा कि यदि वह तुझे दर्शन नहीं देगा तो तुम क्या करोगे? ब्रह्मा ने कहा कि मैं आपको शक्ल नहीं दिखाऊँगा। दूसरी तरफ ज्योति निरंजन ने कसम खाई है कि मैं अव्यक्त रहूँगा किसी को दर्शन नहीं दूंगा अर्थात् 21

ब्रह्माण्ड में कभी भी अपने वास्तविक काल रूप में आकार में नहीं आऊँगा।

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 24

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः।
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्।।24।।

अनुवाद : (अबुद्धयः) बुद्धिहीन लोग (मम्) मेरे (अनुतमम्) अश्रेष्ठ (अव्ययम्) अटल (परम्) परम (भावम्) भावको (अजानन्तः) न जानते हुए (अव्यक्तम्) अदंश्यमान (माम्) मुझ कालको (व्यक्तिम्) नर रूप आकार में कंष्ण (आपन्नम्) प्राप्त हुआ (मन्यन्ते) मानते हैं।

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 25

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावंतः।
मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम्।।25।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (योगमाया समावंतः) योगमायासे छिपा हुआ (सर्वस्य) सबके (प्रकाशः) प्रत्यक्ष (न) नहीं होता अर्थात् अदंश्य अर्थात् अव्यक्त रहता हूँ इसलिये (अजम्) जन्म न लेने वाले (अव्ययम्) अविनाशी अटल भावको (अयम्) यह (मूढः) अज्ञानी (लोकः) जनसमुदाय संसार (माम्) मुझे (न) नहीं (अभिजानाति) जानता अर्थात् मुझको कंष्ण समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस मंत्र में कह रहा है कि मैं श्री कंष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता।

"ब्रह्मा का अपने पिता (काल/ब्रह्म) की प्राप्ति के लिए प्रयत्न"

तब दुर्गा ने ब्रह्मा जी से कहा कि अलख निरंजन तुम्हारा पिता है परन्तु वह तुम्हें दर्शन नहीं देगा। ब्रह्मा ने कहा कि मैं दर्शन करके ही लौटूंगा। माता ने पूछा कि यदि तुझे दर्शन नहीं हुए तो क्या करेगा ? ब्रह्मा ने कहा मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। यदि पिता के दर्शन नहीं हुए तो मैं आपके समक्ष नहीं आऊंगा। यह कह कर ब्रह्मा जी व्याकुल होकर उत्तर दिशा की तरफ चल दिया जहाँ अन्धेरा ही अन्धेरा है। वहाँ ब्रह्मा ने चार युग तक ध्यान लगाया परन्तु कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई। काल ने आकाशवाणी की कि दुर्गा संष्टि रचना क्यों नहीं की ? भवानी ने कहा कि आप का ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा जिद्द करके आप की तलाश में गया है। ब्रह्म (काल) ने कहा उसे वापिस बुला लो। मैं उसे दर्शन नहीं दूँगा। ब्रह्मा के बिना जीव उत्पति का सब कार्य असम्भव है। तब दुर्गा (प्रकंति) ने अपनी शब्द शक्ति से गायत्री नाम की लड़की उत्पन्न की तथा उसे ब्रह्मा को लौटा लाने को कहा। गायत्री ब्रह्मा जी के पास गई परंतु ब्रह्मा जी समाधि लगाए हुए थे उन्हें कोई आभास ही नहीं था कि कोई आया है। तब आदि कुमारी (प्रकंति) ने गायत्री को ध्यान द्वारा बताया कि इस के चरण स्पर्श कर। तब गायत्री ने ऐसा ही किया। ब्रह्मा जी का ध्यान भंग हुआ तो क्रोध वश बोले कि कौन पापिन है जिसने मेरा ध्यान भंग किया है। मैं तुझे शाप दूंगा। गायत्री कहने लगी कि मेरा दोष नहीं है पहले मेरी बात

सुनो तब शाप देना। मेरे को माता ने तुम्हें लौटा लाने को कहा है क्योंकि आपके बिना जीव उत्पत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मा ने कहा कि मैं कैसे जाऊँ? पिता जी के दर्शन हुए नहीं, ऐसे जाऊँ तो मेरा उपहास होगा। यदि आप माता जी के समक्ष यह कह दें कि ब्रह्मा ने पिता (ज्योति निरंजन) के दर्शन हुए हैं, मैंने अपनी आँखो से देखा है तो मैं आपके साथ चलूं। तब गायत्री ने कहा कि आप मेरे साथ संभोग (सैक्स) करोगे तो मैं आपकी झूठी साक्षी (गवाही) भरूंगी। तब ब्रह्मा ने सोचा कि पिता के दर्शन हुए नहीं, वैसे जाऊँ तो माता के सामने शर्म लगेगी और चारा नहीं दिखाई दिया, फिर गायत्री से रति क्रिया (संभोग) की।

तब गायत्री ने कहा कि क्यों न एक गवाह और तैयार किया जाए। ब्रह्मा ने कहा बहुत ही अच्छा है। तब गायत्री ने शब्द शक्ति से एक लड़की (पुहपवति नाम की) पैदा की तथा उससे दोनों ने कहा कि आप गवाही देना कि ब्रह्मा ने पिता के दर्शन किए हैं। तब पुहपवति ने कहा कि मैं क्यों झूठी गवाही दूँ ? हाँ, यदि ब्रह्मा मेरे से रति क्रिया (संभोग) करे तो गवाही दे सकती हूँ। गायत्री ने ब्रह्मा को समझाया (उकसाया) कि और कोई चारा नहीं है तब ब्रह्मा ने पुहपवति से संभोग किया तो तीनों मिलकर आदि माया (प्रकृति) के पास आए। दोनों देवियों ने उपरोक्त शर्त इसलिए रखी थी कि यदि ब्रह्मा माता के सामने हमारी झूठी गवाही को बता देगा तो माता हमें शाप दे देगी। इसलिए उसे भी दोषी बना लिया।

(यहाँ महाराज गरीबदास जी कहते हैं कि – ''दास गरीब यह चूक धुरों धुर'')

"माता (दुर्गा) द्वारा ब्रह्मा को शाप देना"

तब माता ने ब्रह्मा से पूछा क्या तुझे तेरे पिता के दर्शन हुए? ब्रह्मा ने कहा हाँ मुझे पिता के दर्शन हुए हैं। दुर्गा ने कहा साक्षी बता। तब ब्रह्मा ने कहा इन दोनों के समक्ष साक्षात्कार हुआ है। देवी ने उन दोनों लड़कियों से पूछा क्या तुम्हारे सामने ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है तब दोनों ने कहा कि हाँ, हमने अपनी आँखों से देखा है। फिर भवानी (प्रकृति) को संशय हुआ कि मुझे तो ब्रह्म ने कहा था कि मैं किसी को दर्शन नहीं दूंगा, परन्तु ये कहते हैं कि दर्शन हुए हैं। तब अष्टंगी ने ध्यान लगाया और काल/ज्योति निरंजन से पूछा कि यह क्या कहानी है? ज्योति निंरजन जी ने कहा कि ये तीनों झूठ बोल रहे हैं। तब माता ने कहा तुम झूठ बोल रहे हो। आकाशवाणी हुई है कि इन्हें कोई दर्शन नहीं हुए। यह बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि माता जी मैं सौगंध खाकर पिता की तलाश करने गया था। परन्तु पिता (ब्रह्म) के दर्शन हुए नहीं। आप के पास आने में शर्म लग रही थी। इसलिए हमने झूठ बोल दिया। तब माता (दुर्गा) ने कहा कि अब मैं तुम्हें शाप देती हूँ।

<u>ब्रह्मा को शॉप</u> : -- तेरी पूजा जग में नहीं होगी। आगे तेरे वंशज होंगे वे बहुत पाखण्ड करेंगे। झूठी बात बना कर जग को ठगेंगे। ऊपर से तो कर्म काण्ड करते

दिखाई देंगे अन्दर से विकार करेंगे। कथा पुराणों को पढ़कर सुनाया करेंगे, स्वयं को ज्ञान नहीं होगा कि सद्ग्रन्थों में वास्तविकता क्या है, फिर भी मान वश तथा धन प्राप्ति के लिए गुरु बन कर अनुयाइयों को लोकवेद (शास्त्र विरुद्ध दंत कथा) सुनाया करेंगे। देवी-देवों की पूजा करके तथा करवाके, दूसरों की निन्दा करके कष्ट पर कष्ट उठायेंगे। जो उनके अनुयाई होंगे उनको परमार्थ नहीं बताएंगे। दक्षिणा के लिए जगत को गुमराह करते रहेंगे। अपने आपको सबसे अच्छा मानेंगे, दूसरों को नीचा समझेंगे। जब माता के मुख से यह सुना तो ब्रह्मा मुर्छित होकर जमीन पर गिर गया। बहुत समय उपरान्त होश में आया।

गायत्री को शॉप : -- तेरे कई सांड पति होंगे। तू मतलोक में गाय बनेगी।

पुहपवति को शॉप : -- तेरी जगह गंदगी में होगी। तेरे फूलों को कोई पूजा में नहीं लाएगा। इस झूठी गवाही के कारण तुझे यह नरक भोगना होगा। तेरा नाम केवड़ा केतकी होगा। (हरियाणा में कुसोंधी कहते हैं। यह गंदगी (कुरड़ियों) वाली जगह पर होती है।)

इस प्रकार तीनों को शाप देकर माता भवानी बहुत पछताई। {इस प्रकार पहले तो जीव बिना सोचे मन (काल निरंजन) के प्रभाव से गलत कार्य कर देता है परन्तु जब आत्मा (सतपुरूष अंश) के प्रभाव से उसे ज्ञान होता है तो पीछे पछताना पड़ता है। जिस प्रकार माता-पिता अपने बच्चों को छोटी सी गलती के कारण ताड़ते हैं (क्रोधवश होकर) परन्तु बाद में बहुत पछताते हैं। यही प्रक्रिया मन (काल-निरंजन) के प्रभाव से सर्व जीवों में क्रियावान हो रही है।} हाँ, यहाँ एक बात विशेष है कि निरंजन (काल-ब्रह्म) ने भी अपना कानून बना रखा है कि यदि कोई जीव किसी दुर्बल जीव को सताएगा तो उसे उसका बदला देना पड़ेगा। जब आदि भवानी (प्रकति, अष्टंगी) ने ब्रह्मा, गायत्री व पुहपवति को शाप दिया तो अलख निंरजन (ब्रह्म-काल) ने कहा कि हे भवानी (प्रकति/अष्टंगी) यह आपने अच्छा नहीं किया। अब मैं (निरंजन) आपको शाप देता हूँ कि द्वापर युग में तेरे भी पाँच पति होंगे। (द्रोपदी ही आदिमाया का अवतार हुई है।) जब यह आकाश वाणी सुनी तो आदि माया ने कहा कि हे ज्योति निंरजन (काल) मैं तेरे वश पड़ी हूँ जो चाहे सो कर ले।

"विष्णु का अपने पिता (काल/ब्रह्म) की प्राप्ति के लिए प्रस्थान व माता का आशीर्वाद पाना"

इसके बाद विष्णु से प्रकति ने कहा कि पुत्र तू भी अपने पिता का पता लगा ले। तब विष्णु अपने पिता जी काल (ब्रह्म) का पता करते-करते पाताल लोक में चले गए, जहाँ शेषनाग था। उसने विष्णु को अपनी सीमा में प्रविष्ट होते देख कर क्रोधित हो कर जहर भरा फुंकारा मारा। उसके विष के प्रभाव से विष्णु जी का रंग सांवला हो गया, जैसे स्प्रे पेंट हो जाता है। तब विष्णु ने चाहा कि इस नाग को मजा चखाना

चाहिए। तब ज्योति निरंजन (काल) ने देखा कि अब विष्णु को शांत करना चाहिए। तब आकाशवाणी हुई कि विष्णु अब तू अपनी माता जी के पास जा और सत्य-सत्य सारा विवरण बता देना तथा जो कष्ट आपको शेषनाग से हुआ है, इसका प्रतिशोध द्वापर युग में लेना। द्वापर युग में आप (विष्णु) तो कंष्ण अवतार धारण करोगे और कालीदह में कालिन्द्री नामक नाग, शेष नाग का अवतार होगा।

ऊँच होई के नीच सतावै, ताकर ओएल (बदला) मोही सों पावै।
जो जीव देई पीर पुनी काँहु, हम पुनि ओएल दिवावें ताहूँ।।

तब विष्णु जी माता जी के पास आए तथा सत्य-सत्य कह दिया कि मुझे पिता के दर्शन नहीं हुए। इस बात से माता (प्रकंति) बहुत प्रसन्न हुई और कहा कि पुत्र तू सत्यवादी है। अब मैं अपनी शक्ति से आपको तेरे पिता से मिलाती हूँ तथा तेरे मन का संशय खत्म करती हूँ।

कबीर, देख पुत्र तोहि पिता भीटाऊँ, तौरे मन का धोखा मिटाऊँ।
मन स्वरूप कर्ता कह जानों, मन ते दूजा और न मानो।
स्वर्ग पाताल दौर मन केरा, मन अस्थीर मन अहै अनेरा।
निंरकार मन ही को कहिए, मन की आस निश दिन रहिए।
देख हूँ पलटि सुन्य मह ज्योति, जहाँ पर झिलमिल झालर होती।।

इस प्रकार माता (अष्टंगी, प्रकंति) ने विष्णु से कहा कि मन ही जग का कर्ता है, यही ज्योति निरंजन है। ध्यान में जो एक हजार ज्योतियाँ नजर आती हैं वही उसका रूप है। जो शंख, घण्टा आदि का बाजा सुना, यह महास्वर्ग में निरंजन का ही बज रहा है। तब माता (अष्टंगी, प्रकंति) ने कहा कि हे पुत्र तुम सब देवों के सरताज हो और तेरी हर कामना व कार्य मैं पूर्ण करूंगी। तेरी पूजा सर्व जग में होगी। आपने मुझे सच-सच बताया है। काल के इक्कीस ब्रह्माण्डों के प्राणियों की विशेष आदत है कि अपनी व्यर्थ महिमा बनाता है। जैसे दुर्गा जी श्री विष्णु जी को कह रही है कि तेरी पूजा जग में होगी। मैंने तुझे तेरे पिता के दर्शन करा दिए। दुर्गा ने केवल प्रकाश दिखा कर श्री विष्णु जी को बहका दिया। श्री विष्णु जी भी प्रभु की यही स्थिति अपने अनुयाइयों को समझाने लगे कि परमात्मा का केवल प्रकाश दिखाई देता है। परमात्मा निराकार है। इसके बाद आदि भवानी रूद्र(महेश जी) के पास गई तथा कहा कि महेश तू भी कर ले अपने पिता की खोज तेरे दोनों भाइयों को तो तुम्हारे पिता के दर्शन नहीं हुए उनको जो देना था वह प्रदान कर दिया है अब आप माँगो जो माँगना है। तब महेश ने कहा कि हे जननी ! मेरे दोनों बड़े भाईयों को पिता के दर्शन नहीं हुए फिर प्रयत्न करना व्यर्थ है। कंपा मुझे ऐसा वर दो कि मैं अमर (मंत्युंजय) हो जाऊँ। तब माता ने कहा कि यह मैं नहीं कर सकती। हाँ युक्ति बता सकती हूँ, जिससे तेरी आयु सबसे लम्बी बनी रहेगी। विधि योग समाधि है (इसलिए महादेव जी ज्यादातर समाधि में ही रहते हैं)। इस प्रकार माता (अष्टंगी, प्रकंति) ने तीनों पुत्रों को विभाग बांट दिए : --

भगवान ब्रह्मा जी को काल लोक में लख चौरासी के चोले (शरीर) रचने (बनाने) का अर्थात् रजोगुण प्रभावित करके संतान उत्पत्ति के लिए विवश करके जीव उत्पत्ति कराने का विभाग प्रदान किया। भगवान विष्णु जी को इन जीवों के पालन पोषण (कर्मानुसार) करने, तथा मोह-ममता उत्पन्न करके स्थिति बनाए रखने का विभाग दिया।

भगवान शिव शंकर (महादेव) को संहार करने का विभाग प्रदान किया क्योंकि इनके पिता निरंजन को एक लाख मानव शरीर धारी जीव प्रतिदिन खाने पड़ते हैं।

यहां पर मन में एक प्रश्न उत्पन्न होगा कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर जी से उत्पत्ति, स्थिति और संहार कैसे होता है। ये तीनों अपने-२ लोक में रहते हैं। जैसे आजकल संचार प्रणाली को चलाने के लिए उपग्रहों को ऊपर आसमान में छोड़ा जाता है और वे नीचे पंथ्वी पर संचार प्रणाली को चलाते हैं। ठीक इसी प्रकार ये तीनों देव जहां भी रहते हैं इनके शरीर से निकलने वाले सूक्ष्म गुण की तरंगें तीनों लोकों में अपने आप हर प्राणी पर प्रभाव बनाए रहती है।

उपरोक्त विवरण एक ब्रह्माण्ड में ब्रह्म (काल) की रचना का है। ऐसे-ऐसे क्षर पुरुष (काल) के इक्कीस ब्रह्माण्ड हैं।

परन्तु क्षर पुरूष (काल) स्वयं व्यक्त अर्थात् वास्तविक शरीर रूप में सबके सामने नहीं आता। उसी को प्राप्त करने के लिए तीनों देवों (ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी) को वेदों में वर्णित विधि अनुसार भरसक साधना करने पर भी ब्रह्म (काल) के दर्शन नहीं हुए। बाद में ऋषियों ने वेदों को पढ़ा। उसमें लिखा है कि 'अग्नेः तनूर् असि' (पवित्र यजुर्वेद अ. 1 मंत्र 15) परमेश्वर सशरीर है तथा पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 1 में लिखा है कि 'अग्नेः तनूर् असि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूर् असि'। इस मंत्र में दो बार वेद गवाही दे रहा है कि सर्वव्यापक, सर्वपालन कर्ता सतपुरुष सशरीर है। पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 8 में कहा है कि (कविर् मनिषी) जिस परमेश्वर की सर्व प्राणियों को चाह है, वह कविर् अर्थात् कबीर है। उसका शरीर बिना नाड़ी (अस्नाविरम्) का है, (शुक्रम्) वीर्य से बनी पाँच तत्व से बनी भौतिक (अकायम्) काया रहित है। वह सर्व का मालिक सर्वोपरि सत्यलोक में विराजमान है, उस परमेश्वर का तेजपुंज का (स्वर्ज्योति) स्वयं प्रकाशित शरीर है जो शब्द रूप अर्थात् अविनाशी है। वही कविर्देव (कबीर परमेश्वर) है जो सर्व ब्रह्माण्डों की रचना करने वाला (व्यदधाता) सर्व ब्रह्माण्डों का रचनहार (स्वयम्भूः) स्वयं प्रकट होने वाला (यथा तथ्य अर्थान्) वास्तव में (शाश्वत्) अविनाशी है (गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में भी प्रमाण है।) भावार्थ है कि पूर्ण ब्रह्म का शरीर का नाम कबीर (कविर देव) है। उस परमेश्वर का शरीर नूर तत्व से बना है। परमात्मा का शरीर अति सूक्ष्म है जो उस साधक को दिखाई देता है जिसकी दिव्य दंष्टि खुल चुकी है। इस प्रकार जीव का भी सुक्ष्म शरीर है जिसके ऊपर पाँच तत्व का खोल

(कवर) अर्थात् पाँच तत्व की काया चढ़ी होती है जो माता-पिता के संयोग से (शुक्रम) वीर्य से बनी है। शरीर त्यागने के पश्चात् भी जीव का सुक्ष्म शरीर साथ रहता है। वह शरीर उसी साधक को दिखाई देता है जिसकी दिव्य दृष्टि खुल चुकी है। इस प्रकार परमात्मा व जीव की स्थिति को समझें। वेदों में ओ३म् नाम के स्मरण का प्रमाण है जो केवल ब्रह्म साधना है। इस उद्देश्य से ओ३म् नाम के जाप को पूर्ण ब्रह्म का मान कर ऋषियों ने भी हजारों वर्ष हठयोग (समाधि लगा कर) करके प्रभु प्राप्ति की चेष्टा की, परन्तु प्रभु दर्शन नहीं हुए, सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। उन्हीं सिद्धी रूपी खिलौनों से खेल कर ऋषि भी जन्म-मृत्यु के चक्र में ही रह गए तथा अपने अनुभव के शास्त्रों में परमात्मा को निराकार लिख दिया। ब्रह्म (काल) ने कसम खाई है कि मैं अपने वास्तविक रूप में किसी को दर्शन नहीं दूँगा। मुझे अव्यक्त जाना करेंगे (अव्यक्त का भावार्थ है कि कोई आकार में है परन्तु व्यक्तिगत रूप से स्थूल रूप में दर्शन नहीं देता। जैसे आकाश में बादल छा जाने पर दिन के समय सूर्य अदृश हो जाता है। वह दृश्यमान नहीं है, परन्तु वास्तव में बादलों के पार ज्यों का त्यों है, इस अवस्था को अव्यक्त कहते हैं।))। (प्रमाण के लिए गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25, अध्याय 11 श्लोक 48 तथा 32)

पवित्र गीता जी बोलने वाला ब्रह्म (काल) श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके कह रहा है कि अर्जुन मैं बढ़ा हुआ काल हूँ और सर्व को खाने के लिए आया हूँ। (गीता अध्याय 11 का श्लोक नं. 32) यह मेरा वास्तविक रूप है, इसको तेरे अतिरिक्त न तो कोई पहले देख सका तथा न कोई आगे देख सकता है अर्थात् वेदों में वर्णित यज्ञ-जप-तप तथा ओ३म् नाम आदि की विधि से मेरे इस वास्तविक स्वरूप के दर्शन नहीं हो सकते। (गीता अध्याय 11 श्लोक नं 48) मैं कृष्ण नहीं हूँ, ये मूर्ख लोग कृष्ण रूप में मुझ अव्यक्त को व्यक्त (मनुष्य रूप) मान रहे हैं। क्योंकि ये मेरे घटिया नियम से अपरिचित हैं कि मैं कभी वास्तविक इस काल रूप में सबके सामने नहीं आता। अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ (गीता अध्याय 7 श्लोक नं. 24-25) विचार करें :- अपने छुपे रहने वाले विधान को स्वयं अश्रेष्ठ (अनुत्तम) क्यों कह रहे हैं?

यदि पिता अपनी सन्तान को भी दर्शन नहीं देता तो उसमें कोई त्रुटि है जिस कारण से छुपा है तथा सुविधाएं भी प्रदान कर रहा है। काल (ब्रह्म) को शापवश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करना पड़ता है तथा 25 प्रतिशत प्रतिदिन जो ज्यादा उत्पन्न होते हैं उन्हें ठिकाने लगाने के लिए तथा कर्म भोग का दण्ड देने के लिए चौरासी लाख योनियों की रचना की हुई है। यदि सबके सामने बैठ कर किसी की पुत्री, किसी की पत्नी, किसी के पुत्र, माता-पिता को खा गए तो सर्व को ब्रह्म से घृणा हो जाए तथा जब भी कभी पूर्ण परमात्मा कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) स्वयं आए या अपना कोई संदेशवाहक (दूत) भेंजे तो सर्व प्राणी सत्यभक्ति करके काल के जाल से निकल जाएं।

ब्रह्म लोक का लघु चित्र

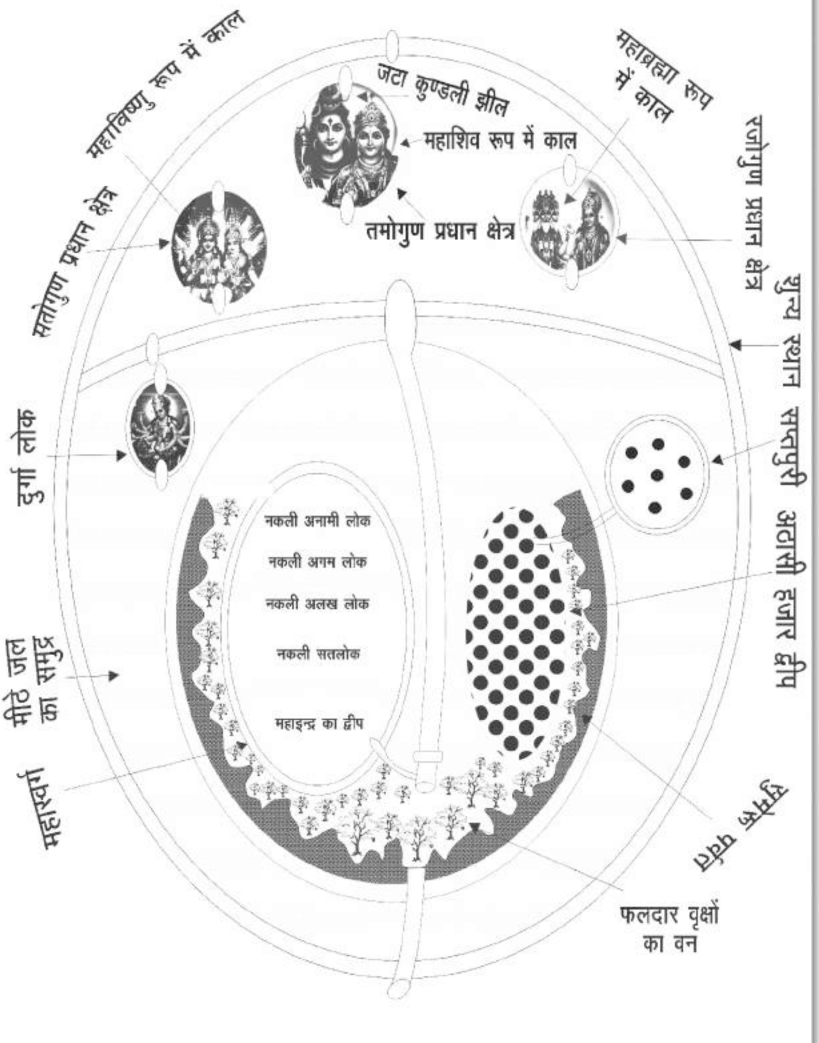

ज्योति निरंजन (काल) ब्रह्म के लोक (21 ब्रह्मण्ड) का लघु चित्र

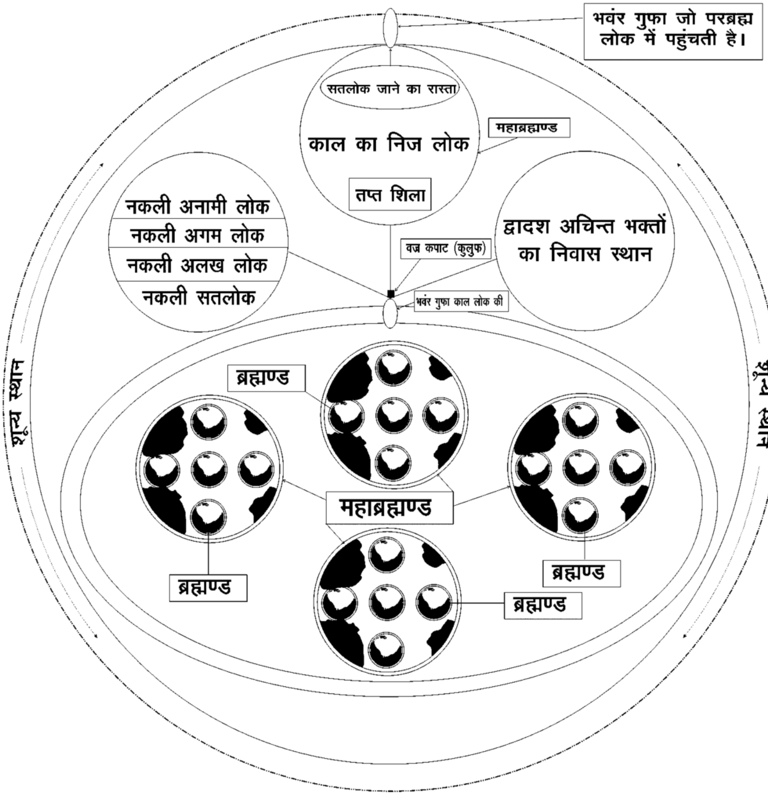

इसलिए धोखा देकर रखता है तथा पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18,24,25 में अपनी साधना से होने वाली मुक्ति (गति) को भी (अनुत्तमाम्) अति अश्रेष्ठ कहा है तथा अपने विधान (नियम)को भी (अनुत्तम) अश्रेष्ठ कहा है।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में बने ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग बनाया है। महास्वर्ग में एक स्थान पर नकली सतलोक - नकली अलख लोक - नकली अगम लोक तथा नकली अनामी लोक की रचना प्राणियों को धोखा देने के लिए प्रकृति (दुर्गा/आदि माया) द्वारा करवा रखी है। कबीर साहेब का एक शब्द है 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' में वाणी है कि 'काया भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिण्ड मंझारा है। माया अविगत जाल पसारा, सो कारीगर भारा है। आदि माया किन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिण्ड दिखाई, अविगत रचना रचि अण्ड माहि वाका प्रतिबिम्ब डारा है।'

एक ब्रह्माण्ड में अन्य लोकों की भी रचना है, जैसे श्री ब्रह्मा जी का लोक, श्री विष्णु जी का लोक, श्री शिव जी का लोक। जहाँ पर बैठकर तीनों प्रभु नीचे के तीन लोकों (स्वर्गलोक अर्थात् इन्द्र का लोक - पृथ्वी लोक तथा पाताल लोक) पर एक - एक विभाग के मालिक बन कर प्रभुता करते हैं तथा अपने पिता काल के खाने के लिए प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कार्यभार संभालते हैं। तीनों प्रभुओं की भी जन्म व मृत्यु होती है। तब काल इन्हें भी खाता है। इसी ब्रह्माण्ड {इसे अण्ड भी कहते हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड की बनावट अण्डाकार है, इसे पिण्ड भी कहते हैं क्योंकि शरीर (पिण्ड) में एक ब्रह्माण्ड की रचना कमलों में टी. वी. की तरह देखी जाती है} में एक मानसरोवर तथा धर्मराय (न्यायधीश) का भी लोक है तथा एक गुप्त स्थान पर पूर्ण परमात्मा अन्य रूप धारण करके रहता है जैसे प्रत्येक देश का राजदूत भवन होता है। वहाँ पर कोई नहीं जा सकता। वहाँ पर वे आत्माऐं रहती हैं जिनकी सत्यलोक की भक्ति अधूरी रहती है। जब भक्ति युग आता है तो उस समय परमेश्वर कबीर जी अपना प्रतिनिधी पूर्ण संत सतगुरु भेजते हैं। इन पुण्यात्माओं को पृथ्वी पर उस समय मानव शरीर प्राप्त होता है तथा ये शीघ्र ही सत भक्ति पर लग जाते हैं तथा सतगुरु से दीक्षा प्राप्त करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर जाते हैं। उस स्थान पर रहने वाले हंस आत्माओं की निजी भक्ति कमाई खर्च नहीं होती। परमात्मा के भण्डार से सर्व सुविधाऐं उपलब्ध होती हैं। ब्रह्म (काल) के उपासकों की भक्ति कमाई स्वर्ग-महा स्वर्ग में समाप्त हो जाती है क्योंकि इस काल लोक (ब्रह्म लोक) तथा परब्रह्म लोक में प्राणियों को अपना किया कर्मफल ही मिलता है।

क्षर पुरुष (ब्रह्म) ने अपने 20 ब्रह्माण्डों को चार महाब्रह्माण्डों में विभाजित किया है। एक महाब्रह्माण्ड में पाँच ब्रह्माण्डों का समूह बनाया है तथा चारों ओर से अण्डाकार गोलाई (परिधि) में रोका है तथा चारों महा ब्रह्माण्डों को भी फिर

अण्डाकार गोलाई (परिधि) में रोका है। इक्कीसवें ब्रह्माण्ड की रचना एक महाब्रह्माण्ड जितना स्थान लेकर की है। इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में प्रवेश होते ही तीन रास्ते बनाए हैं। इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में भी बांई तरफ नकली सतलोक, नकली अलख लोक, नकली अगम लोक, नकली अनामी लोक की रचना प्राणियों को धोखे में रखने के लिए आदि माया (दुर्गा) से करवाई है तथा दांई तरफ बारह सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म साधकों (भक्तों) को रखता है। फिर प्रत्येक युग में उन्हें अपने संदेश वाहक (सन्त सतगुरू) बनाकर पृथ्वी पर भेजता है, जो शास्त्र विधि रहित साधना व ज्ञान बताते हैं तथा स्वयं भी भक्तिहीन हो जाते हैं तथा अनुयाइयों को भी काल जाल में फंसा जाते हैं। फिर वे गुरु जी तथा अनुयाई दोनों ही नरक में जाते हैं। फिर सामने एक ताला (कुलुफ) लगा रखा है। वह रास्ता काल (ब्रह्म) के निज लोक में जाता है। जहाँ पर यह ब्रह्म (काल) अपने वास्तविक मानव सदृश काल रूप में रहता है। इसी स्थान पर एक पत्थर की टुकड़ी तवे के आकार की (चपाती पकाने की लोहे की गोल प्लेट सी होती है) स्वतः गर्म रहती है। जिस पर एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को भूनकर उनमें से गंदगी निकाल कर खाता है। उस समय सर्व प्राणी बहुत पीड़ा अनुभव करते हैं तथा हाहाकार मच जाती है। फिर कुछ समय उपरान्त वे बेहोश हो जाते हैं। जीव मरता नहीं। फिर धर्मराय के लोक में जाकर कर्माधार से अन्य जन्म प्राप्त करते हैं तथा जन्म-मृत्यु का चक्कर बना रहता है। उपरोक्त सामने लगा ताला ब्रह्म (काल) केवल अपने आहार वाले प्राणियों के लिए कुछ क्षण के लिए खोलता है। पूर्ण परमात्मा के सत्यनाम व सारनाम से यह ताला स्वयं खुल जाता है। ऐसे काल का जाल पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर साहेब) ने स्वयं ही अपने निजी भक्त धर्मदास जी को समझाया।

“परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्डों की स्थापना”

कबीर परमेश्वर (कविर्देव) ने आगे बताया है कि परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने अपने कार्य में गफलत की क्योंकि यह मानसरोवर में सो गया तथा जब परमेश्वर (मैंनें अर्थात् कबीर साहेब ने) उस सरोवर में अण्डा छोड़ा तो अक्षर पुरुष (परब्रह्म) ने उसे क्रोध से देखा। इन दोनों अपराधों के कारण इसे भी सात संख ब्रह्माण्ड़ों सहित सतलोक से बाहर कर दिया। अन्य कारण अक्षर पुरुष (परब्रह्म) अपने साथी ब्रह्म (क्षर पुरुष) की विदाई में व्याकुल होकर परमपिता कविर्देव (कबीर परमेश्वर) की याद भूलकर उसी को याद करने लगा तथा सोचा कि क्षर पुरुष (ब्रह्म) तो बहुत आनन्द मना रहा होगा, वह स्वतंत्र राज्य करेगा, मैं पीछे रह गया तथा अन्य कुछ आत्माऐं जो परब्रह्म के साथ सात संख ब्रह्माण्डों में जन्म-मृत्यु का कर्मदण्ड भोग रही हैं, उन हंस आत्माओं की विदाई की याद में खो गई जो

ब्रह्म (काल) के साथ इक्कीस ब्रह्माण्डों में फंसी हैं तथा पूर्ण परमात्मा, सुखदाई कविर्देव की याद भुला दी। परमेश्वर कविर् देव के बार-बार समझाने पर भी आस्था कम नहीं हुई। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने सोचा कि मैं भी अलग स्थान प्राप्त करूं तो अच्छा रहे। यह सोच कर राज्य प्राप्ति की इच्छा से सारनाम का जाप प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार अन्य आत्माओं ने (जो परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्डों में फंसी हैं) सोचा कि वे जो ब्रह्म के साथ आत्माऐं गई हैं वे तो वहाँ मौज-मस्ती मनाऐंगे, हम पीछे रह गये। परब्रह्म के मन में यह धारणा बनी कि क्षर पुरुष अलग होकर बहुत सुखी होगा। यह विचार कर अन्तरात्मा से भिन्न स्थान प्राप्ति की ठान ली। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने हठ योग नहीं किया, परन्तु केवल अलग राज्य प्राप्ति के लिए सहज ध्यान योग विशेष कसक के साथ करता रहा। अलग स्थान प्राप्त करने के लिए पागलों की तरह विचरने लगा, खाना-पीना भी त्याग दिया। अन्य कुछ आत्माऐं जो पहले काल ब्रह्म के साथ गई आत्माओं के प्रेम में व्याकुल थी, वे अक्षर पुरूष के वैराग्य पर आसक्त होकर उसे चाहने लगी। पूर्ण प्रभु के पूछने पर परब्रह्म ने अलग स्थान माँगा तथा कुछ हंसात्माओं के लिए भी याचना की। तब कविर्देव ने कहा कि जो आत्मा आपके साथ स्वेच्छा से जाना चाहें उन्हें भेज देता हूँ। पूर्ण प्रभु ने पूछा कि कौन हंस आत्मा परब्रह्म के साथ जाना चाहता है, सहमति व्यक्त करे। बहुत समय उपरान्त एक हंस ने स्वीकंति दी, फिर देखा-देखी उन सर्व आत्माओं ने भी सहमति व्यक्त कर दी। सर्व प्रथम स्वीकंति देने वाले हंस को स्त्री रूप बनाया, उसका नाम ईश्वरी माया (प्रकंति सुरति) रखा तथा अन्य आत्माओं को उस ईश्वरी माया में प्रवेश करके अचिन्त द्वारा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) के पास भेजा। (पतिव्रता पद से गिरने की सजा पाई।) कई युगों तक दोनों सात संख ब्रह्माण्डों में रहे, परन्तु परब्रह्म ने दुर्व्यवहार नहीं किया। ईश्वरी माया की स्वेच्छा से अंगीकार किया तथा अपनी शब्द शक्ति द्वारा नाखुनों से स्त्री इन्द्री (योनि) बनाई। ईश्वरी देवी की सहमति से संतान उत्पन्न की। इस लिए परब्रह्म के लोक (सात संख ब्रह्माण्डों) में प्राणियों को तप्तशिला का कष्ट नहीं है तथा वहाँ पशु-पक्षी भी ब्रह्म लोक के देवों से अच्छे चरित्र युक्त हैं। आयु भी बहुत लम्बी है, परन्तु जन्म - मंत्यु कर्माधार पर कर्मदण्ड तथा परिश्रम करके ही उदर पूर्ति होती है। स्वर्ग तथा नरक भी ऐसे ही बने हैं। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) को सात संख ब्रह्माण्ड उसके इच्छा रूपी भक्ति ध्यान अर्थात् सहज समाधि विधि से की उस की कमाई के प्रतिफल में प्रदान किये तथा सत्यलोक से भिन्न स्थान पर गोलाकार परिधि में बन्द करके सात संख ब्रह्माण्डों सहित अक्षर ब्रह्म व ईश्वरी माया को निष्कासित कर दिया।

पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) असंख्य ब्रह्माण्डों जो सत्यलोक आदि में हैं तथा ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्माण्डों तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्डों का भी प्रभु (मालिक) है

अर्थात् परमेश्वर कविर्देव कुल का मालिक है।

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी आदि के चार-चार भुजाएं तथा 16 कलाएं हैं तथा प्रकृति देवी (दुर्गा) की आठ भुजाएं हैं तथा 64 कलाएं हैं। ब्रह्म (क्षर पुरुष) की एक हजार भुजाएं हैं तथा एक हजार कलाएं है तथा इक्कीस ब्रह्माण्ड़ों का प्रभु है। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की दस हजार भुजाएं हैं तथा दस हजार कला हैं तथा सात संख ब्रह्माण्डों का प्रभु है। पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष अर्थात् सतपुरुष) की असंख्य भुजाएं तथा असंख्य कलाएं हैं तथा ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्माण्ड व परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्डों सहित असंख्य ब्रह्माण्डों का प्रभु है। प्रत्येक प्रभु अपनी सर्व भुजाओं को समेट कर केवल दो भुजाएं भी रख सकते हैं तथा जब चाहें सर्व भुजाओं को भी प्रकट कर सकते हैं। पूर्ण परमात्मा परब्रह्म के प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भी अलग स्थान बनाकर अन्य रूप में गुप्त रहता है। यूं समझो जैसे एक घूमने वाला कैमरा बाहर लगा देते हैं तथा अन्दर टी.वी. (टेलीविजन) रख देते हैं। टी.वी. पर बाहर का सर्व दृश्य नजर आता है तथा दूसरा टी.वी. बाहर रख कर अन्दर का कैमरा स्थाई करके रख दिया जाए, उसमें केवल अन्दर बैठे प्रबन्धक का चित्र दिखाई देता है। जिससे सर्व कर्मचारी सावधान रहते हैं।

इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सतलोक में बैठ कर सर्व को नियंत्रित किए हुए हैं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भी सतगुरु कविर्देव विद्यमान रहते हैं जैसे सूर्य दूर होते हुए भी अपना प्रभाव अन्य लोकों में बनाए हुए है।

"पवित्र अथर्ववेद में संष्टि रचना का प्रमाण"

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 1 :-

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्त्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः।। 1।।

ब्रह्म—ज—ज्ञानम्—प्रथमम्—पुरस्त्तात्—विसिमतः—सुरुचः—वेनः—आवः—सः—बुध्न्याः —उपमा—अस्य—विष्ठाः—सतः—च—योनिम्—असतः—च—वि वः

अनुवाद :— (प्रथमम्) प्राचीन अर्थात् सनातन (ब्रह्म) परमात्मा ने (ज) प्रकट होकर (ज्ञानम्) अपनी सूझ—बूझ से (पुरस्त्तात्) शिखर में अर्थात् सतलोक आदि को (सुरुचः) स्वइच्छा से बड़े चाव से स्वप्रकाशित (विसिमतः) सीमा रहित अर्थात् विशाल सीमा वाले भिन्न लोकों को उस (वेनः) जुलाहे ने ताने अर्थात् कपड़े की तरह बुनकर (आवः) सुरक्षित किया (च) तथा (सः) वह पूर्ण ब्रह्म ही सर्व रचना करता है (अस्य) इसलिए उसी (बुध्न्याः) मूल मालिक ने (योनिम्) मूलस्थान सत्यलोक की रचना की है (अस्य) इस के (उपमा) सदंश अर्थात् मिलते जुलते (सतः) अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म के लोक कुछ स्थाई (च) तथा (असतः) क्षर पुरुष के अस्थाई लोक आदि (वि वः) आवास स्थान भिन्न (विष्ठाः) स्थापित किए।

भावार्थ :- पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म (काल) कह रहा है कि सनातन परमेश्वर ने स्वयं अनामय (अनामी) लोक से सत्यलोक में प्रकट होकर अपनी सूझ-बूझ से कपड़े की तरह रचना करके ऊपर के सतलोक आदि को सीमा रहित स्वप्रकाशित अजर - अमर अर्थात् अविनाशी ठहराए तथा नीचे के परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म के 21 ब्रह्माण्ड व इनमें छोटी-से छोटी रचना भी उसी परमात्मा ने अस्थाई की है।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 2 :-

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे।।2।।

इयम्—पित्र्या—राष्ट्रि—एतु—अग्रे—प्रथमाय—जनुषे—भुवनेष्ठाः—तस्मा—एतम्—सुरुचम् — हवारमह्यम्—धर्मम्—श्रीणान्तु—प्रथमाय—धास्यवे

अनुवाद :— (इयम्) इसी (पित्र्या) जगतपिता परमेश्वर ने (एतु) इस (अग्रे) सर्वोत्तम् (प्रथमाय) सर्व से पहली माया परानन्दनी (राष्ट्रि) राजेश्वरी शक्ति अर्थात् पराशक्ति जिसे आकर्षण शक्ति भी कहते हैं, को (जनुषे) उत्पन्न करके (भुवनेष्ठाः) लोक स्थापना की (तस्मा) उसी परमेश्वर ने (सुरुचम्) बड़े चाव के साथ स्वेच्छा से (एतम्) इस (प्रथमाय) प्रथम उत्पत्ति की शक्ति अर्थात्। पराशक्ति के द्वारा (ह्वारमह्यम्) एक दूसरे के वियोग को रोकने अर्थात् आकर्षण शक्ति के (श्रीणान्तु) गुरूत्व आकर्षण को परमात्मा ने आदेश दिया सदा रहो उस कभी समाप्त न होने वाले (धर्मम्) स्वभाव

से (धारयवे) धारण करके ताने अर्थात् कपड़े की तरह बुनकर रोके हुए है।

भावार्थ :- जगतपिता परमेश्वर ने अपनी शब्द शक्ति से राष्ट्री अर्थात् सबसे पहली माया राजेश्वरी उत्पन्न की तथा उसी पराशक्ति के द्वारा एक-दूसरे को आकर्षण शक्ति से रोकने वाले कभी न समाप्त होने वाले गुण से उपरोक्त सर्व ब्रह्माण्डों को स्थापित किया है।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 3 :-

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ।।3।।

प्र—यः—जज्ञे—विद्वानस्य—बन्धुः—विश्वा—देवानाम्—जनिमा—विवक्ति—ब्रह्मः—ब्रह्मणः—उज्जभार—मध्यात्—निचैः—उच्चैः—स्वधा—अभिः—प्रतस्थौ

अनुवाद :— (प्र) सर्व प्रथम (देवानाम्) देवताओं व ब्रह्माण्डों की (जज्ञे) उत्पति के ज्ञान को (विद्वानस्य) जिज्ञासु भक्त का (यः) जो (बन्धुः) वास्तविक साथी अर्थात् पूर्ण परमात्मा ही अपने निज सेवक को (जनिमा) अपने द्वारा सृजन किए हुए को (विवक्ति) स्वयं ही ठीक—ठीक विस्तार पूर्वक बताता है कि (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा ने (मध्यात्) अपने मध्य से अर्थात् शब्द शक्ति से (ब्रह्मः) ब्रह्म—क्षर पुरुष अर्थात् काल को (उज्जभार) उत्पन्न करके (विश्वा) सारे संसार को अर्थात् सर्व लोकों को (उच्चैः) ऊपर सत्यलोक आदि (निचैः) नीचे परब्रह्म व ब्रह्म के सर्व ब्रह्माण्ड (स्वधा) अपनी धारण करने वाली (अभिः) आकर्षण शक्ति से (प्र तस्थौ) दोनों को अच्छी प्रकार स्थित किया।

भावार्थ :- पूर्ण परमात्मा अपने द्वारा रची सृष्टि का ज्ञान तथा सर्व आत्माओं की उत्पत्ति का ज्ञान अपने निजी दास को स्वयं ही सही बताता है कि पूर्ण परमात्मा ने अपने मध्य अर्थात् अपने शरीर से अपनी शब्द शक्ति के द्वारा ब्रह्म (क्षर पुरुष/काल) की उत्पत्ति की तथा सर्व ब्रह्माण्डों को ऊपर सतलोक, अलख लोक, अगम लोक, अनामी लोक आदि तथा नीचे परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म के 21 ब्रह्माण्डों को अपनी धारण करने वाली आकर्षण शक्ति से ठहराया हुआ है।

जैसे पूर्ण परमात्मा कबीर परमेश्वर (कविर्देव) ने अपने निजी सेवक अर्थात् सखा श्री धर्मदास जी, आदरणीय गरीबदास जी आदि को अपने द्वारा रची सृष्टि का ज्ञान स्वयं ही बताया। उपरोक्त वेद मंत्र भी यही समर्थन कर रहा है।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 4

सः हि दिवः सः पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः।।4।।

:—हि—दिवः—स—पृथिव्या—ऋतस्था—मही—क्षेमम्—रोदसी—अकस्भायत्—महान् —मही—अस्कभायद्—विजातः—धाम्—सदम्—पार्थिवम्—च—रजः

अनुवाद – (सः)उसी सर्वशक्तिमान परमात्मा ने (हि) निःसंदेह (दिवः) ऊपर के चारों दिव्य लोक जैसे सत्य लोक, अलख लोक, अगम लोक तथा अनामी अर्थात् अकह लोक अर्थात् दिव्य गुणों युक्त लोकों को (ऋतस्था) सत्य स्थिर अर्थात् अजर–अमर रूप से स्थिर किए (स) उन्हीं के समान (पंथिव्या) नीचे के पंथ्वी वाले सर्व लोकों जैसे परब्रह्म के सात संख तथा ब्रह्म/काल के इक्कीस ब्रह्माण्ड (मही) पंथ्वी तत्व से (क्षेमम्) सुरक्षा के साथ (अस्कभायत्) ठहराया (रोदसी) आकाश तत्व तथा पंथ्वी तत्व दोनों से ऊपर नीचे के ब्रह्माण्डों को{जैसे आकाश एक सुक्ष्म तत्व है, आकाश का गुण शब्द है, पूर्ण परमात्मा ने ऊपर के लोक शब्द रूप रचे जो तेजपुंज के बनाए हैं तथा नीचे के परब्रह्म (अक्षर पुरूष) के सप्त संख ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म/क्षर पुरूष के इक्कीस ब्रह्माण्डों को पंथ्वी तत्व से अस्थाई रचा} (महान्) पूर्ण परमात्मा ने (पार्थिवम्) पंथ्वी वाले (वि) भिन्न–भिन्न (धाम्) लोक (च) और (सदम्) आवास स्थान (मही) पंथ्वी तत्व से (रजः) प्रत्येक ब्रह्माण्ड में छोटे–छोटे लोकों की (जातः) रचना करके (अस्कभायत्) स्थिर किया।

भावार्थ :- ऊपर के चारों लोक सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक, अनामी लोक, यह तो अजर-अमर स्थाई अर्थात् अविनाशी रचे हैं तथा नीचे के ब्रह्म तथा परब्रह्म के लोकों को अस्थाई रचना करके तथा अन्य छोटे-छोटे लोक भी उसी परमेश्वर ने रच कर स्थिर किए।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 5

सः बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बंहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः।।5।।

सः—बुध्न्यात्—आष्ट्र—जनुषेः—अभि—अग्रम्—बंहस्पतिः—देवता—तस्य—सम्राट—अहः— यत्—शुक्रम्—ज्योतिषः—जनिष्ट—अथ—द्युमन्तः—वि—वसन्तु—विप्राः

अनुवाद :– (सः) उसी (बुध्न्यात्) मूल मालिक से (अभि–अग्रम्) सर्व प्रथम स्थान पर (आष्ट्र) अष्टँगी माया–दुर्गा अर्थात् प्रकंति देवी (जनुषेः) उत्पन्न हुई क्योंकि नीचे के परब्रह्म व ब्रह्म के लोकों का प्रथम स्थान सतलोक है यह तीसरा धाम भी कहलाता है (तस्य) इस दुर्गा का भी मालिक यही (सम्राट) राजाधिराज (बंहस्पतिः) सबसे बड़ा पति व जगतगुरु (देवता) परमेश्वर है। (यत्) जिस से (अहः) सबका वियोग हुआ (अथ) इसके बाद (ज्योतिषः) ज्योति रूप निरंजन अर्थात् काल के (शुक्रम्) वीर्य अर्थात् बीज शक्ति से (जनिष्ट) दुर्गा के उदर से उत्पन्न होकर (विप्राः) भक्त आत्माएं (वि) अलग से (द्युमन्तः) मनुष्य लोक तथा स्वर्ग लोक में ज्योति निरंजन के आदेश से दुर्गा ने कहा (वसन्तु) निवास करो, अर्थात् वे निवास करने लगी।

भावार्थ :- पूर्ण परमात्मा ने ऊपर के चारों लोकों में से जो नीचे से सबसे प्रथम अर्थात् सत्यलोक में आष्ट्रा अर्थात् अष्टंगी (प्रकंति देवी/दुर्गा) की उत्पत्ति की।

यही राजाधिराज, जगतगुरु, पूर्ण परमेश्वर (सतपुरुष) है जिससे सबका वियोग हुआ है। फिर सर्व प्राणी ज्योति निरंजन (काल) के (वीर्य) बीज से दुर्गा (आष्ट्रा) के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर स्वर्ग लोक व पृथ्वी लोक पर निवास करने लगे।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 6

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु।।6।।

नूनम्—तत्—अस्य—काव्यः—महः—देवस्य—पूर्व्यस्य—धाम—हिनोति—पूर्वे—विषिते—एष— जज्ञे—बहुभिः—साकम्—इत्था—अर्धे—ससन्—नु।

अनुवाद – (नूनम्) निसंदेह (तत्) वह पूर्ण परमेश्वर अर्थात् तत् ब्रह्म ही (अस्य) इस (काव्यः) भक्त आत्मा जो पूर्ण परमेश्वर की भक्ति विधिवत करता है को वापिस (महः) सर्वशक्तिमान (देवस्य) परमेश्वर के (पूर्व्यस्य) पहले के (धाम) लोक में अर्थात् सत्यलोक में (हिनोति) भेजता है।

(पूर्वे) पहले वाले (विषिते) विशेष चाहे हुए (एष) इस परमेश्वर को व (जज्ञे) सृष्टि उत्पति के ज्ञान को जान कर (बहुभिः) बहुत आनन्द (साकम्) के साथ (अर्धे) आधा (ससन्) सोता हुआ (इत्था) विधिवत् इस प्रकार (नु) सच्ची आत्मा से स्तुति करता है।

भावार्थ :- वही पूर्ण परमेश्वर सत्य साधना करने वाले साधक को उसी पहले वाले स्थान (सत्यलोक) में ले जाता है, जहाँ से बिछुड़ कर आए थे। वहाँ उस वास्तविक सुखदाई प्रभु को प्राप्त करके खुशी से आत्म विभोर होकर मस्ती से स्तुति करता है कि हे परमात्मा असंख्य जन्मों के भूले-भटकों को वास्तविक ठिकाना मिल गया। इसी का प्रमाण पवित्र ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 16 में भी है।

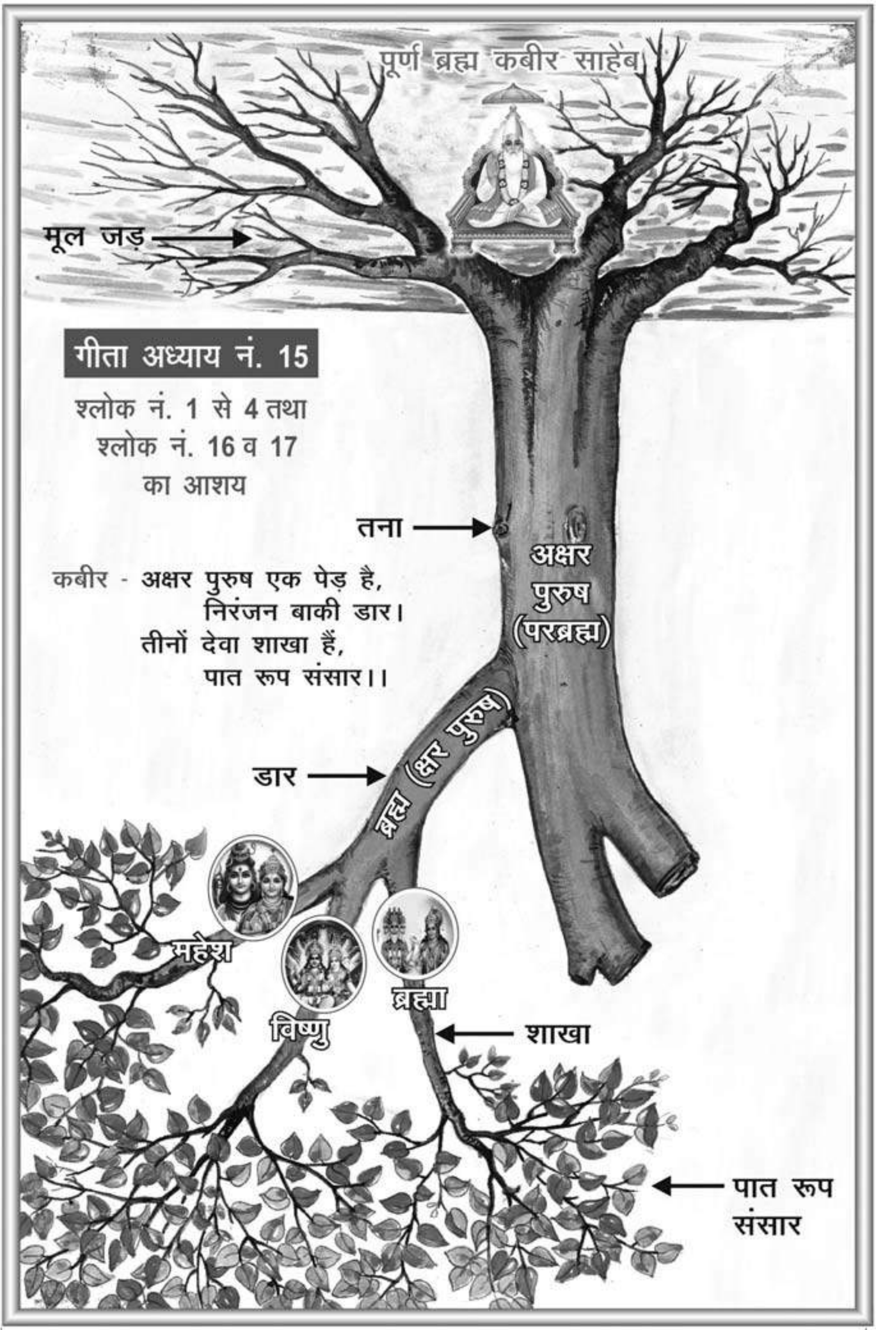

ऊपर जड़ नीचे शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष का चित्र

आदरणीय गरीबदास जी को इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) स्वयं सत्यभक्ति प्रदान करके सत्यलोक लेकर गए थे, तब अपनी अमृतवाणी में आदरणीय गरीबदास जी महाराज ने आँखों देखकर कहा:-

गरीब, अजब नगर में ले गए, हमकुँ सतगुरु आन।
झिलके बिम्ब अगाध गति, सुते चादर तान।।

अथर्ववेद काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 7

योऽथर्वाणं पित्तरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान्।।7।।

यः—अथर्वाणम्—पित्तरम्—देवबन्धुम्—बृहस्पतिम्—नमसा—अव—च—गच्छात्—त्वम्— विश्वेषाम्—जनिता—यथा—सः—कविर्देवः—न—दभायत्—स्वधावान्

अनुवाद :— (यः) जो (अथर्वाणम्) अचल अर्थात् अविनाशी (पित्तरम्) जगत पिता (देव बन्धुम्) भक्तों का वास्तविक साथी अर्थात् आत्मा का आधार (बृहस्पतिम्) जगतगुरु (च) तथा (नमसा) विनम्र पुजारी अर्थात् विधिवत् साधक को (अव) सुरक्षा के साथ (गच्छात्) सतलोक गए हुओं को अर्थात् जिनका पूर्ण मोक्ष हो गया, वे सत्यलोक में जा चुके हैं। उनको सतलोक ले जाने वाला (विश्वेषाम्) सर्व ब्रह्माण्डों की (जनिता) रचना करने वाला जगदम्बा अर्थात् माता वाले गुणों से भी युक्त (न दभायत्) काल की तरह धोखा न देने वाले (स्वधावान्) स्वभाव अर्थात् गुणों वाला (यथा) ज्यों का त्यों अर्थात् वैसा ही (सः) वह (त्वम्) आप (कविर्देवः/ कविर्देवः) कविर्देव है अर्थात् भाषा भिन्न इसे कबीर परमेश्वर भी कहते हैं।

भावार्थ :- इस मंत्र में यह भी स्पष्ट कर दिया कि उस परमेश्वर का नाम कविर्देव अर्थात् कबीर परमेश्वर है, जिसने सर्व रचना की है।

जो परमेश्वर अचल अर्थात् वास्तव में अविनाशी (गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में भी प्रमाण है) जगत् गुरु, आत्माधार, जो पूर्ण मुक्त होकर सत्यलोक गए हैं उनको सतलोक ले जाने वाला, सर्व ब्रह्माण्डों का रचनहार, काल (ब्रह्म) की तरह धोखा न देने वाला ज्यों का त्यों वह स्वयं कविर्देव अर्थात् कबीर प्रभु है। यही परमेश्वर सर्व ब्रह्माण्डों व प्राणियों को अपनी शब्द शक्ति से उत्पन्न करने के कारण (जनिता) माता भी कहलाता है तथा (पित्तरम्) पिता तथा (बन्धु) भाई भी वास्तव में यही है तथा (देव) परमेश्वर भी यही है। इसलिए इसी कविर्देव (कबीर परमेश्वर) की स्तुति किया करते हैं। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या च द्रविणंम त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम् देव देव। इसी परमेश्वर की महिमा का पवित्र ऋग्वेद मण्डल नं. 1 सूक्त नं. 24 में विस्तृत विवरण है।

"पवित्र ऋग्वेद में सृष्टि रचना का प्रमाण"

ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 1

सहस्त्रशीर्षा पुरूषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतों वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।

सहस्त्रशिर्षा—पुरूषः—सहस्त्राक्षः—सहस्त्रपात्
स—भूमिम्—विश्वतः—वृत्वा—अत्यातिष्ठत् —दशंगुलम्।

अनुवाद :— (पुरूषः) विराट रूप काल भगवान अर्थात् क्षर पुरूष (सहस्रशिर्षा) हजार सिरों वाला (सहस्राक्षः) हजार आँखों वाला (सहस्रपात्) हजार पैरों वाला है (स) वह काल (भूमिम्) पृथ्वी वाले इक्कीस ब्रह्माण्डों को (विश्वतः) सब ओर से (दशंगुलम्) दसों अंगुलियों से अर्थात् पूर्ण रूप से काबू किए हुए (वृत्वा) गोलाकार घेरे में घेर कर (अत्यातिष्ठत्) इस से बढ़कर अर्थात् अपने काल लोक में सबसे न्यारा भी इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में ठहरा है अर्थात् रहता है।

भावार्थ :- इस मंत्र में विराट (काल/ब्रह्म) का वर्णन है। (गीता अध्याय 10-11 में भी इसी काल/ब्रह्म का ऐसा ही वर्णन है अध्याय 11 मंत्र नं. 46 में अर्जुन ने कहा है कि हे सहस्राबाहु अर्थात् हजार भुजा वाले आप अपने चतुर्भुज रूप में दर्शन दीजिए)

जिसके हजारों हाथ, पैर, हजारों आँखे, कान आदि हैं वह विराट रूप काल प्रभु अपने आधीन सर्व प्राणियों को पूर्ण काबू करके अर्थात् 20 ब्रह्माण्डों को गोलाकार परिधि में रोककर स्वयं इनसे ऊपर (अलग) इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में बैठा है।

ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 2

पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।।

पुरूष—एव—इदम्—सर्वम्—यत्—भूतम्—यत्—च—भाव्यम्
उत—अमृतत्वस्य— इशानः—यत्—अन्नेन—अतिरोहति

अनुवाद :— (एव) इसी प्रकार कुछ सही तौर पर (पुरूष) भगवान है वह अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म है (च) और (इदम्) यह (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ है (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य में होगा (सर्वम्) सब (यत्) प्रयत्न से अर्थात् मेहनत द्वारा (अन्नेन) अन्न से (अतिरोहति) विकसित होता है। यह अक्षर पुरूष भी (उत) सन्देह युक्त (अमृतत्वस्य) मोक्ष का (इशानः) स्वामी है अर्थात् भगवान तो अक्षर पुरूष भी कुछ सही है परन्तु पूर्ण मोक्ष दायक नहीं है।

भावार्थ :- इस मंत्र में परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का विवरण है जो कुछ भगवान वाले लक्षणों से युक्त है, परन्तु इसकी भक्ति से भी पूर्ण मोक्ष नहीं है, इसलिए इसे संदेहयुक्त मुक्ति दाता कहा है। इसे कुछ प्रभु के गुणों युक्त इसलिए कहा है कि

यह काल की तरह तप्तशिला पर भून कर नहीं खाता। परन्तु इस परब्रह्म के लोक में भी प्राणियों को परिश्रम करके कर्माधार पर ही फल प्राप्त होता है तथा अन्न से ही सर्व प्राणियों के शरीर विकसित होते हैं, जन्म तथा मृत्यु का समय भले ही काल (क्षर पुरुष) से अधिक है, परन्तु फिर भी उत्पत्ति प्रलय तथा चौरासी लाख योनियों में यातना बनी रहती है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 3

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरूषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।

तावान्—अस्य—महिमा—अतः—ज्यायान्—च—पुरूषः
पादः—अस्य—विश्वा— भूतानि—त्रि—पाद्—अस्य—अमृतम्—दिवि

अनुवाद :— (अस्य) इस अक्षर पुरूष अर्थात्। परब्रह्म की तो (एतावान्) इतनी ही (महिमा) प्रभुता है। (च) तथा (पुरूषः) वह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर तो (अतः) इससे भी (ज्यायान्) बड़ा है (विश्वा) समस्त (भूतानि) क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष तथा इनके लोकों में तथा सत्यलोक तथा इन लोकों में जितने भी प्राणी हैं (अस्य) इस पूर्ण परमात्मा परम अक्षर पुरूष का (पादः) एक पैर है अर्थात् एक अंश मात्र है। (अस्य) इस परमेश्वर के (त्रि) तीन (दिवि) दिव्य लोक जैसे सत्यलोक—अलख लोक—अगम लोक (अमृतम्) अविनाशी (पाद्) दूसरा पैर है अर्थात् जो भी सर्व ब्रह्माण्डों में उत्पन्न है वह सत्यपुरूष पूर्ण परमात्मा का ही अंश या अंग है।

भावार्थ :- इस ऊपर के मंत्र 2 में वर्णित अक्षर पुरुष (परब्रह्म) की तो इतनी ही महिमा है तथा वह पूर्ण पुरुष कविर्देव तो इससे भी बड़ा है अर्थात् सर्वशक्तिमान है तथा सर्व ब्रह्माण्ड उसी के अंश मात्र पर ठहरे हैं। इस मंत्र में तीन लोकों का वर्णन इसलिए है क्योंकि चौथा अनामी (अनामय) लोक अन्य रचना से पहले का है। यही तीन प्रभुओं (क्षर पुरूष-अक्षर पुरूष तथा इन दोनों से अन्य परम अक्षर पुरूष) का विवरण श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक संख्या 16-17 में है {इसी का प्रमाण आदरणीय गरीबदास साहेब जी कहते हैं कि:-

गरीब, जाके अर्ध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूर्ण ब्रह्म हमारा।।
गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का, एक रति नहीं भार।
सतगुरु पुरुष कबीर हैं, कुल के सृजनहार।।

इसी का प्रमाण आदरणीय दादू साहेब जी कह रहे हैं कि :-

जिन मोकुं निज नाम दिया, सोई सतगुरु हमार।
दादू दूसरा कोए नहीं, कबीर सृजनहार।।

इसी का प्रमाण आदरणीय नानक साहेब जी देते हैं कि :-

यक अर्ज गुफतम पेश तो दर कून करतार।
हक्का कबीर करीम तू, बेएब परवरदिगार।।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब, पष्ठ नं. 721, महला 1, राग तिलंग)

कून करतार का अर्थ होता है सर्व का रचनहार, अर्थात्। शब्द शक्ति से रचना करने वाला शब्द स्वरूपी प्रभु, हक्का कबीर का अर्थ है सत् कबीर, करीम का अर्थ दयालु, परवरदिगार का अर्थ परमात्मा है।}

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 4

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरूषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्व ङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।4।।

त्रि—पाद—ऊर्ध्वः—उदैत्—पुरूषः—पादः—अस्य—इह—अभवत्—पूनः
ततः— विश्वङ्— व्यक्रामत्—सः—अशनानशने—अभि

अनुवाद :— (पुरूषः) यह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् अविनाशी परमात्मा (ऊर्ध्वः) ऊपर (त्रि) तीन लोक जैसे सत्यलोक—अलख लोक—अगम लोक रूप (पाद) पैर अर्थात् ऊपर के हिस्से में (उदैत्) प्रकट होता है अर्थात् विराजमान है (अस्य) इसी परमेश्वर पूर्ण ब्रह्म का (पादः) एक पैर अर्थात् एक हिस्सा जगत रूप (पुनर्) फिर (इह) यहाँ (अभवत्) प्रकट होता है (ततः) इसलिए (सः) वह अविनाशी पूर्ण परमात्मा (अशनानशने) खाने वाले काल अर्थात् क्षर पुरूष व न खाने वाले परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष के भी (अभि)ऊपर (विश्वङ्)सर्वत्र (व्यक्रामत्)व्याप्त है अर्थात् उसकी प्रभुता सर्व ब्रह्माण्डों व सर्व प्रभुओं पर है वह कुल का मालिक है। जिसने अपनी शक्ति को सर्व के ऊपर फैलाया है।

भावार्थ :- यही सर्व संष्टि रचन हार प्रभु अपनी रचना के ऊपर के हिस्से में तीनों स्थानों (सतलोक, अलखलोक, अगमलोक) में तीन रूप में स्वयं प्रकट होता है अर्थात् स्वयं ही विराजमान है। यहाँ अनामी लोक का वर्णन इसलिए नहीं किया क्योंकि अनामी लोक में कोई रचना नहीं है तथा अकह (अनामय) लोक शेष रचना से पूर्व का है फिर कहा है कि उसी परमात्मा के सत्यलोक से बिछुड़ कर नीचे के ब्रह्म व परब्रह्म के लोक उत्पन्न होते हैं और वह पूर्ण परमात्मा खाने वाले ब्रह्म अर्थात् काल से (क्योंकि ब्रह्म/काल विराट शाप वश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को खाता है) तथा न खाने वाले परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष से (परब्रह्म प्राणियों को खाता नहीं, परन्तु जन्म-मत्यु, कर्मदण्ड ज्यों का त्यों बना रहता है) भी ऊपर सर्वत्र व्याप्त है अर्थात् इस पूर्ण परमात्मा की प्रभुता सर्व के ऊपर है, कबीर परमेश्वर ही कुल का मालिक है। जिसने अपनी शक्ति को सर्व के ऊपर फैलाया है जैसे सूर्य अपने प्रकाश को सर्व के ऊपर फैला कर प्रभावित करता है, ऐसे पूर्ण परमात्मा ने अपनी शक्ति रूपी रेंज (क्षमता) को सर्व ब्रह्माण्डों को नियन्त्रित रखने के लिए छोड़ा हुआ है जैसे मोबाईल फोन का टावर एक देशिय होते हुए अपनी शक्ति अर्थात्। मोबाइल फोन की रेंज (क्षमता) चहुं ओर फैलाए रहता है। इसी प्रकार पूर्ण प्रभू ने अपनी निराकार शक्ति सर्व व्यापक की है जिससे पूर्ण परमात्मा सर्व ब्रह्माण्डों को एक स्थान पर बैठ कर नियन्त्रित रखता है।

इसी का प्रमाण आदरणीय गरीबदास जी महाराज दे रहे हैं (अमृतवाणी राग कल्याण)

तीन चरण चिन्तामणी साहेब, शेष बदन पर छाए।
माता, पिता, कुल न बन्धु, ना किन्हें जननी जाये।।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 5

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरूषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।

तस्मात्—विराट्—अजायत—विराजः—अधि—पुरूषः
स—जातः—अत्यरिच्यत— पश्चात् —भूमिम्—अथः—पुरः।

अनुवाद :— (तस्मात्) उसके पश्चात् उस परमेश्वर सत्यपुरूष की शब्द शक्ति से (विराट्) विराट अर्थात् ब्रह्म, जिसे क्षर पुरूष व काल भी कहते हैं (अजायत) उत्पन्न हुआ है (पश्चात्) इसके बाद (विराजः) विराट पुरूष अर्थात् काल भगवान से (अधि) बड़े (पुरूषः) परमेश्वर ने (भूमिम्) पृथ्वी वाले लोक, काल ब्रह्म तथा परब्रह्म के लोक को (अत्यरिच्यत) अच्छी तरह रचा (अथः) फिर (पुरः) अन्य छोटे—छोटे लोक (स) उस पूर्ण परमेश्वर ने ही (जातः) उत्पन्न किया अर्थात् स्थापित किया।

भावार्थ :- उपरोक्त मंत्र 4 में वर्णित तीनों लोकों (अगमलोक, अलख लोक तथा सतलोक) की रचना के पश्चात पूर्ण परमात्मा ने ज्योति निरंजन (ब्रह्म) की उत्पत्ति की अर्थात् उसी सर्व शक्तिमान परमात्मा पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर प्रभु) से ही विराट अर्थात् ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति हुई। यही प्रमाण गीता अध्याय 3 मन्त्र 15 में है कि अक्षर पुरूष अर्थात्् अविनाशी प्रभु से ब्रह्म उत्पन्न हुआ यही प्रमाण अर्थववेद काण्ड 4 अनुवाक 1 सुक्त 3 में है कि पूर्ण ब्रह्म से ब्रह्म की उत्पत्ति हुई उसी पूर्ण ब्रह्म ने (भूमिम्) भूमि आदि छोटे-बड़े सर्व लोकों की रचना की। वह पूर्णब्रह्म इस विराट भगवान अर्थात् ब्रह्म से भी बड़ा है अर्थात् इसका भी मालिक है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 15

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरूषं पशुम्।।15।।

प्त—अस्य—आसन्—परिधयः—त्रिसप्त—समिधः—कृताः
देवा—यत्—यज्ञम्— तन्वानाः— अबध्नन्—पुरूषम्—पशुम्।

अनुवाद :— (सप्त) सात संख ब्रह्माण्ड तो परब्रह्म के तथा (त्रिसप्त) इक्कीस ब्रह्माण्ड काल ब्रह्म के (समिधः) कर्मदण्ड दुःख रूपी आग से दुःखी (कृताः) करने वाले (परिधयः) गोलाकार घेरा रूप सीमा में (आसन्) विद्यमान हैं (यत्) जो (पुरूषम्) पूर्ण परमात्मा की (यज्ञम्) विधिवत् धार्मिक कर्म अर्थात् पूजा करता है (पशुम्) बलि के पशु रूपी काल के जाल में कर्म बन्धन में बंधे (देवा) भक्तात्माओं को (तन्वानाः) काल के द्वारा

रचे अर्थात् फैलाये पाप कर्म बंधन जाल से (अबध्नन्) बन्धन रहित करता है अर्थात् बन्दी छुड़ाने वाला बन्दी छोड़ है।

भावार्थ :- सात संख ब्रह्माण्ड परब्रह्म के तथा इक्कीस ब्रह्माण्ड ब्रह्म के हैं जिन में गोलाकार सीमा में बंद पाप कर्मों की आग में जल रहे प्राणियों को वास्तविक पूजा विधि बता कर सही उपासना करवाता है जिस कारण से बलि दिए जाने वाले पशु की तरह जन्म-मंत्यु के काल (ब्रह्म) के खाने के लिए तप्त शिला के कष्ट से पीड़ित भक्तात्माओं को काल के कर्म बन्धन के फैलाए जाल को तोड़कर बन्धन रहित करता है अर्थात् बंधन छुड़वाने वाला बन्दी छोड़ है। इसी का प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 32 में है कि कविरंघारिसि (कविर्) कबिर परमेश्वर (अंघ) पाप का (अरि) शत्रु (असि) है अर्थात् पाप विनाशक कबीर है। बम्भारिसि (बम्भारि) बन्धन का शत्रु अर्थात् बन्दी छोड़ कबीर परमेश्वर (असि) है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 16

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

यज्ञेन—यज्ञम्—अ—यजन्त—देवाः—तानि—धर्माणि—प्रथमानि— आसन्—ते—ह—नाकम्— महिमानः— सचन्त— यत्र—पूर्वे—साध्याः—सन्ति देवाः।

अनुवाद :— जो (देवाः) निर्विकार देव स्वरूप भक्तात्माएं (अयज्ञम्) अधूरी गलत धार्मिक पूजा के स्थान पर (यज्ञेन) सत्य भक्ति धार्मिक कर्म के आधार पर (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे (धर्माणि) धार्मिक शक्ति सम्पन्न (प्रथमानि) मुख्य अर्थात्। उत्तम (आसन्) हैं (ते ह) वे ही वास्तव में (महिमानः) महान भक्ति शक्ति युक्त होकर (साध्याः) सफल भक्त जन (नाकम्) पूर्ण सुखदायक परमेश्वर को (सचन्त) भक्ति निमित कारण अर्थात् सत्भक्ति की कमाई से प्राप्त होते हैं, वे वहाँ चले जाते हैं। (यत्र) जहाँ पर (पूर्वे) पहले वाली संष्टि के (देवाः) पापरहित देव स्वरूप भक्त आत्माएं (सन्ति) रहती हैं।

भावार्थ :- जो निर्विकार (जिन्होने मांस,शराब, तम्बाकू सेवन करना त्याग दिया है तथा अन्य बुराईयों से रहित है वे) देव स्वरूप भक्त आत्माएं शास्त्र विधि रहित पूजा को त्याग कर शास्त्रानुकूल साधना करते हैं वे भक्ति की कमाई से धनी होकर काल के ऋण से मुक्त होकर अपनी सत्य भक्ति की कमाई के कारण उस सर्व सुखदाई परमात्मा को प्राप्त करते हैं अर्थात् सत्यलोक में चले जाते हैं जहाँ पर सर्व प्रथम रची संष्टि के देव स्वरूप अर्थात् पाप रहित हंस आत्माएं रहती हैं।

जैसे कुछ आत्माएं तो काल (ब्रह्म) के जाल में फंस कर यहाँ आ गई, कुछ परब्रह्म के साथ सात संख ब्रह्माण्डों में आ गई, फिर भी असंख्य आत्माएं जिनका विश्वास पूर्ण परमात्मा में अटल रहा, जो पतिव्रता पद से नहीं गिरी वे वहीं रह गई, इसलिए यहाँ वही वर्णन पवित्र वेदों ने भी सत्य बताया है। यही प्रमाण गीता अध्याय 8 के श्लोक संख्या 8 से 10 में वर्णन है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा की

सतसाधना शास्त्रविधि अनुसार करता है वह भक्ति की कमाई के बल से उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है अर्थात् उसके पास चला जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि तीन प्रभु हैं ब्रह्म - परब्रह्म - पूर्णब्रह्म। इन्हीं को 1. ब्रह्म - ईश - क्षर पुरुष 2. परब्रह्म - अक्षर पुरुष/अक्षर ब्रह्म ईश्वर तथा 3. पूर्ण ब्रह्म - परम अक्षर ब्रह्म - परमेश्वर - सतपुरुष आदि पर्यायवाची शब्दों से जाना जाता है।

यही प्रमाण ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मंत्र 17 से 20 में स्पष्ट है कि पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) शिशु रूप धारण करके प्रकट होता है तथा अपना निर्मल ज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान (कविर्गीर्भिः) कबीर वाणी के द्वारा अपने अनुयाइयों को बोल-बोल कर वर्णन करता है। वह कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ब्रह्म (क्षर पुरुष) के धाम तथा परब्रह्म (अक्षर पुरुष) के धाम से भिन्न जो पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) का तीसरा ऋतधाम (सतलोक) है, उसमें आकार में विराजमान है तथा सतलोक से चौथा अनामी लोक है, उसमें भी यही कविर्देव (कबीर परमेश्वर) अनामी पुरुष रूप में मनुष्य सदंश आकार में विराजमान है।

''पवित्र श्रीमद्देवी महापुराण में संष्टि रचना का प्रमाण''

''ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के माता–पिता''

(दुर्गा और ब्रह्म के योग से ब्रह्मा, विष्णु और शिव का जन्म)

पवित्र श्रीमद्देवी महापुराण तीसरा स्कन्द अध्याय 1-3(गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, अनुवादकर्ता श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा चिमन लाल गोस्वामी जी, पंष्ठ नं. 114 से)

पंष्ठ नं. 114 से 118 तक विवरण है कि कितने ही आचार्य भवानी को सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करने वाली बताते हैं। वह प्रकंति कहलाती है तथा ब्रह्म के साथ अभेद सम्बन्ध है जैसे पत्नी को अर्धांगनी भी कहते हैं अर्थात् दुर्गा ब्रह्म (काल) की पत्नी है। एक ब्रह्माण्ड की संष्टि रचना के विषय में राजा श्री परीक्षित के पूछने पर श्री व्यास जी ने बताया कि मैंने श्री नारद जी से पूछा था कि हे देवर्षे ! इस ब्रह्माण्ड की रचना कैसे हुई? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में श्री नारद जी ने कहा कि मैंने अपने पिता श्री ब्रह्मा जी से पूछा था कि हे पिता श्री इस ब्रह्माण्ड की रचना आपने की या श्री विष्णु जी इसके रचयिता हैं या शिव जी ने रचा है? सच-सच बताने की कंपा करें। तब मेरे पूज्य पिता श्री ब्रह्मा जी ने बताया कि बेटा नारद, मैंने अपने आपको कमल के फूल पर बैठा पाया था, मुझे नहीं मालूम इस अगाध जल में मैं कहाँ से उत्पन्न हो गया। एक हजार वर्ष तक पंथ्वी का अन्वेषण करता रहा, कहीं जल का ओर-छोर नहीं पाया। फिर आकाशवाणी हुई कि तप करो। एक हजार वर्ष तक तप किया। फिर संष्टि करने की आकाशवाणी हुई। इतने में मधु और कैटभ नाम के दो राक्षस आए, उनके भय से मैं कमल का डण्ठल पकड़ कर नीचे उतरा। वहाँ भगवान विष्णु जी शेष शैय्या पर अचेत

पड़े थे। उनमें से एक स्त्री (प्रेतवत प्रविष्ट दुर्गा) निकली। वह आकाश में आभूषण पहने दिखाई देने लगी। तब भगवान विष्णु होश में आए। अब मैं तथा विष्णु जी दो थे। इतने में भगवान शंकर भी आ गए। देवी ने हमें विमान में बैठाया तथा ब्रह्म लोक में ले गई। वहाँ एक ब्रह्मा, एक विष्णु तथा एक शिव और देखा फिर एक देवी देखी,उसे देख कर विष्णु जी ने विवेक पूर्वक निम्न वर्णन किया (ब्रह्म काल ने भगवान विष्णु को चेतना प्रदान कर दी, उसको अपने बाल्यकाल की याद आई तब बचपन की कहानी सुनाई)।

पृष्ठ नं. 119-120 पर भगवान विष्णु जी ने श्री ब्रह्मा जी तथा श्री शिव जी से कहा कि यह हम तीनों की माता है, यही जगत् जननी प्रकृति देवी है। मैंने इस देवी को तब देखा था जब मैं छोटा सा बालक था, यह मुझे पालने में झुला रही थी।

तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 123 पर श्री विष्णु जी ने श्री दुर्गा जी की स्तुति करते हुए कहा - तुम शुद्ध स्वरूपा हो, यह सारा संसार तुम्हीं से उद्भासित हो रहा है, मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शंकर हम सभी तुम्हारी कृपा से ही विद्यमान हैं। हमारा आविर्भाव (जन्म) और तिरोभाव (मृत्यु) हुआ करता है अर्थात् हम तीनों देव नाशवान हैं, केवल तुम ही नित्य (अविनाशी) हो, जगत जननी हो, प्रकृति देवी हो।

भगवान शंकर बोले - देवी यदि महाभाग विष्णु तुम्हीं से प्रकट (उत्पन्न) हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा भी तुम्हारे ही बालक हुए। फिर मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम्हीं हो।

विचार करें :- उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी नाशवान हैं। मृत्युंजय (अजर-अमर) व सर्वेश्वर नहीं हैं तथा दुर्गा (प्रकृति) के पुत्र हैं तथा ब्रह्म (काल-सदाशिव) इनका पिता है।

तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 125 पर ब्रह्मा जी के पूछने पर कि हे माता! वेदों में जो ब्रह्म कहा है वह आप ही हैं या कोई अन्य प्रभु है ? इसके उत्तर में यहाँ तो दुर्गा कह रही है कि मैं तथा ब्रह्म एक ही हैं। फिर इसी स्कंद अ. 6 के पृष्ठ नं. 129 पर कहा है कि अब मेरा कार्य सिद्ध करने के लिए विमान पर बैठ कर तुम लोग शीघ्र पधारो (जाओ)। कोई कठिन कार्य उपस्थित होने पर जब तुम मुझे याद करोगे, तब मैं सामने आ जाऊँगी। देवताओं मेरा (दुर्गा का) तथा ब्रह्म का ध्यान तुम्हें सदा करते रहना चाहिए। हम दोनों का स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे कार्य सिद्ध होने में तनिक भी संदेह नहीं है।

उपरोक्त व्याख्या से स्वसिद्ध है कि दुर्गा (प्रकृति) तथा ब्रह्म (काल) ही तीनों देवताओं के माता-पिता हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु व शिव जी नाशवान हैं व पूर्ण शक्ति युक्त नहीं हैं।

तीनों देवताओं (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी) की शादी दुर्गा (प्रकृति

देवी) ने की। पृष्ठ नं. 128-129 पर, तीसरे स्कंद में।

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 12

ये, च, एव, सात्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मतः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि।।

अनुवाद : (च) और (एव) भी (ये) जो (सात्विकाः) सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति (भावाः) भाव हैं और (ये) जो (राजसाः) रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति (च) तथा (तामसाः) तमोगुण शिव से संहार हैं (तान्) उन सबको तू (मतः,एव) मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं (इति) ऐसा (विद्धि) जान (तु) परन्तु वास्तवमें (तेषु) उनमें (अहम्) मैं और (ते) वे (मयि) मुझमें (न) नहीं हैं।

''पवित्र शिव महापुराण में सृष्टि रचना का प्रमाण''

(काल ब्रह्म व दुर्गा से विष्णु, ब्रह्मा व शिव की उत्पत्ति)

इसी का प्रमाण पवित्र श्री शिव पुराण गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, अनुवादकर्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, इसके अध्याय 6 रूद्र संहिता, पृष्ठ नं. 100 पर कहा है कि जो मूर्ति रहित परब्रह्म है, उसी की मूर्ति भगवान सदाशिव है। इनके शरीर से एक शक्ति निकली, वह शक्ति अम्बिका, प्रकृति (दुर्गा), त्रिदेव जननी (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी को उत्पन्न करने वाली माता) कहलाई। जिसकी आठ भुजाऐं हैं। वे जो सदाशिव हैं, उन्हें शिव, शंभू और महेश्वर भी कहते हैं। (पृष्ठ नं. 101 पर) वे अपने सारे अंगों में भस्म रमाये रहते हैं। उन काल रूपी ब्रह्म ने एक शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया। फिर दोनों ने पति-पत्नी का व्यवहार किया जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम विष्णु रखा (शिव पुराण पृष्ठ नं. 102)।

फिर रूद्र संहिता अध्याय नं. 7 पृष्ठ नं. 103 पर ब्रह्मा जी ने कहा कि मेरी उत्पत्ति भी भगवान सदाशिव (ब्रह्म-काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) के संयोग से अर्थात् पति-पत्नी के व्यवहार से ही हुई। फिर मुझे बेहोश कर दिया।

फिर रूद्र संहिता अध्याय नं. 9 पृष्ठ नं. 110 पर कहा है कि इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र इन तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (काल-ब्रह्म) गुणातीत माने गए हैं।

यहाँ पर चार सिद्ध हुए अर्थात् सदाशिव (काल-ब्रह्म) व प्रकृति (दुर्गा) से ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव उत्पन्न हुए हैं। तीनों भगवानों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी) की माता जी श्री दुर्गा जी तथा पिता जी श्री ज्योति निरंजन (ब्रह्म) है। यही तीनों प्रभु रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी हैं।

''पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी में संष्टि रचना का प्रमाण''

इसी का प्रमाण पवित्र गीता जी अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 तक है। ब्रह्म (काल) कह रहा है कि प्रकंति (दुर्गा) तो मेरी पत्नी है, मैं ब्रह्म (काल) इसका पति हूँ। हम दोनों के संयोग से सर्व प्राणियों सहित तीनों गुणों (रजगुण - ब्रह्मा जी, सतगुण - विष्णु जी, तमगुण - शिवजी) की उत्पत्ति हुई है। मैं (ब्रह्म) सर्व प्राणियों का पिता हूँ तथा प्रकंति (दुर्गा) इनकी माता है। मैं इसके उदर में बीज स्थापना करता हूँ जिससे सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है। प्रकंति (दुर्गा) से उत्पन्न तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) जीव को कर्म आधार से शरीर में बांधते हैं।

यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16, 17 में भी है।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 1

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित् ।।

अनुवाद : (ऊर्ध्वमूलम्) ऊपर को पूर्ण परमात्मा आदि पुरुष परमेश्वर रूपी जड़ वाला (अधःशाखम्) नीचे को तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु व तमगुण शिव रूपी शाखा वाला (अव्ययम्) अविनाशी (अश्वत्थम्) विस्तारित पीपल का वंक्ष है, (यस्य) जिसके (छन्दांसि) जैसे वेद में छन्द है ऐसे संसार रूपी वंक्ष के भी विभाग छोटे–छोटे हिस्से टहनियाँ व (पर्णानि) पत्ते (प्राहुः) कहे हैं (तम्) उस संसाररूप वंक्षको (यः) जो (वेद) इसे विस्तार से जानता है (सः) वह (वेदवित्) पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी है।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 2

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसंताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवंद्धाः,
विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके ।।

अनुवाद : (तस्य) उस वंक्षकी (अधः) नीचे (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर (गुणप्रवंद्धाः) तीनों गुणों ब्रह्मा–रजगुण, विष्णु–सतगुण, शिव–तमगुण रूपी (प्रसंता) फैली हुई (विषयप्रवालाः) विकार– काम क्रोध, मोह, लोभ अहंकार रूपी कोपल (शाखाः) डाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव (कर्मानुबन्धीनि) जीवको कर्मों में बाँधने की (मूलानि) जड़ें अर्थात् मुख्य कारण हैं (च) तथा (मनुष्यलोके) मनुष्यलोक – अर्थात् पंथ्वी लोक में (अधः) नीचे – नरक, चौरासी लाख जूनियों में (ऊर्ध्वम्) ऊपर स्वर्ग लोक आदि में (अनुसन्ततानि) व्यवस्थित किए हुए हैं।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 3

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च,
सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असंगशस्त्रेण, दंढेन, छित्वा ।।

अनुवाद : (अस्य) इस रचना का (न) नहीं (आदिः) शुरूवात (च) तथा (न) नहीं (अन्तः) अन्त है (न) नहीं (तथा) वैसा (रूपम्) स्वरूप (उपलभ्यते) पाया जाता है (च) तथा

(इह) यहाँ विचार काल में अर्थात् मेरे द्वारा दिया जा रहा गीता ज्ञान में पूर्ण जानकारी मुझे भी (न) नहीं है (सम्प्रतिष्ठा) क्योंकि सर्वब्रह्माण्डों की रचना की अच्छी तरह स्थिति का मुझे भी ज्ञान नहीं है (एनम्) इस (सुविरूढमूलम्) अच्छी तरह स्थाई स्थिति वाला (अश्वत्थम्) मजबूत स्वरूपवाले संसार रूपी वंक्ष के ज्ञान को (असंड्गशस्त्रेण) पूर्ण ज्ञान रूपी (दंढेन्) दंढ़ सूक्षम वेद अर्थात् तत्वज्ञान के द्वारा जानकर (छित्वा) काटकर अर्थात् निरंजन की भक्ति को क्षणिक अर्थात् क्षण भंगुर जानकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ब्रह्म तथा परब्रह्म से भी आगे पूर्णब्रह्म की तलाश करनी चाहिए।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 4

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः,
तम्, एव्, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवंतिः, प्रसंता, पुराणी।।

अनुवाद : जब तत्वदर्शी संत मिल जाए (ततः) इसके पश्चात् (तत्) उस परमात्मा के (पदम्) पद स्थान अर्थात् सतलोक को (परिमार्गितव्यम्) भली भाँति खोजना चाहिए (यस्मिन्) जिसमें (गताः) गए हुए साधक (भूयः) फिर (न, निवर्तन्ति) लौटकर संसार में नहीं आते (च) और (यतः) जिस परमात्मा–परम अक्षर ब्रह्म से (पुराणी) आदि (प्रवंतिः) रचना–संष्टि (प्रसंता) उत्पन्न हुई है (तम्) अज्ञात (आद्यम्) आदि यम अर्थात् मैं काल निरंजन (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा की (एव) ही (प्रपद्ये) मैं शरण में हूँ तथा उसी की पूजा करता हूँ।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 16

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (क्षरः) नाशवान् (च) और (अक्षरः) अविनाशी (पुरुषौ) भगवान हैं (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों प्रभुओं के लोकों में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियों के शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 17

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम् आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः।।

अनुवाद : (उत्तमः) उत्तम (पुरुषः) प्रभु (तु) तो (अन्यः) उपरोक्त दोनों प्रभुओं ''क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरुष'' से भी अन्य ही है (इति) यह वास्तव में (परमात्मा) परमात्मा (उदाहृतः) कहा गया है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकों में (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) ईश्वर (प्रभुओं में श्रेष्ठ अर्थात् समर्थ प्रभु) है।

भावार्थ - गीता ज्ञान दाता प्रभु ने केवल इतना ही बताया है कि यह संसार उल्टे

लटके वंक्ष तुल्य जानो। ऊपर जड़ें (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है। नीचे टहनीयां आदि अन्य हिस्से जानों। इस संसार रूपी वंक्ष के प्रत्येक भाग का भिन्न-भिन्न विवरण जो संत जानता है वह तत्वदर्शी संत है जिसके विषय में गीता अध्याय 4 श्लोक नं. 34 में कहा है। गीता अध्याय 15 श्लोक नं. 2-3 में केवल इतना ही बताया है कि तीन गुण रूपी शाखा हैं। यहां विचारकाल में अर्थात् गीता में आपको मैं (गीता ज्ञान दाता) पूर्ण जानकारी नहीं दे सकता क्योंकि मुझे इस संसार की रचना के आदि व अंत का ज्ञान नहीं है। उस के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक नं. 34 में कहा है कि किसी तत्व दर्शी संत से उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान जानों इस गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में उस तत्वदर्शी संत की पहचान बताई है कि वह संसार रूपी वंक्ष के प्रत्येक भाग का ज्ञान कराएगा। उसी से पूछो। गीता अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा है कि उस तत्वदर्शी संत के मिल जाने के पश्चात् उस परमपद परमेश्वर की खोज करनी चाहिए अर्थात् उस तत्वदर्शी संत के बताए अनुसार साधना करनी चाहिए जिससे पूर्ण मोक्ष (अनादि मोक्ष) प्राप्त होता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में स्पष्ट किया है कि तीन प्रभु हैं एक क्षर पुरूष (ब्रह्म) दूसरा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) तीसरा परम अक्षर पुरूष (पूर्ण ब्रह्म)। क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष वास्तव में अविनाशी नहीं हैं। वह अविनाशी परमात्मा तो इन दोनों से अन्य ही है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है।

उपरोक्त श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में यह प्रमाणित हुआ कि उल्टे लटके हुए संसार रूपी वंक्ष की मूल अर्थात् जड़ तो परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म है जिससे पूर्ण वंक्ष का पालन होता है तथा वंक्ष का जो हिस्सा पंथ्वी के तुरन्त बाहर जमीन के साथ दिखाई देता है वह तना होता है उसे अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म जानों। उस तने से ऊपर चल कर अन्य मोटी डार निकलती है उनमें से एक डार को ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष जानों तथा उसी डार से अन्य तीन शाखाएं निकलती हैं उन्हें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जानों तथा शाखाओं से आगे पत्ते रूप में सांसारिक प्राणी जानों। उपरोक्त गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में स्पष्ट है कि क्षर पुरुष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तथा इन दोनों के लोकों में जितने प्राणी हैं उनके स्थूल शरीर तो नाशवान हैं तथा जीवात्मा अविनाशी है अर्थात् उपरोक्त दोनों प्रभु व इनके अन्तर्गत सर्व प्राणी नाशवान हैं। भले ही अक्षर पुरुष (परब्रह्म) को अविनाशी कहा है परन्तु वास्तव में अविनाशी परमात्मा तो इन दोनों से अन्य है। वह तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका पालन-पोषण करता है। उपरोक्त विवरण में तीन प्रभुओं का भिन्न-भिन्न विवरण दिया है।

"पवित्र बाईबल तथा पवित्र कुरान शरीफ में संष्टि रचना का प्रमाण"

इसी का प्रमाण पवित्र बाईबल में तथा पवित्र कुरान शरीफ में भी है।

कुरान शरीफ में पवित्र बाईबल का भी ज्ञान है, इसलिए इन दोनों पवित्र सद्ग्रन्थों ने मिल-जुल कर प्रमाणित किया है कि कौन तथा कैसा है संष्टि रचनहार तथा उसका वास्तविक नाम क्या है।

पवित्र बाईबल (उत्पत्ति ग्रन्थ पंष्ठ नं. 2 पर, अ. 1:20 - 2:5 पर)

छटवां दिन :– प्राणी और मनुष्य :

अन्य प्राणियों की रचना करके 26. फिर परमेश्वर ने कहा, हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएं, जो सर्व प्राणियों को काबू रखेगा। 27. तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने ही स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उसको उत्पन्न किया, नर और नारी करके मनुष्यों की संष्टि की।

29. प्रभु ने मनुष्यों के खाने के लिए जितने बीज वाले छोटे पेड़ तथा जितने पेड़ों में बीज वाले फल होते हैं वे भोजन के लिए प्रदान किए हैं, (माँस खाना नहीं कहा है।)

सातवां दिन :– विश्राम का दिन :

परमेश्वर ने छः दिन में सर्व संष्टि की उत्पत्ति की तथा सातवें दिन विश्राम किया।

पवित्र बाईबल ने सिद्ध कर दिया कि परमात्मा मानव सदंश शरीर में है, जिसने छः दिन में सर्व संष्टि की रचना की तथा फिर विश्राम किया।

पवित्र कुरान शरीफ (सुरत फुर्कानि 25, आयत नं. 52, 58, 59)

आयत 52 :– फला तुतिअल् – काफिरन् व जहिद्हुम बिही जिहादन् कबीरा (कबीरन्)।।52।

इसका भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद जी का खुदा (प्रभु) कह रहा है कि हे पैगम्बर ! आप काफिरों (जो एक प्रभु की भक्ति त्याग कर अन्य देवी–देवताओं तथा मूर्ति आदि की पूजा करते हैं) का कहा मत मानना, क्योंकि वे लोग कबीर को पूर्ण परमात्मा नहीं मानते। आप मेरे द्वारा दिए इस कुरान के ज्ञान के आधार पर अटल रहना कि कबीर ही पूर्ण प्रभु है तथा कबीर अल्लाह के लिए संघर्ष करना (लड़ना नहीं) अर्थात् अडिग रहना।

आयत 58 :– व तवक्कल् अलल् – हय्यिल्लजी ला यमूतु व सब्बिह् बिहम्दिही व कफा बिही बिजुनूबि अिबादिही खबीरा (कबीरा)।।58।

भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद जी जिसे अपना प्रभु मानते हैं वह अल्लाह (प्रभु) किसी और पूर्ण प्रभु की तरफ संकेत कर रहा है कि ऐ पैगम्बर उस कबीर परमात्मा पर विश्वास रख जो तुझे जिंदा महात्मा के रूप में आकर मिला था। वह कभी मरने वाला नहीं है अर्थात् वास्तव में अविनाशी है। तारीफ के साथ उसकी पाकी (पवित्र महिमा) का गुणगान किए जा, वह कबीर अल्लाह (कविर्देव) पूजा के योग्य है तथा

अपने उपासकों के सर्व पापों को विनाश करने वाला है।

आयत 59 :– अल्ल्जी खलकस्समावाति वल्अर्ज व मा बैनहुमा फी सित्तति अय्यामिन् सुम्मस्तवा अलल्अर्शि अर्रह्मानु फस्अल् बिही खबीरन्(कबीरन्)।।59।।

भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद को कुरान शरीफ बोलने वाला प्रभु (अल्लाह) कह रहा है कि वह कबीर प्रभु वही है जिसने जमीन तथा आसमान के बीच में जो भी विद्यमान है सर्व सृष्टि की रचना छः दिन में की तथा सातवें दिन ऊपर अपने सत्यलोक में सिंहासन पर विराजमान हो (बैठ) गया। उसके विषय में जानकारी किसी (बाखबर) तत्वदर्शी संत से पूछो

उस पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति कैसे होगी तथा वास्तविक ज्ञान तो किसी तत्वदर्शी संत (बाखबर) से पूछो, मैं नहीं जानता।

उपरोक्त दोनों पवित्र धर्मों (ईसाई तथा मुसलमान) के पवित्र शास्त्रों ने भी मिल-जुल कर प्रमाणित कर दिया कि सर्व सृष्टि रचनहार, सर्व पाप विनाशक, सर्व शक्तिमान, अविनाशी परमात्मा मानव सदृश शरीर में आकार में है तथा सत्यलोक में रहता है। उसका नाम कबीर है, उसी को अल्लाहु अकबिरू भी कहते हैं।

आदरणीय धर्मदास जी ने पूज्य कबीर प्रभु से पूछा कि हे सर्वशक्तिमान ! आज तक यह तत्वज्ञान किसी ने नहीं बताया, वेदों के मर्मज्ञ ज्ञानियों ने भी नहीं बताया। इससे सिद्ध है कि चारों पवित्र वेद तथा चारों पवित्र कतेब (कुरान शरीफ आदि) झूठे हैं। पूर्ण परमात्मा ने कहा :-

कबीर, बेद कतेब झूठे नहीं भाई, झूठे हैं जो समझे नाहिं।

भावार्थ है कि चारों पवित्र वेद (ऋग्वेद - अथर्ववेद - यजुर्वेद - सामवेद) तथा पवित्र चारों कतेब (कुरान शरीफ - जबूर - तौरात - इंजिल) गलत नहीं हैं। परन्तु जो इनको नहीं समझ पाए वे नादान हैं।

"पूज्य कबीर परमेश्वर (कविर् देव) जी की अमृतवाणी में सृष्टि रचना"

विशेष :- निम्न अमृतवाणी सन् 1403 से {जब पूज्य कविर्देव (कबीर परमेश्वर) लीलामय शरीर में पाँच वर्ष के हुए} सन् 1518 {जब कविर्देव (कबीर परमेश्वर) मगहर स्थान से सशरीर सतलोक गए} के बीच में लगभग 600 वर्ष पूर्व परम पूज्य कबीर परमेश्वर (कविर्देव) जी द्वारा अपने निजी सेवक (दास भक्त) आदरणीय धर्मदास साहेब जी को सुनाई थी तथा धनी धर्मदास साहेब जी ने लिपिबद्ध की थी। परन्तु उस समय के पवित्र हिन्दुओं तथा पवित्र मुसलमानों के नादान गुरुओं (नीम-हकीमों) ने कहा कि यह धाणक (जुलाहा) कबीर झूठा है। किसी भी सद् ग्रन्थ में श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी के माता-पिता का नाम नहीं है। ये तीनों प्रभु अविनाशी हैं इनका जन्म मृत्यु नहीं होता। न ही

पवित्र वेदों व पवित्र कुरान शरीफ आदि में कबीर परमेश्वर का प्रमाण है तथा परमात्मा को निराकार लिखा है। हम प्रतिदिन पढ़ते हैं। भोली आत्माओं ने उन विचक्षणों (चतुर गुरुओं) पर विश्वास कर लिया कि सचमुच यह कबीर धाणक तो अशिक्षित है तथा गुरु जी शिक्षित हैं, सत्य कह रहे होंगे। आज वही सच्चाई प्रकाश में आ रही है तथा अपने सर्व पवित्र धर्मों के पवित्र सद्ग्रन्थ साक्षी हैं। इससे सिद्ध है कि पूर्ण परमेश्वर, सर्व सृष्टि रचनहार, कुल करतार तथा सर्वज्ञ कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही है जो काशी (बनारस) में कमल के फूल पर प्रकट हुए तथा 120 वर्ष तक वास्तविक तेजोमय शरीर के ऊपर मानव सदृश शरीर हल्के तेज का बना कर रहे तथा अपने द्वारा रची सृष्टि का ठीक-ठीक (वास्तविक तत्व) ज्ञान देकर सशरीर सतलोक चले गए। कृपा प्रेमी पाठक पढ़ें निम्न अमृतवाणी परमेश्वर कबीर साहेब जी द्वारा उच्चारित :-

धर्मदास यह जग बौराना। कोइ न जाने पद निरवाना।।
यहि कारन मैं कथा पसारा। जगसे कहियो राम नियारा।।
यही ज्ञान जग जीव सुनाओ। सब जीवोंका भरम नशाओ।।
अब मैं तुमसे कहों चिताई। त्रयदेवनकी उत्पति भाई।।
कुछ संक्षेप कहों गुहराई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई।।
भरम गये जग वेद पुराना। आदि रामका का भेद न जाना।।
राम राम सब जगत बखाने। आदि राम कोइ बिरला जाने।।
ज्ञानी सुने सो हिरदै लगाई। मूर्ख सुने सो गम्य ना पाई।।
माँ अष्टंगी पिता निरंजन। वे जम दारुण वंशन अंजन।।
पहिले कीन्ह निरंजन राई। पीछेसे माया उपजाई।।
माया रूप देख अति शोभा। देव निरंजन तन मन लोभा।।
कामदेव धर्मराय सत्ताये। देवी को तुरतही धर खाये।।
पेट से देवी करी पुकारा। साहब मेरा करो उबारा।।
टेर सुनी तब हम तहाँ आये। अष्टंगी को बंद छुड़ाये।।
सतलोक में कीन्हा दुराचारि, काल निरंजन दिन्हा निकारि।।
माया समेत दिया भगाई, सोलह संख कोस दूरी पर आई।।
अष्टंगी और काल अब दोई, मंद कर्म से गए बिगोई।।
धर्मराय को हिकमत कीन्हा। नख रेखा से भगकर लीन्हा।।
धर्मराय किन्हाँ भोग विलासा। मायाको रही तब आसा।।
तीन पुत्र अष्टंगी जाये। ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये।।
तीन देव विस्तार चलाये। इनमें यह जग धोखा खाये।।
पुरुष गम्य कैसे को पावै। काल निरंजन जग भरमावै।।
तीन लोक अपने सुत दीन्हा। सुन्न निरंजन बासा लीन्हा।।
अलख निरंजन सुन्न ठिकाना। ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना।।

तीन देव सो उनको धावें। निरंजन का वे पार ना पावें।।
अलख निरंजन बड़ा बटपारा। तीन लोक जिव कीन्ह अहारा।।
ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये। सकल खाय पुन धूर उड़ाये।।
तिनके सुत हैं तीनों देवा। आंधर जीव करत हैं सेवा।।
अकाल पुरुष काहू नहिं चीन्हां। काल पाय सबही गह लीन्हां।।
ब्रह्म काल सकल जग जाने। आदि ब्रह्मको ना पहिचाने।।
तीनों देव और औतारा। ताको भजे सकल संसारा।।
तीनों गुणका यह विस्तारा। धर्मदास मैं कहों पुकारा।।
गुण तीनों की भक्ति में, भूल परो संसार।
कहै कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरैं पार।।

उपरोक्त अमृतवाणी में परमेश्वर कबीर साहेब जी अपने निजी सेवक श्री धर्मदास साहेब जी को कह रहे हैं कि धर्मदास यह सर्व संसार तत्वज्ञान के अभाव से विचलित है। किसी को पूर्ण मोक्ष मार्ग तथा पूर्ण संृष्टि रचना का ज्ञान नहीं है। इसलिए मैं आपको मेरे द्वारा रची संृष्टि की कथा सुनाता हूँ। बुद्धिमान व्यक्ति तो तुरंत समझ जायेंगे। परन्तु जो सर्व प्रमाणों को देखकर भी नहीं मानेंगे तो वे नादान प्राणी काल प्रभाव से प्रभावित हैं, वे भक्ति योग्य नहीं। अब मैं बताता हूँ तीनों भगवानों (ब्रह्मा जी, विष्णु जी तथा शिव जी) की उत्पत्ति कैसे हुई? इनकी माता जी तो अष्टंगी (दुर्गा) है तथा पिता ज्योति निरंजन (ब्रह्म, काल) है। पहले ब्रह्म की उत्पत्ति अण्डे से हुई। फिर दुर्गा की उत्पत्ति हुई। दुर्गा के रूप पर आसक्त होकर काल (ब्रह्म) ने गलती (छेड़-छाड़) की, तब दुर्गा (प्रकृति) ने इसके पेट में शरण ली। मैं वहाँ गया जहाँ ज्योति निरंजन काल था। तब भवानी को ब्रह्म के उदर से निकाल कर इक्कीस ब्रह्माण्ड समेत 16 संख कोस की दूरी पर भेज दिया। ज्योति निरंजन (धर्मराय) ने प्रकृति देवी (दुर्गा) के साथ भोग-विलास किया। इन दोनों के संयोग से तीनों गुणों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी) की उत्पत्ति हुई। इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की ही साधना करके सर्व प्राणी काल जाल में फंसे हैं। जब तक वास्तविक मंत्र नहीं मिलेगा, पूर्ण मोक्ष कैसे होगा?

विशेषः- प्रिय पाठक विचार करें कि श्री ब्रह्मा जी श्री विष्णु जी तथ श्री शिव जी की स्थिति अविनाशी बताई गई थी। सर्व हिन्दु समाज अभी तक तीनों परमात्माओं को अजर, अमर व जन्म-मृत्यु रहित मानते रहे जबकि ये तीनों नाश्वान हैं। इन के पिता काल रूपी ब्रह्म तथा माता दुर्गा (प्रकृति/अष्टांगी) हैं जैसा आप ने पूर्व प्रमाणों में पढ़ा यह ज्ञान अपने शास्त्रों में भी विद्यमान है परन्तु हिन्दु समाज के कलयुगी गुरूओं, ऋषियों, सन्तों को ज्ञान नहीं। जो अध्यापक पाठ्यक्रम (सलेबस) से ही अपरिचित है वह अध्यापक ठीक नहीं (विद्वान नहीं)

है, विद्यार्थियों के भविष्य का शत्रु है। इसी प्रकार जिन गुरूओं को अभी तक यह नहीं पता कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी के माता-पिता कौन हैं? तो वे गुरू, ऋषि,सन्त ज्ञान हीन हैं। जिस कारण से सर्व भक्त समाज को शास्त्र विरूद्ध ज्ञान (लोक वेद अर्थात् दन्त कथा) सुना कर अज्ञान से परिपूर्ण कर दिया। शास्त्रविधि विरूद्ध भक्तिसाधना करा के परमात्मा के वास्तविक लाभ (पूर्ण मोक्ष) से वंचित रखा सबका मानव जन्म नष्ट करा दिया क्योंकि श्री मद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में यही प्रमाण है कि जो शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण पूजा करता है। उसे कोई लाभ नहीं होता पूर्ण परमात्मा कबीर जी ने सन् 1403 से ही सर्व शास्त्रों युक्त ज्ञान अपनी अमृतवाणी (कविरवाणी) में बताना प्रारम्भ किया था। परन्तु उन अज्ञानी गुरूओं ने यह ज्ञान भक्त समाज तक नहीं जाने दिया। जो वर्तमान में स्पष्ट हो रहा है इससे सिद्ध है कि कर्विदेव (कबीर प्रभु) तत्वदर्शी सन्त रूप में स्वयं पूर्ण परमात्मा ही आए थे।

“आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमृतवाणी में सृष्टि रचना का प्रमाण”

आदि रमैणी (सद् ग्रन्थ पृष्ठ नं. 690 से 692 तक)

आदि रमैंणी अदली सारा। जा दिन होते धुंधुंकारा।।1।।
सतपुरुष कीन्हा प्रकाशा। हम होते तखत कबीर खवासा ।।2।।
मन मोहिनी सिरजी माया। सतपुरुष एक ख्याल बनाया।।3।।
धर्मराय सिरजे दरबानी। चौसठ जुगतप सेवा ठांनी।।4।।
पुरुष पृथिवी जाकूं दीन्ही। राज करो देवा आधीनी।।5।।
ब्रह्माण्ड इकीस राज तुम्ह दीन्हा। मन की इच्छा सब जुग लीन्हा।।6।।
माया मूल रूप एक छाजा। मोहि लिये जिनहूँ धर्मराजा।।7।।
धर्म का मन चंचल चित धार्या। मन माया का रूप बिचारा।।8।।
चंचल चेरी चपल चिरागा। या के परसे सरबस जागा।।9।।
धर्मराय कीया मन का भागी। विषय वासना संग से जागी।।10।।
आदि पुरुष अदली अनरागी। धर्मराय दिया दिल सें त्यागी।।11।।
पुरुष लोक सें दीया ढहाही। अगम दीप चलि आये भाई।।12।।
सहज दास जिस दीप रहंता। कारण कौंन कौंन कुल पंथा।।13।।
धर्मराय बोले दरबानी। सुनो सहज दास ब्रह्मज्ञानी।।14।।
चौसठ जुग हम सेवा कीन्ही। पुरुष पृथिवी हम कूं दीन्ही।।15।।
चंचल रूप भया मन बौरा। मनमोहिनी ठगिया भौंरा।।16।।
सतपुरुष के ना मन भाये। पुरुष लोक से हम चलि आये।।17।।
अगर दीप सुनत बड़भागी। सहज दास मेटो मन पागी।।18।।
बोले सहजदास दिल दानी। हम तो चाकर सत सहदानी।।19।।

सतपुरुष सें अरज गुजारूं। जब तुम्हारा बिवाण उतारूं।।20।।
सहज दास को कीया पीयाना। सत्यलोक लीया प्रवाना।।21।।
सतपुरुष साहिब सरबंगी। अविगत अदली अचल अभंगी।।22।।
धर्मराय तुम्हरा दरबानी। अगर दीप चलि गये प्रानी।।23।।
कौंन हुकम करी अरज अवाजा। कहां पठावौ उस धर्मराजा।।24।।
भई अवाज अदली एक साचा। विषय लोक जा तीन्यूं बाचा।।25।।
सहज विमाँन चले अधिकाई। छिन में अगर दीप चलि आई।।26।।
हमतो अरज करी अनरागी। तुम्ह विषय लोक जावो बड़भागी।।27।।
धर्मराय के चले विमाना। मानसरोवर आये प्राना।।28।
मानसरोवर रहन न पाये। दरै कबीरा थांना लाये।।29।।
बंकनाल की विषमी बाटी। तहां कबीरा रोकी घाटी।।30।।
इन पाँचों मिलि जगत बंधाना। लख चौरासी जीव संताना।।31।।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माया। धर्मराय का राज पठाया।।32।।
यौह खोखा पुर झूठी बाजी। भिसति बैकुण्ठ दगासी साजी।।33।।
कंतिम जीव भुलांनें भाई। निज घर की तो खबरि न पाई।।34।।
सवा लाख उपजें नित हंसा। एक लाख विनशें नित अंसा।।35।।
उपति खपति प्रलय फेरी। हर्ष शोक जौंरा जम जेरी।।36।।
पाँचों तत्त्व हैं प्रलय माँही। सत्त्वगुण रजगुण तमगुण झांई।।37।।
आठों अंग मिली है माया। पिण्ड ब्रह्माण्ड सकल भरमाया।।38।।
या में सुरति शब्द की डोरी। पिण्ड ब्रह्माण्ड लगी है खोरी।।39।।
श्वासा पारस मन गह राखो। खोल्हि कपाट अमीरस चाखो।।40।।
सुनाऊं हंस शब्द सुन दासा। अगम दीप है अग है बासा।।41।।
भवसागर जम दण्ड जमाना। धर्मराय का है तलबांना।।42।।
पाँचों ऊपर पद की नगरी। बाट बिहंगम बंकी डगरी।।43।।
हमरा धर्मराय सों दावा। भवसागर में जीव भरमावा।।44।।
हम तो कहैं अगम की बानी। जहाँ अविगत अदली आप बिनानी।।45।।
बंदी छोड़ हमारा नामं। अजर अमर है अस्थीर ठामं।।46।।
जुगन जुगन हम कहते आये। जम जौंरा सें हंस छुटाये।।47।।
जो कोई मानें शब्द हमारा। भवसागर नहीं भरमें धारा।।48।।
या में सुरति शब्द का लेखा। तन अंदर मन कहो कीन्ही देखा।।49।।
दास गरीब अगम की बानी। खोजा हंसा शब्द सहदानी।।50।।

उपरोक्त अमंतवाणी का भावार्थ है कि आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि यहाँ पहले केवल अंधकार था तथा पूर्ण परमात्मा कबीर साहेब जी सत्यलोक में तख्त (सिंहासन) पर विराजमान थे। हम वहाँ चाकर थे। परमात्मा ने ज्योति निरंजन को उत्पन्न किया। फिर उसके तप के प्रतिफल में इक्कीस

ब्रह्माण्ड प्रदान किए। फिर माया (प्रकृति) की उत्पत्ति की। युवा दुर्गा के रूप पर मोहित होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने दुर्गा (प्रकृति) से बलात्कार करने की चेष्टा की। ब्रह्म को उसकी सजा मिली। उसे सत्यलोक से निकाल दिया तथा शाप लगा कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का प्रतिदिन आहार करेगा, सवा लाख उत्पन्न करेगा। यहाँ सर्व प्राणी जन्म-मृत्यु का कष्ट उठा रहे हैं। यदि कोई पूर्ण परमात्मा का वास्तविक शब्द (सच्चानाम जाप मंत्र) हमारे से प्राप्त करेगा, उसको काल की बंद से छुड़वा देंगे। हमारा बन्दी छोड़ नाम है। आदरणीय गरीबदास जी अपने गुरु व प्रभु कबीर परमात्मा के आधार पर कह रहे हैं कि सच्चे मंत्र अर्थात् सत्यनाम व सारशब्द की प्राप्ति कर लो, पूर्ण मोक्ष हो जायेगा। नहीं तो नकली नाम दाता संतों व महन्तों की मीठी-मीठी बातों में फंस कर शास्त्र विधि रहित साधना करके काल जाल में रह जाओगे। फिर कष्ट पर कष्ट उठाओगे।

।।गरीबदास जी महाराज की वाणी।।

(सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 690 से सहाभार)

माया आदि निरंजन भाई, अपने जाऐ आपै खाई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर चेला, ऊँ सोहं का है खेला।।
सिखर सुन्न में धर्म अन्यायी, जिन शक्ति डायन महल पठाई।।
लाख ग्रास नित उठ दूती, माया आदि तख्त की कुती।।
सवा लाख घड़िये नित भांडे, हंसा उतपति परलय डांडे।
ये तीनों चेला बटपारी, सिरजे पुरुषा सिरजी नारी।।
खोखापुर में जीव भुलाये, स्वपना बहिस्त वैकुंठ बनाये।
यो हरहट का कुआ लोई, या गल बंध्या है सब कोई।।
कीड़ी कुजंर और अवतारा, हरहट डोरी बंधे कई बारा।
अरब अलील इन्द्र हैं भाई, हरहट डोरी बंधे सब आई।।
शेष महेश गणेश्वर ताहिं, हरहट डोरी बंधे सब आहिं।
शुक्रादिक ब्रह्मादिक देवा, हरहट डोरी बंधे सब खेवा।।
कोटिक कर्ता फिरता देख्या, हरहट डोरी कहूँ सुन लेखा।
चतुर्भुजी भगवान कहावैं, हरहट डोरी बंधे सब आवैं।।
यो है खोखापुर का कुआ, या में पड़ा सो निश्चय मुवा।

ज्योति निरंजन (कालबली) के वश होकर के ये तीनों देवता (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) अपनी महिमा दिखाकर जीवों को स्वर्ग नरक तथा भवसागर में (लख चौरासी योनियों में) भटकाते रहते हैं। ज्योति निरंजन अपनी माया से नागिनी की तरह जीवों को पैदा करते हैं और फिर मार देते हैं। जिस प्रकार उसको नागिनी खा जाती है। फन मारते समय कई अण्डे फूट जाते हैं क्योंकि नागिनी के

काफी अण्डे होते हैं। जो अण्डे फूटते हैं उनमें से बच्चे निकलते हैं यदि कोई बच्चा नागिनी अपनी दुम से अण्डों के चारों ओर कुण्डली बनाती है फिर उन अण्डों पर अपना फन मारती है। जिससे अण्डा फूट जाता है। उसमें से बच्चा निकल जाता है। कुण्डली (सर्पनी की दुम का घेरा) से बाहर निकल जाता है तो वह बच्चा बच जाता है नहीं तो कुण्डली में वह (नागिनी) छोड़ती नहीं। जितने बच्चे उस कुण्डली के अन्दर होते हैं उन सबको खा जाती है।

माया काली नागिनी, अपने जाये खात। कुण्डली में छोड़ै नहीं, सौ बातों की बात।।

इसी प्रकार यह कालबली का जाल है। निरंजन तक की भक्ति पूरे संत से नाम लेकर करेगें तो भी इस निरंजन की कुण्डली (इक्कीस ब्रह्माण्डों) से बाहर नहीं निकल सकते। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि माया शेराँवाली भी निरंजन की कुण्डली में है। ये बेचारे अवतार धार कर आते हैं और जन्म-मंत्यु का चक्कर काटते रहते हैं। इसलिए विचार करें सोहं जाप जो कि ध्रुव व प्रहलाद व शुकदेव ऋषि ने जपा, वह भी पार नहीं हुए। क्योंकि श्री विष्णु पुराण के प्रथम अंश के अध्याय 12 के श्लोक 93 में पंष्ठ 51 पर लिखा है कि ध्रुव केवल एक कल्प अर्थात् एक हजार चतुर्युग तक ही मुक्त है। इसलिए काल लोक में ही रहे तथा 'ॐ नमः भगवते वासुदेवाय' मन्त्र जाप करने वाले भक्त भी कंष्ण तक की भक्ति कर रहे हैं, वे भी चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटने से नहीं बच सकते। यह परम पूज्य कबीर साहिब जी व आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज की वाणी प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं।

अनन्त कोटि अवतार हैं, माया के गोविन्द।
कर्ता हो हो अवतरे, बहुर पड़े जग फंध।।

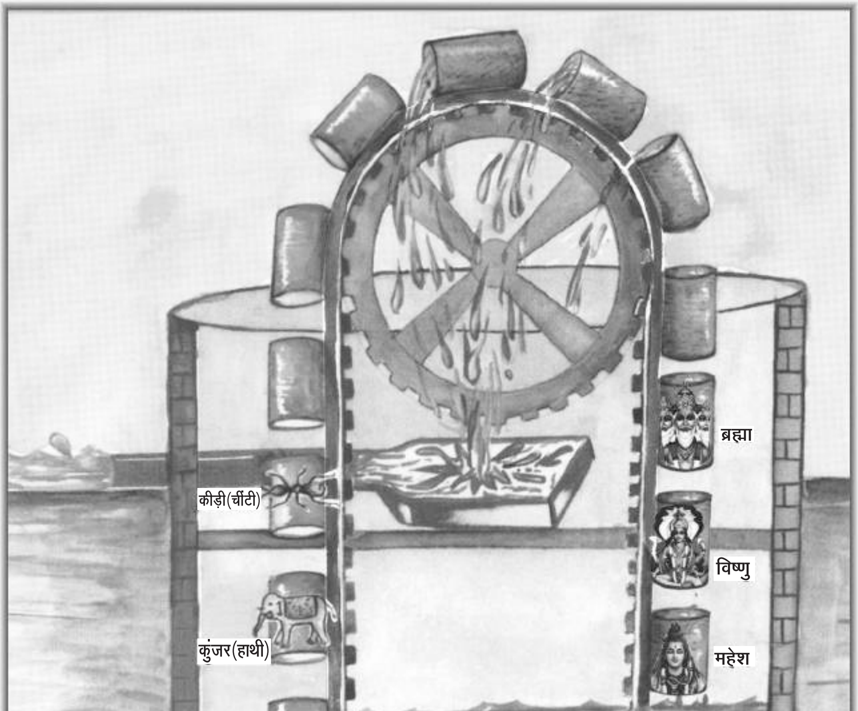

योह हरहट का कुआँ लोई, या गल बंध्या है सब कोई।
कीड़ी कुंजर और अवतारा, हरहट डोरी बंधे कई बारा।।

काल लोक में जन्म-मरण रूपी हरहट (चक्र)

सतपुरुष कबीर साहिब जी की भक्ति से ही जीव मुक्त हो सकता है। जब तक जीव सतलोक में वापिस नहीं चला जाएगा तब तक काल लोक में इसी तरह कर्म करेगा और की हुई नाम व दान धर्म की कमाई स्वर्ग रूपी होटलों में समाप्त करके वापिस कर्म आधार से चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाने वाले काल लोक में चक्कर काटता रहेगा। माया (दुर्गा) से उत्पन्न हो कर करोड़ों गोबिन्द(ब्रह्मा-विष्णु-शिव) मर चुके हैं। भगवान का अवतार बन कर आये थे। फिर कर्म बन्धन में बन्ध कर कर्मों को भोग कर चौरासी लाख योनियों में चले गए। जैसे भगवान विष्णु जी को देवर्षि नारद का शाप लगा। वे श्री रामचन्द्र रूप में अयोध्या में आए। फिर श्री राम जी रूप में बाली का वध किया था। उस कर्म का दण्ड भोगने के लिए श्री कंष्ण जी का जन्म हुआ। फिर बाली वाली आत्मा शिकारी बना तथा अपना प्रतिशोध लिया। श्री कंष्ण जी के पैर में विषाक्त तीर मार कर वध किया। महाराज गरीबदास जी अपनी वाणी में कहते हैं :

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माया, और धर्मराय कहिये।
इन पाँचों मिल परपंच बनाया, वाणी हमरी लहिये।।
इन पाँचों मिल जीव अटकाये, जुगन–जुगन हम आन छुटाये।
बन्दी छोड़ हमारा नामं, अजर अमर है अस्थिर ठामं।।
पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, सुर नर मुनिजन ज्ञानी।
येता को तो राह न पाया, जम के बंधे प्राणी।।
धर्मराय की धूमा–धामी, जम पर जंग चलाऊँ।
जोरा को तो जान न दूगां, बांध अदल घर ल्याऊँ।।
काल अकाल दोहूँ को मोसूं, महाकाल सिर मूंडू।
मैं तो तख्त हजूरी हुकमी, चोर खोज कूं ढूंढू।।
मूला माया मग में बैठी, हंसा चुन–चुन खाई।
ज्योति स्वरूपी भया निरंजन, मैं ही कर्ता भाई।।
संहस अठासी दीप मुनीश्वर, बंधे मुला डोरी।
ऐत्यां में जम का तलबाना, चलिए पुरुष कीशोरी।।
मूला का तो माथा दागूं, सतकी मोहर करूंगा।
पुरुष दीप कूं हंस चलाऊँ, दरा न रोकन दूंगा।।
हम तो बन्दी छोड़ कहावां, धर्मराय है चकवै।
सतलोक की सकल सुनावां, वाणी हमरी अखवै।।
नौ लख पटट्न ऊपर खेलूं, साहदरे कूं रोकूं।
द्वादस कोटि कटक सब काटूं, हंस पठाऊँ मोखूं।।
चौदह भुवन गमन है मेरा, जल थल में सरबंगी।
खालिक खलक खलक में खालिक, अविगत अचल अभंगी।।
अगर अलील चक्र है मेरा, जित से हम चल आए।

पाँचों पर प्रवाना मेरा, बंधि छुटावन धाये।।
जहाँ ओंकार निरंजन नाहीं, ब्रह्मा विष्णु वेद नहीं जाहीं।
जहाँ करता नहीं जान भगवाना, काया माया पिण्ड न प्राणा।।
पाँच तत्व तीनों गुण नाहीं, जोरा काल दीप नहीं जाहीं।
अमर करूं सतलोक पठाँऊ, तातैं बन्दी छोड़ कहाऊँ।।

कबीर परमेश्वर (कविर्देव) की महिमा बताते हुए आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि हमारे प्रभु कविर् (कविर्देव) बन्दी छोड़ हैं। बन्दी छोड़ का भावार्थ है काल की कारागार से छुटवाने वाला, काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्माण्डों में सर्व प्राणी पापों के कारण काल के बंदी हैं। पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) कबीर साहेब पाप का विनाश कर देते हैं। पापों का विनाश न ब्रह्म, न परब्रह्म, न ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी कर सकते हैं। केवल जैसा कर्म है, उसका वैसा ही फल दे देते हैं। इसीलिए यजुर्वेद अध्याय 5 के मन्त्र 32 में लिखा है 'कविरंघारिरसि' कविर्देव (कबीर परमेश्वर) पापों का शत्रु है, 'बम्भारिरसि' बन्धनों का शत्रु अर्थात् बन्दी छोड़ है।

इन पाँचों (ब्रह्मा-विष्णु-शिव-माया और धर्मराय) से ऊपर सतपुरुष परमात्मा (कविर्देव) है। जो सतलोक का मालिक है। शेष सर्व परब्रह्म-ब्रह्म तथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव जी व आदि माया नाशवान परमात्मा हैं। महाप्रलय में ये सब तथा इनके लोक समाप्त हो जाएंगे। आम जीव से कई हजार गुणा ज्यादा लम्बी इनकी उम्र है। परन्तु जो समय निर्धारित है वह एक दिन पूरा अवश्य होगा। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं :-

शिव ब्रह्मा का राज, इन्द्र गिनती कहां। चार मुक्ति वैकुंण्ठ समझ, येता लह्या।।
संख जुगन की जुनी, उम्र बड़ धाारिया। जा जननी कुर्बान, सु कागज पारिया।।
येती उम्र बुलंद मरैगा अंत रे। सतगुरु लगे न कान, न भैंटे संत रे।।

चाहे संख युग की लम्बी उम्र भी क्यों न हो वह एक दिन समाप्त जरूर होगी। यदि सतपुरुष परमात्मा (कविर्देव) कबीर साहेब के नुमाँयदे पूर्ण संत(गुरु) जो तीन नाम का मंत्र (जिसमें एक ओ३म + तत् + सत् सांकेतिक हैं) देता है तथा उसे पूर्ण संत द्वारा नाम दान करने का आदेश है, उससे उपदेश लेकर नाम की कमाई करेंगे तो हम सतलोक के अधिकारी हंस हो सकते हैं। सत्य साधना बिना बहुत लम्बी उम्र कोई काम नहीं आएगी क्योंकि निरंजन लोक में दुःख ही दुःख है।

कबीर, जीवना तो थोड़ा ही भला, जै सत सुमरन होय।
लाख वर्ष का जीवना, लेखै धरै ना कोय।।

कबीर साहिब अपनी (पूर्णब्रह्म की) जानकारी स्वयं बताते हैं कि इन परमात्माओं से ऊपर असंख्य भुजा का परमात्मा सतपुरुष है जो सत्यलोक (सच्च खण्ड, सतधाम) में रहता है तथा उसके अन्तर्गत सर्वलोक [ब्रह्म (काल) के 21 ब्रह्माण्ड व ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति के लोक तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्ड व अन्य सर्व ब्रह्माण्ड] आते

हैं और वहाँ पर सत्यनाम-सारनाम के जाप द्वारा जाया जाएगा जो पूरे गुरु से प्राप्त होता है। सच्चखण्ड (सतलोक) में जो आत्मा चली जाती है उसका पुनर्जन्म नहीं होता। सतपुरुष (पूर्णब्रह्म) कबीर साहेब (कविर्देव) ही अन्य लोकों में स्वयं ही भिन्न-भिन्न नामों से विराजमान हैं। जैसे अलख लोक में अलख पुरुष, अगम लोक में अगम पुरुष तथा अकह लोक में अनामी पुरुष रूप में विराजमान हैं। ये तो उपमात्मक नाम हैं, परन्तु वास्तविक नाम उस पूर्ण पुरुष का कविर्देव (भाषा भिन्न होकर कबीर साहेब) है।

"आदरणीय नानक साहेब जी की वाणी में संष्टि रचना का संकेत"

श्री नानक साहेब जी की अमंतवाणी, महला 1, राग बिलावलु, अंश 1 (गु.ग्र. पं. 839)

आपे सचु कीआ कर जोड़ि। अंडज फोड़ि जोडि विछोड़।।
धरती आकाश कीए बैसण कउ थाउ। राति दिनंतु कीए भउ–भाउ।।
जिन कीए करि वेखणहारा।(3)
त्रितीआ ब्रह्मा–बिसनु–महेसा। देवी देव उपाए वेसा।।(4)
पउण पाणी अगनी बिसराउ। ताही निरंजन साचो नाउ।।
तिसु महि मनुआ रहिआ लिव लाई। प्रणवति नानकु कालु न खाई।।(10)

उपरोक्त अमंतवाणी का भावार्थ है कि सच्चे परमात्मा (सतपुरुष) ने स्वयं ही अपने हाथों से सर्व संष्टि की रचना की है। उसी ने अण्डा बनाया फिर फोड़ा तथा उसमें से ज्योति निरंजन निकला। उसी पूर्ण परमात्मा ने सर्व प्राणियों के रहने के लिए धरती, आकाश, पवन, पानी आदि पाँच तत्व रचे। अपने द्वारा रची संष्टि का स्वयं ही साक्षी है। दूसरा कोई सही जानकारी नहीं दे सकता। फिर अण्डे के फूटने से निकले निरंजन के बाद तीनों श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी की उत्पत्ति हुई तथा अन्य देवी-देवता उत्पन्न हुए तथा अनगिनत जीवों की उत्पत्ति हुई। उसके बाद अन्य देवों के जीवन चरित्र तथा अन्य ऋषियों के अनुभव के छः शास्त्र तथा अठारह पुराण बन गए। पूर्ण परमात्मा के सच्चे नाम (सत्यनाम) की साधना अनन्य मन से करने से तथा गुरु मर्यादा में रहने वाले (प्रणवति) को श्री नानक जी कह रहे हैं कि काल नहीं खाता।

राग मारु(अंश) अमंतवाणी महला 1(गु.ग्र.पं. 1037)

सुनहु ब्रह्मा, बिसनु, महेसु उपाए। सुने वरते जुग सबाए।।
इसु पद बिचारे सो जनु पुरा। तिस मिलिए भरमु चुकाइदा।।(3)
साम वेदु, रुगु जुजरु अथरबणु। ब्रहमें मुख माइआ है त्रैगुण।।

ता की कीमत कहि न सकै। को तिउ बोले जिउ बुलाईदा।।(9)

उपरोक्त अमृतवाणी का सारांश है कि जो संत पूर्ण सृष्टि रचना सुना देगा तथा बताएगा कि अण्डे के दो भाग होकर कौन निकला, जिसने फिर ब्रह्मलोक की सुन्न में अर्थात् गुप्त स्थान पर ब्रह्मा-विष्णु-शिव जी की उत्पत्ति की तथा वह परमात्मा कौन है जिसने ब्रह्म (काल) के मुख से चारों वेदों (पवित्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) को उच्चारण करवाया, वह पूर्ण परमात्मा जैसा चाहे वैसे ही प्रत्येक प्राणी को बुलवाता है। इस सर्व ज्ञान को पूर्ण बताने वाला सन्त मिल जाए तो उसके पास जाइए तथा जो सभी शंकाओं का पूर्ण निवारण करता है, वही पूर्ण सन्त अर्थात् तत्वदर्शी है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ 929 अमृत वाणी श्री नानक साहेब जी की राग रामकली महला 1 दखणी ओअंकार

ओअंकारि ब्रह्मा उतपति। ओअंकारू कीआ जिनि चित। ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि बेद निरमए। ओअंकारि सबदि उधरे। ओअंकारि गुरुमुखि तरे। ओनम अखर सुणहू बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवण सारु।

उपरोक्त अमृतवाणी में श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि ओंकार अर्थात् ज्योति निरंजन (काल) से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। कई युगों मस्ती मार कर ओंकार (ब्रह्म) ने वेदों की उत्पत्ति की जो ब्रह्मा जी को प्राप्त हुए। तीन लोक की भक्ति का केवल एक ओउम् मंत्र ही वास्तव में जाप करने का है। इस ओउम् शब्द को पूरे संत से उपदेश लेकर अर्थात् गुरू धारण करके जाप करने से उद्धार होता है।

विशेष :– श्री नानक साहेब जी ने तीनों मंत्रों (ओउम् + तत् + सत्) का स्थान-स्थान पर रहस्यात्मक विवरण दिया है। उसको केवल पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) ही समझ सकता है तथा तीनों मंत्रों के जाप को उपदेशी को समझाया जाता है।

(पृ. 1038) उत्तम सतिगुरु पुरुष निराले, सबदि रते हरि रस मतवाले।
रिधि, बुधि, सिधि, गिआन गुरु ते पाइए, पूरे भाग मिलाईदा।।(15)
सतिगुरु ते पाए बीचारा, सुन समाधि सचे घरबारा।
नानक निरमल नादु सबद धुनि, सचु रामैं नामि समाइदा (17)

उपरोक्त अमृतवाणी का भावार्थ है कि वास्तविक ज्ञान देने वाले सतगुरु तो निराले ही हैं, वे केवल नाम जाप को जपते हैं, अन्य हठयोग साधना नहीं बताते। यदि आप को धन दौलत, पद, बुद्धि या भक्ति शक्ति भी चाहिए तो वह भक्ति मार्ग का ज्ञान पूर्ण संत ही पूरा प्रदान करेगा, ऐसा पूर्ण संत बड़े भाग्य से ही मिलता है। वही पूर्ण संत विवरण बताएगा कि ऊपर सुन्न (आकाश) में अपना वास्तविक घर (सत्यलोक) परमेश्वर ने रच रखा है।

उसमें एक वास्तविक सार नाम की धुन (आवाज) हो रही है। उस आनन्द में अविनाशी परमेश्वर के सार शब्द से समाया जाता है अर्थात् उस वास्तविक सुखदाई स्थान में वास हो सकता है, अन्य नामों तथा अधूरे गुरुओं से नहीं हो सकता।

आंशिक अमंतवाणी महला पहला (श्री गु. ग्र. पं. 359-360)

सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप त्यागी वादं।(1)
सिंडी सबद सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं।(2)
हरि कीरति रह रासि हमारी गुरु मुख पंथ अतीत (3)
सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरण अनेकं।
कह नानक सुणि भरथरी जोगी पारब्रह्म लिव एकं।(4)

उपरोक्त अमंतवाणी का भावार्थ है कि श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि हे भरथरी योगी जी आप की साधना भगवान शिव तक है, उससे आप को शिव नगरी (लोक) में स्थान मिला है और शरीर में जो सिंगी शब्द आदि हो रहा है वह इन्हीं कमलों का है तथा टेलीविजन की तरह प्रत्येक देव के लोक से शरीर में सुनाई दे रहा है।

हम तो एक परमात्मा पारब्रह्म अर्थात् सर्व से पार जो पूर्ण परमात्मा है अन्य किसी और एक परमात्मा में लौ (अनन्य मन से लग्न) लगाते हैं।

हम ऊपरी दिखावा (भस्म लगाना, हाथ में दंडा रखना) नहीं करते। मैं तो सर्व प्राणियों को एक पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) की सन्तान समझता हूँ। सर्व उसी शक्ति से चलायमान हैं। हमारी मुद्रा तो सच्चा नाम जाप गुरु से प्राप्त करके करना है तथा क्षमा करना हमारा बाणा (वेशभूषा) है। मैं तो पूर्ण परमात्मा का उपासक हूँ तथा पूर्ण सतगुरु का भक्ति मार्ग इससे भिन्न है।

अमंतवाणी राग आसा महला 1 (श्री गु. ग्र. पं. 420)

।।आसा महला 1।। जिनी नामु विसारिआ दूजै भरमि भुलाई। मूलु छोड़ि डाली लगे किआ पावहि छाई।।1।। साहिबु मेरा एकु है अवरु नहीं भाई। किरपा ते सुखु पाइआ साचे परथाई।।3।। गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए। नानक सिरु दे छूटीऐ दरगह पति पाए।।8।।18।।

उपरोक्त वाणी का भावार्थ है कि श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि जो पूर्ण परमात्मा का वास्तविक नाम भूल कर अन्य भगवानों के नामों के जाप में भ्रम रहे हैं वे तो ऐसा कर रहे हैं कि मूल (पूर्ण परमात्मा) को छोड़ कर डालियों (तीनों गुण रूप रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिवजी) की सिंचाई (पूजा) कर रहे हैं। उस साधना से कोई सुख नहीं हो सकता अर्थात् पौधा सूख जाएगा तो छाया में नहीं बैठ पाओगे। भावार्थ है कि शास्त्र विधि रहित साधना करने से व्यर्थ प्रयत्न है। कोई लाभ नहीं। इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी

है। उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मनमुखी (मनमानी) साधना त्याग कर पूर्ण गुरुदेव को समर्पण करने से तथा सच्चे नाम के जाप से ही मोक्ष संभव है, नहीं तो मृत्यु के उपरांत नरक जाएगा।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ नं. 843-844)

।।बिलावलु महला 1।। मैं मन चाहु घणा साचि विगासी राम। मोही प्रेम पिरे प्रभु अबिनासी राम।। अविगतो हरि नाथु नाथह तिसै भावै सो थीऐ। किरपालु सदा दइआलु दाता जीआ अंदरि तूं जीऐ। मैं आधारु तेरा तू खसमु मेरा मै ताणु तकीआ तेरओ। साचि सूचा सदा नानक गुरसबदि झगरु निबेरओ।।4।।2।।

उपरोक्त अमृतवाणी में श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि अविनाशी पूर्ण परमात्मा नाथों का भी नाथ है अर्थात् देवों का भी देव है (सर्व प्रभुओं श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा ब्रह्म व परब्रह्म पर भी नाथ है अर्थात् स्वामी है) मैं तो सच्चे नाम को हृदय में समा चुका हूँ। हे परमात्मा ! सर्व प्राणी का जीवन आधार भी आप ही हो। मैं आपके आश्रित हूँ आप मेरे मालिक हो। आपने ही गुरु रूप में आकर सत्यभक्ति का निर्णायक ज्ञान देकर सर्व झगड़ा निपटा दिया अर्थात् सर्व शंका का समाधान कर दिया।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ नं. 721, राग तिलंग महला 1)

यक अर्ज गुफतम् पेश तो दर कून करतार।
हक्का कबीर करीम तू बेअब परवरदिगार।
नानक बुगोयद जन तुरा तेरे चाकरां पाखाक।

उपरोक्त अमृतवाणी में स्पष्ट कर दिया कि हे (हक्का कबीर) आप सत्कबीर (कून करतार) शब्द शक्ति से रचना करने वाले शब्द स्वरूपी प्रभु अर्थात् सर्व सृष्टि के रचन हार हो, आप ही बेएब निर्विकार (परवरदिगार) सर्व के पालन कर्ता दयालु प्रभु हो, मैं आपके दासों का भी दास हूँ।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ नं. 24, राग सीरी महला 1)

तेरा एक नाम तारे संसार, मैं ऐहा आस ऐहो आधार।
नानक नीच कहै बिचार, धाणक रूप रहा करतार।।

उपरोक्त अमृतवाणी में प्रमाण किया है कि जो काशी में धाणक (जुलाहा) है यही (करतार) कुल का सृजनहार है। अति आधीन होकर श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि मैं सत कह रहा हूँ कि यह धाणक अर्थात् कबीर जुलाहा ही पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) है।

विशेष :- उपरोक्त प्रमाणों के सांकेतिक ज्ञान से प्रमाणित हुआ सृष्टि रचना कैसे हुई? पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति करनी चाहिए जो पूर्ण संत से नाम लेकर ही संभव है।

''अन्य संतों द्वारा संष्टि रचना की दन्त कथा''

अन्य संतों द्वारा जो संष्टि रचना का ज्ञान बताया है वह कैसा है? कंप्या निम्न पढ़े :- संष्टि रचना के विषय में राधास्वामी पंथ के सन्तों के व धन-धन सतगुरू पंथ के सन्त के विचार :-

पवित्र पुस्तक जीवन चरित्र परम संत बाबा जयमल सिंह जी महाराज'' पंष्ठ नं. 102-103 से ''संष्टि की रचना'' (सावन कंपाल पब्लिकेशन, दिल्ली)

''पहले सतपुरुष निराकार था, फिर इजहार (आकार) में आया तो ऊपर के तीन निर्मल मण्डल (सतलोक, अलखलोक, अगमलोक) बन गया तथा प्रकाश तथा मण्डलों का नाद (धुनि) बन गया।''

पवित्र पुस्तक सारवचन (नसर) प्रकाशक :- राधास्वामी सत्संग सभा, दयालबाग आगरा, ''संष्टि की रचना'' पंष्ठ 8 :-

''प्रथम धूंधूकार था। उसमें पुरुष सुन्न समाध में थे। जब कुछ रचना नहीं हुई थी। फिर जब मौज हुई तब शब्द प्रकट हुआ और उससे सब रचना हुई, पहले सतलोक और फिर सतपुरुष की कला से तीन लोक और सब विस्तार हुआ।''

यह ज्ञान तो ऐसा है जैसे एक समय कोई बच्चा नौकरी लगने के लिए साक्षात्कार (इन्टरव्यू) के लिए गया। अधिकारी ने पूछा कि आप ने महाभारत पढ़ा है। लड़के ने उत्तर दिया कि उंगलियों पर रट रखा है। अधिकारी ने प्रश्न किया कि पाँचों पाण्डवों के नाम बताओ। लड़के ने उत्तर दिया कि एक भीम था, एक उसका बड़ा भाई था, एक उससे छोटा था, एक और था तथा एक का नाम मैं भूल गया। उपरोक्त संष्टि रचना का ज्ञान तो ऐसा है।

सतपुरुष व सतलोक की महिमा बताने वाले व पाँच नाम (औंकार - ज्योति निरंजन - ररंकार - सोहं - सत्यनाम) देने वाले व तीन नाम (अकाल मूर्ति - सतपुरुष - शब्द स्वरूपी राम) देने वाले संतों द्वारा रची पुस्तकों से कुछ निष्कर्ष :-

संतमत प्रकाश भाग 3 पंष्ठ 76 पर लिखा है कि ''सच्चखण्ड या सतनाम चौथा लोक है'', यहाँ पर 'सतनाम' को स्थान कहा है। फिर इस पवित्र पुस्तक के पंष्ठ नं. 79 पर लिखा है कि ''एक राम दशरथ का बेटा, दूसरा राम 'मन', तीसरा राम 'ब्रह्म', चौथा राम 'सतनाम', यह असली राम है।'' फिर पवित्र पुस्तक संतमत प्रकाश पहला भाग पंष्ठ नं. 17 पर लिखा है कि ''वह सतलोक है, उसी को सतनाम कहा जाता है।'' पवित्र पुस्तक 'सार वचन नसर यानि वार्तिक' पंष्ठ नं. 3 पर लिखा है कि ''अब समझना चाहिए कि राधा स्वामी पद सबसे उच्चा मुकाम है कि जिसको संतों ने सतलोक और सच्चखण्ड और सार शब्द और सत शब्द और सतनाम और सतपुरुष करके ब्यान किया है।'' पवित्र पुस्तक सार वचन (नसर) आगरा से प्रकाशित पंष्ठ नं. 4 पर भी उपरोक्त ज्यों का त्यों वर्णन है। पवित्र पुस्तक 'सच्चखण्ड की सड़क' पंष्ठ

नं. 226 ''संतों का देश सच्चखण्ड या सतलोक है, उसी को सतनाम-सतशब्द-सारशब्द कहा जाता है।''

विशेष :- उपरोक्त व्याख्या ऐसी लगी जैसे किसी ने जीवन में न तो शहर देखा, न कार देखी और न पैट्रोल देखा है, न ड्राईवर का ज्ञान हो कि ड्राईवर किसे कहते हैं और वह व्यक्ति अन्य साथियों से कहे कि मैं शहर में जाता हूँ, कार में बैठ कर आनंद मनाता हूँ। फिर साथियों ने पूछा कि कार कैसी है, पैट्रोल कैसा है और ड्राईवर कैसा है, शहर कैसा है? उस गुरु जी ने उत्तर दिया कि शहर कहो चाहे कार एक ही बात है, शहर भी कार ही है, पैट्रोल भी कार को ही कहते हैं, ड्राईवर भी कार को ही कहते हैं, सड़क भी कार को ही कहते हैं।

आओ विचार करें - सतपुरुष तो पूर्ण परमात्मा है, सतनाम वह दो मंत्र का नाम है जिसमें एक ओ३म् + तत् सांकेतिक है तथा इसके बाद सारनाम साधक को पूर्ण गुरु द्वारा दिया जाता है। यह सतनाम तथा सारनाम दोनों स्मरण करने के नाम हैं। सतलोक वह स्थान है जहाँ सतपुरुष रहता है। पुण्यात्माएं स्वयं निर्णय करें सत्य तथा असत्य का।

"शास्त्रों में परमात्मा"

प्रश्न :- संसार के शास्त्र तथा सन्त, परमात्मा के विषय में क्या जानकारी देते हैं?

उत्तर :- विश्व के मुख्य शास्त्रों, सद्ग्रन्थों में परमात्मा को बहुत अच्छे तरीके से परिभाषित किया है। पहले यह जानते हैं कि विश्व के मुख्य शास्त्र, सद्ग्रन्थ कौन-से हैं?

1. वेद

वेद दो प्रकार के हैं:- 1. सूक्ष्म वेद, 2. सामान्य वेद।

1. सूक्ष्म वेद :- यह वह ज्ञान है, जो परमात्मा स्वयं पथ्वी पर प्रकट होकर अपने मुख कमल से उच्चारण करके बोलता है, यह सम्पूर्ण ज्ञानयुक्त है।

प्रमाण :- ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 86 मन्त्र 26-27
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 82 मन्त्र 1-2, 3
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 94 मन्त्र 1
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 95 मन्त्र 2
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 20 मन्त्र 1
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 96 मन्त्र 16 से 20
ऋग्वेद मण्डल 9 सुक्त 54 मन्त्र 3
यजुर्वेद अध्याय 9 मन्त्र 1 तथा 32
यजुर्वेद अध्याय 29 मन्त्र 25
अथर्ववेद काण्ड 4 अनुवाक 1 मन्त्र 7
(सामवेद मन्त्र संख्या 822)

अन्य प्रमाण :- श्री मद्भगवत गीता अध्याय 4 मन्त्र 32 में है। कहा है कि सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि सत्य पुरूष अपने मुख कमल से वाणी बोलकर तत्वज्ञान विस्तार से कहता है। कारण :- परमात्मा ने सष्टि के प्रारम्भ में सम्पूर्ण ज्ञान ब्रह्म (ज्योति निरंजन अर्थात् काल पुरूष) के अन्तकरण में डाला था। (Fax किया था) परमात्मा द्वारा किए निर्धारित समय पर यह ज्ञान स्वयं ही काल पुरूष के श्वांसों द्वारा समुद्र में प्रकट हो गया। काल पुरूष ने इसमें से महत्वपूर्ण जानकारी निकाल दी। शेष अधूरा ज्ञान संसार में प्रवेश कर दिया। उसी को चार भागों में चार वेदों के रूप में जाना जाता है।

2. सामान्य वेद :- यह वही आंशिक ज्ञान है जो ब्रह्म (ज्योति निरंजन अर्थात् काल) ने अपने ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा जी को दिया था। यह अधूरा ज्ञान है। इसमें से मुख्य जानकारी निकाली गई है जो ब्रह्म अर्थात् काल ने जान-बूझकर निकाली थी। कारण यह था कि "काल पुरूष" को भय रहता है कि किसी को पूर्ण परमात्मा का ज्ञान न हो जाए। यदि प्राणियों को पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो गया

तो सब इस काल के लोक को त्यागकर पूर्ण परमात्मा के लोक (सत्यलोक=शाश्वत स्थान) में चले जाऐंगे, जहाँ जाने के पश्चात् जन्म-मृत्यु समाप्त हो जाता है। इसलिए ब्रह्म (काल पुरूष) ने पूर्ण परमात्मा के परमपद की जानकारी नहीं बताई, वह नष्ट कर दी थी। उसकी पूर्ति करने के लिए पूर्ण परमात्मा स्वयं सशरीर प्रकट होकर सम्पूर्ण ज्ञान बताता है। अपनी प्राप्ति के वास्तविक मन्त्र भी बताता है जो काल भगवान ने समाप्त करके शेष ज्ञान प्रदान कर रखा होता है। उसको ऋषिजन वेद कहते हैं। ऋषि व्यास जी ने इस वेद को लिखा तथा इस के चार भाग बनाए।

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद जो वर्तमान में प्रचलित हैं। इन्हीं चार वेदों का सारांश काल पुरूष ने श्री मद्भगवत गीता के रूप में श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके महाभारत के युद्ध से पूर्व बोला था। वह भी बाद में महर्षि व्यास जी ने कागज पर लिखा। जो आज अपने को उपलब्ध हैं।

सद्ग्रन्थों में बाईबल का नाम भी है। बाईबल :- यह तीन पुस्तकों का संग्रह है।

1. तौरेत 2. जबूर 3. इंजिल।

बाईबल में सर्वप्रथम सृष्टि की उत्पत्ति की जानकारी है, जिसमें लिखा है कि परमात्मा ने सर्वप्रथम सृष्टि की रचना की। पृथ्वी, सूर्य, दिन-रात, पशु-पक्षी, मनुष्य (नर-नारी) की रचना परमात्मा ने छः दिन में की तथा सातवें दिन तख्त पर जा विराजा। सृष्टि रचना अध्याय 1 के श्लोक 26, 27-28 में यह भी स्पष्ट किया है कि परमात्मा ने मानव को अपने स्वरूप जैसा उत्पन्न किया। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा भी मनुष्य जैसा (नराकार) है।

❖ माँस खाना बाईबल में निषेध :-

इसी उत्पत्ति ग्रन्थ में बाईबल में लिखा है कि (श्लोक 27-28 में) मनुष्यों के खाने के लिए बीजदार पौधे (गेहूँ, चने, बाजरा आदि-आदि) तथा फलदार वृक्ष दिए हैं, यह तुम्हारा भोजन है। पशु-पक्षियों के खाने के लिए घास, पत्तेदार झाड़ियाँ दी हैं। इसके पश्चात् परमात्मा तो अपने निजधाम (सत्यलोक) में तख्त पर जा बैठा। बाईबल में आगे जो ज्ञान है वह काल भगवान का तथा इसके पुत्रों का दिया हुआ है। यदि बाईबल, ग्रन्थ में आगे चलकर माँस खाने के लिए लिखा है तो वह पूर्ण परमात्मा का आदेश नहीं है। वह किसी अधूरे प्रभु का है। पूर्ण परमात्मा (Complete God) के आदेश की अवहेलना हो जाने से पाप का भागी बनता है।

❖ कुरान शरीफ (मजीद):- बाईबल के पश्चात् सद्ग्रन्थों में कुरान शरीफ का नाम श्रद्धा से लिया जाता है, कुरान का ज्ञान दाता भी वही है जिसने बाईबल का ज्ञान दिया है तथा चारों वेदों और श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान दिया है,

इसलिए उसने उन पहलुओं को बाईबल में तथा कुरान में नहीं दोहराया जिन पहलुओं का ज्ञान चारों वेदों तथा श्री मद्भगवत गीता में दिया है।

❖ उपनिषद :- ये सँख्या में 11 (ग्यारह) माने जाते हैं, उपनिषद का ज्ञान किसी ऋषि का अपना अनुभव है। यदि वह अनुभव वेदों व गीता से नहीं मिलता तो वह व्यर्थ है। उसको ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसलिए उपनिषदों को छोड़कर वेदों व गीता के ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उपनिषदों का अधिकतर ज्ञान वेदों व गीता के ज्ञान के विपरीत है। इसी प्रकार बाईबल तथा कुरान के ज्ञान को समझें कि जो ज्ञान वेदों तथा गीता से मेल नहीं करता, उसको ग्रहण नहीं करना चाहिए।

❖ पुराण :- ये सँख्या में 18 (अठारह) माने गए हैं। वैसे यह पुराणों का ज्ञान एक ही बोध माना गया है। यह ज्ञान सर्व प्रथम ब्रह्मा जी ने अपने पुत्रों (दक्ष आदि ऋषियों) को दिया था। राजा दक्ष जी, मनु जी तथा पारासर आदि ऋषियों ने इसका आगे प्रचार करते समय अपना अनुभव भी मिला दिया। इस प्रकार 18 भागों में पुराण का ज्ञान माना गया है। 18 पुराणों के ज्ञान का जो अंश वेदों तथा गीता से मेल नहीं खाता तो वह त्याग देना चाहिए। इसी प्रकार अन्य कोई भी पुस्तक वेदों व गीता के ज्ञान से विपरीत ज्ञान युक्त है, उसे भी त्याग देना उचित है।

गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में गीता ज्ञान दाता अर्जुन को कह रहा है कि तू सर्वभाव से उस परमेश्वर (जो गीता ज्ञान दाता से भिन्न है) की शरण में जा। उस परमेश्वर की कृपा से ही तू परमशान्ति तथा सनातन परमधाम (सत्य लोक) को प्राप्त हो जाएगा। गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि जो ज्ञान (सूक्ष्म वेद) स्वयं परमात्मा अपने मुख कमल से बोलकर बताता है, वह सचिदानन्द घन ब्रह्म की वाणी कही जाती है, उसी को तत्वज्ञान भी कहते हैं जिसमें परमात्मा ने पूर्ण मोक्ष मार्ग का ज्ञान दिया है। गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि उस तत्वज्ञान को तू तत्वदर्शी सन्तों के पास जाकर समझ। उनको डण्डवत प्रणाम करके प्रश्न करने से वे तत्वदर्शी सन्त तुझे तत्व ज्ञान का उपदेश करेंगे। गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में तत्वदर्शी सन्त की पहचान बताई है। कहा है कि जो सन्त संसार रूपी वृक्ष के सर्वांग को जानता है, वह वेदवित अर्थात् वेदों के तात्पर्य को जानता है, वह तत्वदर्शी सन्त है। सूक्ष्म वेद अर्थात् सचिदानन्द घन ब्रह्म की वाणी में बताया है :-

कबीर, अक्षर पुरूष एक पेड़ है, क्षर पुरूष वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।

इसी सचिदानन्द घन ब्रह्म की वाणी को तत्वज्ञान भी कहते हैं।
गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परमपद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी

लौटकर फिर से संसार में नहीं आता अर्थात् उसका पूर्ण मोक्ष हो जाता है। उसी परमात्मा ने संसार रूपी वंक्ष की रचना की है, केवल उसकी भक्ति करो। गीता ज्ञान दाता अपनी साधना से श्रेष्ठ उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति को मानता है, उसी से परमेश्वर का वह परम पद प्राप्त होता है, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् जीव का जन्म-मंत्यु का चक्कर सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

❖ श्री गुरू ग्रन्थ साहेब जी :- यह सिक्ख धर्म का ग्रन्थ माना जाता है, वास्तव में यह कई महात्माओं की अमंत वाणी का संग्रह है, जिसमें श्री नानक देव जी की वाणी अर्थात् महला-पहला की वाणी तत्वज्ञान अर्थात् सूक्ष्मवेद से मेल खाती है क्योंकि श्री नानक जी को परमात्मा मिले थे जिस समय श्री नानक देव साहेब जी सुल्तानपुर शहर में नवाब के यहाँ मोदी खाने में नौकरी करते थे। सुल्तानपुर शहर से आधा कि.मी. दूर बेई नदी बहती है, श्री नानक जी प्रतिदिन उस दरिया में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन परमात्मा जिन्दा बाबा की वेशभूषा में बेई नदी पर प्रकट हुए, वहाँ श्री नानक देव जी से ज्ञान चर्चा हुई। उसके पश्चात् श्री नानक जी ने दरिया में डुबकी लगाई लेकिन बाहर नहीं आए। वहाँ उपस्थित व्यक्तियों ने मान लिया कि नानक जी दरिया में डूब गए हैं। शहर के लोगों ने दरिया में जाल डालकर भी खोजा परन्तु निराशा ही हाथ लगी क्योंकि श्री नानक देव जी तो जिन्दा बाबा के रूप में प्रकट परमात्मा के साथ सच्चखण्ड (सत्यलोक) में चले गए थे। तीन दिन के पश्चात् श्री नानक देव जी वापिस पंथ्वी पर आए। उसी बेई नदी के उसी किनारे पर खड़े हो गए, जहाँ से अन्तर्ध्यान हुए थे। श्री नानक जी को जीवित देखकर सुल्तानपुर के निवासियों की खुशी का ठिकाना नहीं था। श्री नानक जी की बहन नानकी भी सुल्तानपुर शहर में विवाही थी। अपनी बहन के पास श्री नानक जी रहा करते थे। अपने भाई की मौत के गम से दुःखी बहन नानकी को बड़ा आश्चर्य हुआ और गम खुशी में बदल गया। श्री नानक देव को परमात्मा मिले, सच्चा ज्ञान मिला, सच्चा नाम (सत्यनाम) मिला, पुस्तक भाई बाले वाली "जन्म साखी गुरू नानक देव जी" में तथा प्राण संगली हिन्दी लिपि वाली में जिसके सम्पादक सन्त सम्पूर्ण सिंह हैं। इन दोनों पुस्तकों में प्रमाण है कि श्री गुरू नानक देव जी ने स्वयं मर्दाना को बताया कि मुझे परमात्मा जिन्दा बाबा के रूप में बेई नदी पर मिले, जब मैं स्नान करने के लिए गया। मैं तीन दिन तक उन्हीं के साथ रहा था, वह बाबा जिन्दा मेरा सतगुरू भी है तथा वह सर्व संष्टि का रचनहार भी है। इसलिए वही "बाबा" कहलाने का अधिकारी है, अन्य को "बाबा" नहीं कहा जाना चाहिए, उसका नाम कबीर है।

कायम दायका कुदरती सब पीरन सिर पीर आलम बड़ा कबीर।।

इसलिए श्री नानक जी की वाणी (महला 1) है, वह सूक्ष्म वेद से मेल खाती है, यह सही है। अन्य सन्तों की वाणी इतनी सटीक नहीं है। कारण यह है कि

श्री नानक देव जी को परमात्मा कबीर जी मिले थे।

प्रमाण :- श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में पष्ठ 24 पर लिखी वाणी :-

एक सुआन दुई सुआनी नाल भलके भौंकही सदा बियाल,
कुड़ छुरा मुठा मुरदार धाणक रूप रहा करतार।
तेरा एक नाम तारे संसार मैं ऐहो आश ऐहो आधार,
धाणक रूप रहा करतार।
फाही सुरत मलूकी वेश, एह ठगवाड़ा ठगी देश।
खरा सिआणां बहुता भार, धाणक रूप रहा करतार।।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के पष्ठ 731 पर निम्न वाणी है :-

नीच जाति परदेशी मेरा, क्षण आवै क्षण जावै।
जाकि संगत नानक रहंदा, क्यूकर मुंडा पावै।।

पष्ठ 721 पर निम्न वाणी लिखी है :-

यक अर्ज गुफतम पेश तोदर, कून करतार।
हक्का कबीर करीम तू, बेएब परवरदिगार।।

यह उपरोक्त अमतवाणी श्री गुरू ग्रन्थ साहेब जी की है जिससे सिद्ध हुआ कि श्री नानक जी को परमात्मा मिले थे। वह "कबीर करतार" है जो काशी में धाणक रूप में लीला करने आए थे।

सन्त गरीब दास जी (गांव = छुड़ानी, जिला झज्जर हरियाणा) को भी इसी प्रकार जिन्दा बाबा के रूप में कबीर परमात्मा मिले थे, उसी प्रकार सच्चखण्ड (सत्यलोक) लेकर गए थे, फिर वापिस छोड़ा था। सन्त गरीब दास जी ने कहा है:-

गरीब, हम सुल्तानी नानक तारे, दादू कूं उपदेश दिया।
जाति जुलाहा भेद नहीं पाया, काशी माहें कबीर हुआ।।
अन्नत कोटि ब्रह्माण्ड का, एक रति नहीं भार।
सतगुरू पुरूष कबीर है, कुल के सिरजन हार।।

सन्त दादू दास जी महाराज को भी परमात्मा जिन्दा बाबा के रूप में मिले थे। श्री दादू जी 7 वर्ष की आयु के थे। गाँव से बाहर बच्चों में खेल रहे थे। परमात्मा उन्हें भी बाबा जिन्दा के रूप में मिले थे, सत्यलोक लेकर गए थे। दादू जी भी तीन दिन तक अचेत रहे, फिर सचेत हुए तो परमात्मा कबीर जी की महिमा बताने लगे।

जिन मोकूं निज नाम (वास्तविक नाम) दिया, सोई सतगुरू हमार।
दादू दूसरा कोई नहीं, कबीर सिरजनहार।।
दादू नाम कबीर की, जै कोई लेवे ओट।
उनको कबहु लागे नहीं, काल बज्र की चोट।।

सन्त गरीब दास जी ने कहा है :-

दादू कूँ सतगुरू मिले, देई पान की पीख।
बुढा बाबा जिसे कहै, यह दादू की नहीं सीख।।
पहली चोट दादू को, मिले पुरूष कबीर।
टक्कर मारी जद मिले, फिर साम्भर के तीर।।

❖ सन्त धर्मदास जी बान्धवगढ़ वाले को मिले :- जिस समय भ्रमण करते हुए तीर्थों की यात्रा करते हुए धर्मदास जी मथुरा में पहुँचे तो वह परमात्मा जिन्दा महात्मा के रूप में मिले थे। धर्मदास जी को भी परमात्मा सत्यलोक लेकर गए थे। तीन दिन-रात तक धर्मदास जी भी श्री नानक देव जी की तरह परमात्मा के साथ आकाशमण्डल में (सत्यलोक) में रहे। धर्मदास जी का शरीर अचेत रहा। तीसरे दिन होश में आए तो बताया कि मैं सत्यलोक में परमात्मा के साथ गया था। वे परमात्मा काशी शहर में लीला करने आए हैं, उनको मिलूँगा। धर्मदास दास बनारस (काशी) में गए। वहाँ जुलाहे के रूप में परमात्मा को कार्य करते देखकर आश्चर्य चकित रह गए, चरणों में गिर गए तथा यथार्थ भक्ति मार्ग प्राप्त करके कल्याण कराया। अधिक जानकारी पढ़ें इसी पुस्तक के पृष्ठ 57 पर। (किस-किसको मिला परमात्मा)

❖ हजरत मुहम्मद जी को भी परमात्मा मक्का (काबा) में जिन्दा महात्मा के रूप में मिले थे तथा उनको अपने लोक में ले गए जो एक ब्रह्माण्ड में राजदूत भवन रूप में बना है, परमात्मा ने हजरत मुहम्मद जी को समझाया तथा अपना ज्ञान सुनाया परन्तु हजरत मुहम्मद जी ने परमात्मा के ज्ञान को नहीं स्वीकारा और न सत्यलोक में रहने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए हजरत मुहम्मद को वापिस शरीर में भेज दिया। उस समय हजरत मुहम्मद जी के कई हजार मुसलमान अनुयायी बन चुके थे, उनकी महिमा संसार में पूरी गति से फैल रही थी और कुरान के ज्ञान को सर्वोत्तम मान रहे थे।

सन्त गरीब दास जी ने बताया है कि कबीर परमेश्वर जी मुहम्मद साहेब जी को ऊपर लोक में ले गए, परन्तु वहाँ नहीं रहा। गरीब दास जी ने कहा है कि कबीर परमेश्वर जी ने बताया है :-

हम मुहम्मद को वहाँ ले गयो, इच्छा रूपी वहाँ नहीं रहयो।
उल्ट मुहम्मद महल पठाया, गुझ बिरज एक कलमा ल्याया।
रोजा, बंग, निमाज दयी रे, बिस्मल की नहीं बात कही रे।
मारी गऊ शब्द के तीरं, ऐसे होते मुहम्मद पीरं।
शब्दै फेर जिवाई, जीव राख्या माँस नहीं भख्या, ऐसे पीर मुहम्मद भाई।
मारी गऊ ले शब्द तलवार, जीवत हुई नहीं अल्लाह से करी पुकार।
तब हमों (मुझको) मुहम्मद ने याद किया रे।शब्द स्वरूप हम बेग गया रे।

मुई गऊ हमने तुरन्त जीवाई। तब मुहम्मद कै निश्चय आई।।
तुम कबीर अल्लाह दर्वेशा। मोमिन मुहम्मद का गया अंदेशा।।
कहा मुहम्मद सुन जिन्दा साहेब।तुम अल्लाह कबीर और सब नायब।।

इसी का प्रमाण "कुरान शरीफ" की सुरत फुर्कानि 25 आयत 52 से 59 में भी है, कुरान शरीफ के ज्ञान दाता को हजरत मुहम्मद तथा मुसलमान धर्म के सर्व श्रद्धालु अपना खुदा मानते हैं, उसी को पूर्ण परमात्मा भी मानते हैं, इन 52 से 59 आयतों में कुरान ज्ञान दाता ने कहा है कि हे पैगम्बर! हजरत मुहम्मद! जो कुरान की आयतों में मैंने तुझे जो ज्ञान दिया है, तुम उस पर अडिग रहना। अल्लाह कबीर है और ये काफिर उस अल्लाह पर विश्वास नहीं करते। तुम इनकी बातो में न आना, इनके साथ संघर्ष करना, झगड़ा नहीं करना। हे पैगम्बर! यह कबीर नामक परमात्मा है जिसने किसी को बेटा, बहु, सास, ससुर व नाती बनाया है, तुम उस जिन्दा पर भरोसा रखना। (जो तुझे काबा में मिला था) वह वास्तव में अविनाशी परमात्मा है, वह अपने बन्दों (भक्तों) के गुनाहों (पापों) को क्षमा कर देता है, वह कबीर अल्लाह है। यह कबीर अल्लाह वही है जिसका वर्णन बाईबल ग्रन्थ में उत्पत्ति ग्रन्थ में आता है कि उस परमात्मा ने छः दिन में आसमान और धरती तथा इसके बीच के सर्व नक्षत्र बनाए हैं अर्थात् सर्व संष्टि की रचना की और सातवें दिन तख्त पर जा बैठा। उसकी खबर किसी बाहखबर अर्थात् तत्वदर्शी सन्त से पूछो।

❖ हजरत मुहम्मद जी माँस नहीं खाते थे :-

सन्त गरीब दास महाराज (गाँव-छुड़ानी जिला-झज्जर) ने अपनी अमंतवाणी में भी स्पष्ट किया है कि हजरत मुहम्मद तथा एक लाख अस्सी हजार अनुयायी मुसलमान थे। उन्होंने माँस नहीं खाया तथा गाय को बिस्मल (हत्या) नहीं किया।

गरीब, नबी मुहम्मद नमस्कार है, राम रसूल कहाया।
एक लाख अस्सी कूं सौगन्ध, जिन नहीं करद चलाया।।
अर्स–कुर्स पर अल्लह तख्त है, खालिक बिन नहीं खाली।
वे पैगम्बर पाक पुरूष थे, साहेब के अबदाली।।

भावार्थ :- गरीब दास जी ने बताया है कि नबी मुहम्मद को मैं प्रणाम करता हूँ। वे तो परमात्मा के रसूल (संदेशवाहक) थे। उनके एक लाख अस्सी हजार मुसलमान अनुयायी हुए हैं। मैं (गरीब दास जी) कसम खाता हूँ कि उन्होंने (एक लाख अस्सी हजार अनुयायी ने) तथा हजरत मुहम्मद जी ने कभी किसी जीव पर करद (छुरा) नहीं चलाया अर्थात् कभी भी जीव हिंसा नहीं की और माँस नहीं खाया।

परमात्मा आसमान के अन्तिम छोर (सर्व ब्रह्माण्डों के ऊपर के स्थान) पर

विराजमान है, परन्तु उसकी नजरों से कोई भी जीव छिपा नहीं है, वह सर्व जीवों को देखता है। वे पैगम्बर (हजरत मुहम्मद तथा अन्य) पवित्र आत्माऐं थे। वे परमात्मा के कृपा पात्र थे।

❖ सन्त जम्भेश्वर महाराज जी के विचार :-

इसी बात की गवाही सन्त जम्भेश्वर जी महाराज (बिश्नोई धर्म के प्रवर्तक) ने दी है। शब्द संख्या 12 में :-

महमद–महमद न कर काजी, महमद का तो विषम विचारू।
महमद हाथ करद न होती, लोहे घड़ी न सारू।
महमद साथ पयबंर सीधा, एक लाख अस्सी हजारूं।
महमद मरद हलाली होता, तुम ही भए मुरदारूं।

भावार्थ :- सन्त जम्भेश्वर जी ने बताया है कि :- हे काजी! आप उस पवित्र आत्मा मुहम्मद जी का नाम लेकर जो गाय या अन्य जीवों को मारते हो, उस महापुरूष को बदनाम करते हो, हजरत मुहम्मद जी का विचार बहुत कठिन था। आप उनके बताए मार्ग से भटक गए हैं, मुहम्मद जी के हाथ में करद (जीव काटने का छुरा) नहीं था, जो लोहे का अहरण पर घण कूटकर तैयार होता है। हजरत मुहम्मद के साथ एक लाख अस्सी हजार पवित्रात्माऐं मुसलमान अनुयाई थे। वे सीधे-साधे यानि नेक पैगम्बर थे। हजरत मुहम्मद तो शूरवीर हलाल की कमाई करके खाने वाले थे। तुम ही मुरदारू (जीव हिंसा करने वाले) हो। आप उस महापुरूष के अनुसार अपना जीवन निष्पाप बनाओ। जीव हिंसा मत करो।

सन्त जम्भेश्वर को परमात्मा जिन्दा महात्मा के रूप में समराथल में मिले थे:-

जैसा कि वेदों में प्रमाण है कि परमात्मा सत्यलोक में रहता है, वहाँ से गति करके पृथ्वी पर प्रकट होता है, अच्छी आत्माओं को मिलता है। उनको आध्यात्मिक यथार्थ ज्ञान देता है, कवियों की तरह आचरण करता हुआ पृथ्वी पर विचरता है। जिस कारण से प्रसिद्ध कवियों में से भी एक कवि होता है। वह कवि की उपाधि प्राप्त करता है, परमात्मा गुप्त भक्ति के मन्त्र को उद्घृत करता है जो वेदों व कतेबों आदि-आदि पोथियों में नहीं होता। कृप्या इन मन्त्रों का अनुवाद देखें फोटोकापियों में इसी पुस्तक के पृष्ठ 104 पर।

प्रमाण :- ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 20 मन्त्र 1

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मन्त्र 26-27

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 82 मन्त्र 1, 2

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 54 मन्त्र 3

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मन्त्र 1

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 95 मन्त्र 2

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मन्त्र 16 से 20

जैसा कि पूर्व में लिख दिया है कि हजरत मुहम्मद जी तथा अन्य कई महात्माओं को परमात्मा जिन्दा महात्मा के रूप में मिला था उसी प्रकार महात्मा जम्भेश्वर जी महाराज को समराथल में जिन्दा सन्त के रूप में परमात्मा मिले थे। प्रमाण :- श्री जम्भेश्वर जी की वाणी शब्द सख्यां = 50 के कुछ अंशः-

दिल–दिल आप खुदाय बंद जाग्यो, सब दिल जाग्यो सोई।
जो जिन्दो हज काबै जाग्यो, थल सिर जाग्यो सोई।।
नाम विष्णु कै मुसकल घातै, ते काफर सैतानी।
हिन्दु होय का तीर्थ न्हावै, पिंड भरावै, तेपण रहा इवांणी।
तुरक होय हज कांबो धोके, भूला मुसलमाणी।
के के पुरूष अवर जागैला, थल जाग्यो निज वाणी।

भावार्थ :- श्री जम्भेश्वर महाराज जी ने बताया है कि जो परमात्मा जिन्दा महात्मा के रूप में हजरत मुहम्मद जी को काबा (मक्का) में उस समय मिला था जिस समय मुहम्मद जी हज के लिए मक्का में गए थे और उनको जगाया था कि मन्दिर-मक्का, आदि तीर्थ स्थानों पर चक्कर लगाने से परमात्मा नहीं मिलता, परमात्मा प्राप्ति के लिए मन्त्र जाप की आवश्यकता है। श्री जम्भेश्वर जी महाराज ने फिर बताया है कि वही परमात्मा थल सिर (समराथल) स्थान (राजस्थान प्रान्त) में आया और मुझे जगाया? न जाने कितने व्यक्ति और जागेंगे जैसे मेरा समराथल प्रसिद्ध है। यह मेरी निज वाणी यानि विशेष वचन है। मैंने अपनी अनुभव की खास (निज) यथार्थ वाणी बोलकर समराथल के व्यक्तियों में परमात्मा भक्ति की जाग्रति लाई है, सत्य से दूर होकर मुसलमान अभी भी काबे में हज करने जाते हैं, वहाँ धोक लगाते हैं, पत्थर को सिजदा करते हैं जो व्यर्थ है। इसी प्रकार हिन्दु भी तीर्थ पर जाते हैं, भूतों की पूजा करते हैं, पिण्ड भराते हैं, यह व्यर्थ साधना है।

सन्त श्री जम्भेश्वर जी महाराज ने 29 नियम बनाकर स्वच्छ साधक समाज तैयार किया था जो 29 (बीस नौ = 29) नियमों का पालन करते थे तथा श्री जम्भेश्वर जी के द्वारा बताए नाम का जाप करते थे, वे बिश्नोई (29 नियमों का पालन करने वाले) कहलाते थे।

वर्तमान में "बिश्नोई" शायद ही कोई होगा? क्योंकि समय तथा परिस्थिति बदलती रहती हैं। उसी अनुसार मानव का व्यवहार, आचार-विचार बदल जाता है। इसका मुख्य कारण सन्त का अभाव होता है। श्री जम्भेश्वर जी महाराज के स्वर्ग धाम जाने के पश्चात् उनके जैसा सिद्धी-शक्ति व भक्ति वाला महापुरूष नहीं रहा, जिस कारण से मर्यादा पालन नहीं हो पा रही। वर्तमान में "बिश्नोई" धर्म के अनुयायी केवल तीर्थ भ्रमण को ही अधिक महत्व देते हैं तथा उन तीर्थ मुकामों

पर ही हवन आदि करके अपने को धन्य मानते हैं। तीर्थ उस स्थान को कहते हैं जहाँ किसी सन्त ने अपने जीवन काल में साधना की हो तथा कुछ करिश्में दिखाए हों तथा जन्म-स्थान व निर्वाण स्थान भी तीर्थ स्थान व यादगार कहे जाते हैं। मुकाम, धाम ये यादगार हैं, इनका होना भी अनिवार्य है क्योंकि जिसकी घटनास्थली है, उसकी याद बनी रहती है तथा सत्यता की प्रतीक वे घटना स्थली होती हैं, परन्तु साधना-भक्ति बिना जीवन की सार्थकता नहीं है, पूर्ण गुरू की खोज करके उसके बताए मार्ग पर चलकर जीवन सफल बनाऐं क्योंकि प्रत्येक महापुरूष ने गुरू बनाया है, गुरू भी वक्त गुरू हो जो अपने मुख कमल से भक्ति विधि बताए। कुछ समय बीत जाने पर प्रत्येक धर्म में भक्तिविधि बदल दी जाती है, वह हानिकारक होती है। उदाहरण के लिए :-

सन्त श्री जम्भेश्वर जी महाराज के 120 शब्द हैं जो उनके श्री मुख कमल से उच्चारित अमृतवाणी हैं। वर्तमान में प्रत्येक शब्द के प्रारम्भ में "ओम्" अक्षर लगा दिया जो गलत है तथा सन्त जी का अपमान है। यदि "ओम्" शब्द बिना ये शब्द वाणी सार्थक नहीं होती तो श्री जम्भेश्वर जी ही लगाते। जैसे कम्पनी मोटर साईकल का पिस्टन बनाती है, वह पूर्ण रूप से सही होता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी समझ से उस पिस्टन के साथ कोई नट वैल्ड करके चतुरता दिखाए तो कितना ठीक है? व्यर्थ। इसी प्रकार सन्त जम्भेश्वर जी की वाणी के साथ "ओम्" लगाकर पढ़ना भी लाभ के स्थान पर हानि करता है।

❖ इसी प्रकार एक गायत्री मन्त्र बना रखा है जिसे हिन्दू धर्म के व्यक्ति श्रद्धा से जाप करते हैं। मन्त्र इस प्रकार बिगाड़ा है = ''ओम् भूर्भव स्वः तत्सवितुर् वरेणियम् भर्गोदेवस्य धीमहि धीयो यो न प्रचोदयात्''। वास्तव में यह यजुर्वेद अध्याय 36 का मन्त्र 3 है, इसके पहले "ओम्" अक्षर नहीं है। वेद वाणी भगवान द्वारा दी गई है, इसके आगे "ओम्" अक्षर लगाना भगवान का अपमान करना है, पिस्टन को नट वैल्ड करना मात्र है जो व्यर्थ है।

सन्त श्री जम्भेश्वर जी ने शब्द संख्या = 69 में कहा है कि वेदों तथा पुराणों में वह यथार्थ भक्ति मार्ग नहीं है। इनको ठीक से न समझकर भूतों की पूजा शुरू कर दी है। उस अपरमपार परमात्मा को क्यों नहीं जपते जो संसार रूपी वृक्ष की मूल (जड़) है। मूल की पूजा न करके डाल व पात की पूजा व्यर्थ है, जिससे जम व काल से नहीं बच सकता (जम = जन्म, काल= मौत) अर्थात् जन्म-मरण समाप्त नहीं हो सकता।

❖ किसी भले पुरूष ने ही तंत अर्थात् तत्व ज्ञान को पूछा है। उसी ने जीवन की विधि जान ली, जिस कारण से जीवित तो (लाहो) = लाभ होता है, तथा मृत्यु उपरान्त भी हानि नहीं होती, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

शब्द न. 72 की कुछ वाणी :-

वेद कुराण कुमाया जालूं भूला जीव कूजीव कुजाणी।
केवल ज्ञानी थल सिर आयो परगट खेल पसारी।
कोड़ तेतीसां पोह रचावण हारी, ज्यूं छक आईसारी।

शब्द न. 72 में श्री जम्भेश्वर जी ने कहा है कि तत्वज्ञान बताने वाला समराथल में आया। वह केवल ज्ञानी अर्थात् पूर्ण ज्ञान जानने वाला तथा सर्व संष्टि का रचने वाला है। उसी के तत्वज्ञान से पूर्ण तंप्ति हुई है, यह पूर्ण गुरू है।

शब्द सख्या 69 की कुछ वाणी :-

सो अपरंपार कांय न जंपो, तत खिण लहो इमाणो।
भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेलत डालू।
जइया मूल न सीच्चो तो जामण–मरण बिगोवो।
अंहनिश करणी थीर न रहिबा न बंच्यो जम कालूं।
कोई कोई भल मूल सिंचीलो, भल तंत बुझीलो जा जीवन।
की विधि जाणी,
जीवतड़ा कछु लाहो होसी मूवा न आवत हांणी।

❖ श्री जम्भेश्वर जी के गुरू कौन थे?

श्री जम्भेश्वर जी को पूर्ण परमात्मा सर्व का रचनहार जिन्दा महात्मा के रूप में मिले थे। उन्हीं को अपना गुरू माना है, सन्त श्री जम्भेश्वर जी के गुरू थे:-

प्रमाण :- शब्द नं. 90 के अन्त की वाणी :-

जां जां पवन आसण, पाणी आसण, चंद आसण।
सूर (सूर्य) आसण गुरू आसण संमरा थले।
कहै सतगुरू भूल मत जाइयो पड़ोला अभै दोजखे।

शब्द न. 91 की कुछ वाणी :-

छंदे–मंदे बालक बुद्धे, कूड़े कपटे ऋध न सिद्धे।
मेरे गुरू जो दीन्ही शिक्षा सर्व आलिगंण फोरी दीक्षा।
सत–सत भाखत गुरू रायों जरा मरण भो भागूं।

शब्द न0. 92 की कुछ वाणी :-

पढ़ वेद कुराण कुमाया जालों दंत कथा जुग छायो।
सिद्ध साधक को एक मतो, जिन जीवत मुक्त दंढायो।
जुगां–जुगां का जोगी आयो, सतगुरू सिद्ध बताओ।
सहज स्नानी केवल ज्ञानी ब्रह्म ज्ञानी सुकंत अहल्यो न जाई।

उपरोक्त अमंत वाणियों का भावार्थ :- शब्द न. 90 की वाणियों में श्री सन्त जम्भेश्वर जी महाराज जी ने बताया है कि जैसे पवन का आसण (स्थान = डेरा

= आश्रम) है, वायु कुछ कि.मी. ऊपर तक है, उसका भी स्थान है भले ही वह अपने स्थान (आसण) में इधर-ऊधर चलती रहती है। इसी प्रकार पाणी = जल का भी स्थान है, चाँद तथा सूर्य का भी स्थान है। उसी प्रकार सतगुरू मिलने के पश्चात् मैंने समराथल में अपना आसन (अस्थान) स्थापित किया है। मेरे गुरू जी ने कहा है कि परमात्मा को मत भूलना अन्यथा दोजख अर्थात् नरक में गिरोगे। इसलिए सन्त जम्भेश्वर जी मानवमात्र को सतर्क करते हैं कि गुरू बनाओ और परमात्मा की भक्ति करो।

पुष्टि : जैसे सन्त जम्भेश्वर जी को परमात्मा जिन्दा महात्मा के रूप में मिले थे। उसी प्रकार संत गरीब दास जी महाराज जी को गाँव छुड़ानी जिला झज्जर हरियाणा में मिले थे। उन्होनें भी अपनी अमृत वाणी में कहा है कि :-

गरीब, ऐसा सतगुरू हम मिल्या, है जिन्दा जगदीश।
सुन्न विदेशी मिल गया, छत्र मुकुट है शीश।।
गरीब, जिन्दा जोगी जगत गुरू, मालिक मुरसिद पीर।
दोहूं दीन झगड़ा मंड्या, पाया नहीं शरीर।।
गुरू ज्ञान अमान अडोल अबोल है, सतगुरू शब्द सेरी पिछानी।
दास गरीब कबीर सतगुरू मिल्या, आन अस्थान रोप्या छुड़ानी।।

इसी प्रकार सन्त जम्भेश्वर जी ने शब्द संख्या 91 की अमृतवाणियों में कहा है कि मेरे गुरू जी का ज्ञान कूड़े = झूठा, कपटे = कपटयुक्त और बालक बुद्धि अर्थात् अधूरा ज्ञान व मन्दा ज्ञान व ऋद्धि-सिद्धि का नहीं है। यह तो पूर्ण मोक्ष मार्ग है, मेरे गुरू जी ने सर्व सत्य ज्ञान की शिक्षा दी है। वही दीक्षा रूप में मैंने आगे बताया है जिससे "जरा" वृद्ध अवस्था में होने वाला कष्ट, मरण (मृत्यु) का भय समाप्त हो गया।

पुष्टि : श्री मद्भगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में भी यह प्रमाण है। कहा कि जो साधक तत्वदर्शी सन्त की खोज कर लेते हैं, वे जरा-मरण से छूटने का ही प्रयत्न करते हैं क्योंकि वे तत् ब्रह्म से परिचित हो जाते हैं, सर्व कर्मों से भी परिचित होते हैं।

शब्द न. 92 की अमृतवाणियों का भावार्थ:- सन्त जम्भेश्वर जी ने कहा है कि वेद तथा कुरान को ठीक से न समझकर अपनी दंत कथाऐं मानव समाज को सुनाते हैं, सिद्ध और साधक का एक ही मत होता है। वे जीवित ही मृतक होकर संसार में रहते हैं, संसार को असार जानते हैं। परमात्मा प्रत्येक युग में प्रकट होकर यथार्थ भक्ति ज्ञान प्रदान करता है, वह सतगुरू होता है। वह पूर्ण सिद्ध अर्थात् समर्थ होता है। वह सतगुरू व सन्त रूप में प्रकट परमात्मा ही केवल ज्ञानी अर्थात् अकेला सत्यज्ञान जानने वाला होता है। उस सतगुरू से जो दीक्षा लेता है, उस ब्रह्म ज्ञानी अर्थात् सत्य साधक की साधना अहल्यो अर्थात् भक्ति व्यर्थ नहीं

जाती, वह पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

❖ विश्लेषण :- बिश्नोई धर्म के अनुवादकर्ता शब्द न. 50 की अमतवाणी, इस पंक्ति का भावार्थ कैसे करते हैं :-

दिल दिल आप खुदाबंद जाग्यो, सब दिल जाग्यो सोई।
जो जिन्दो हज काबे जाग्यो, थलसिर जाग्यो सोई।।

गलत भावार्थ करते हैं कि जो परमात्मा मुहम्मद जी को काबे में मिला था। वही श्री सन्त जम्भेश्वर जी ही समराथल में आए थे। यदि ऐसा अर्थ होता तो सन्त जम्भेश्वर जी का जन्म तो पवित्र गाँव पीपासर में हुआ था, वे तो वहाँ पहले ही आ चुके थे, समराथल में तो बाद में गए हैं, फिर लालासर में निर्वाण हुआ है। वास्तविक अर्थ पूर्व में लिख दिया है, वह ही सही है। फिर भी जिन महान आत्माओं को परमात्मा मिले हैं, वे पूर्ण सन्त होते हैं, परन्तु सत्य भक्ति अधिकारी के बिना तथा समय बिना नहीं बताते। सन्त जम्भेश्वर जी स्वयं जो नाम जाप करते थे, वह बिश्नोई धर्म में की जाने वाली आरती सँख्या 8 में प्रथम पंक्ति में लिखा है जो इस प्रकार है। आरती-8 :-

"ओम् शब्द सोहंग ध्यावे। प्रभु शब्द सोहंग ध्यावै"

परन्तु इस मन्त्र का जाप कैसे करना है, यह गुरू बिन ज्ञान नहीं होता। श्री संत जम्भेश्वर जी स्वयं उपरोक्त मन्त्र जाप करते थे, अन्य को कहते थे "विष्णु-विष्णु भण रे प्राणी" अर्थात् विष्णु-विष्णु जाप किया करो। कारण यह था कि जब तक अधिकारी शिष्य न हो, तब तक यह मन्त्र नहीं दिया जाता। दूसरी विशेष बात यह है कि परमात्मा जिस भी सन्त महात्मा को मिले हैं, उनको इस मन्त्र को गुप्त रखने के लिए कहा था जब तक कलयुग 5505 वर्ष न बीत जाए। सन् 1997 में कलयुग 5505 वर्ष बीत चुका है, अब यह मन्त्र दिया जाना है। इस मन्त्र को देने वाला भी पूर्ण सन्त चाहिए। इसी प्रकार श्री नानक देव जी स्वयं तो वही नाम जाप करते थे जो बिश्नोई धर्म की आरती सख्या-8 की प्रथम पंक्ति में है, परन्तु अन्य सिक्खों को कहते थे कि वाहे गुरू-वाहे गुरू जपो। कारण यही रहा है इस मन्त्र को कलियुग 5505 वर्ष बीतने तक गुप्त रखना था। अब इस मन्त्र का जाप घर-घर में होगा, इस दो अक्षर के मन्त्र को सतनाम भी कहा जाता है।

यही दो अक्षर का नाम संत घीसा दास जी (गाँव-खेखड़ा, जिला-बाघपत, उत्तरप्रदेश प्रान्त) को जिन्दा रूप में प्रकट होकर परमात्मा ने बताया था। उन्होंने अपनी वाणी में कहा है कि :-

ओहंग सोहंग जपले भाई। राम नाम की यही कमाई।।

सन्त गरीब दास जी गाँव छुड़ानी जिला झज्जर (हरियाणा) वाले को भी परमात्मा जिन्दा महात्मा के वेश में जंगल में मिले थे। उनको भी यह मन्त्र जाप करने को दिया था जो सन्त गरीब दास जी की अमत वाणी में लिखा है :- ''राम

नाम जप कर स्थिर होई, ॐ सोहं मंत्र दोई'', **परन्तु गरीब दास जी ने अन्य को यह मन्त्र जाप करने को नहीं दिया। केवल एक सन्त को दिया उस को सख्त हिदायत दी गई कि तुम भी केवल एक अपने विश्वास पात्र शिष्य को देना। इसी प्रकार वह आगे एक शिष्य को दे। इसी परम्परा के चलते यह मन्त्र केवल मेरे पूज्य गुरूदेव सन्त रामदेवानन्द जी महाराज तक आया। फिर उन्होंने मुझे दिया तथा आगे नाम देने का आदेश 1994 में दिया। 1997 में परमात्मा भी मुझे (संत रामपाल दास को) मिले, यह नाम तथा सार नाम देने की आज्ञा दी। वर्तमान समय मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम समय है।**

प्रश्न था कि संसार ग्रन्थों में परमात्मा को कैसा बताया है?

उत्तर : अभी तक सद्ग्रन्थों तथा परमात्मा प्राप्त कुछ महापुरूषों की संक्षिप्त जानकारी लिखी है।

''परमात्मा साकार है, नराकार है'' यह निष्कर्ष है सर्व सद्ग्रन्थों तथा परमात्मा प्राप्त सन्तों का।

जितने भी सन्त महात्मा हुए हैं, जिन को परमात्मा मिले हैं, उन्होंने कोई धर्म विशेष की स्थापना नहीं की। हाँ, उन्होंने धार्मिकता को उभारा है तथा यथार्थ भक्ति को उजागर करने की कोशिश की है। परन्तु समय बीत जाने पर वह एक धर्म अर्थात् समुदाय का रूप ले लेता है। जैसे सिक्ख धर्म बना, वैसे ही बिश्नोई धर्म बन गया। पहले ये सब हिन्दू धर्म को मानने वाले थे, परन्तु हिन्दू धर्म में सत्य साधना नहीं रही थी तो परमात्मा से प्राप्त यथार्थ ज्ञान के आधार से इन महात्माओं ने भक्ति तथा धार्मिकता को जनता को बताया जिससे अनुयाईयों को लाभ होने लगा, वे उस मार्ग से जुड़ने लगे। इस प्रकार कई सौ वर्ष बीत गए। सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरू नानक देव जी तथा बिश्नोई धर्म के संस्थापक श्री सन्त जम्भेश्वर जी समकालीन थे। वर्तमान में दोनों ही धर्मों में वह भक्ति तथा मर्यादा नहीं रही। इसका पुनः उत्थान मेरे (सन्त रामपाल के) द्वारा किया जा रहा है, वही यथार्थ भक्ति तथा मर्यादा पालन कराई जा रही है जो उपरोक्त महापुरूष करते तथा कराते थे। उपरोक्त महात्माओं के साथ उस समय बहुत व्यक्तियों ने विरोध किया, उनको भला बुरा भी कहा। परन्तु सन्त अपने उद्देश्य पर अडिग रहते हैं क्योंकि वे मानव कल्याण के लिए ही जन्म लेते हैं। वर्तमान में मेरे (सन्त रामपाल जी के) साथ क्या अत्याचार व अन्याय हो रहा है, कैसे बदनाम किया जा रहा हूँ, परन्तु सत्य को मिटाया नहीं जा सकता। इस आध्यात्म ज्ञान के तूफान को कोई नहीं रोक पाएगा। अब सत्य आध्यात्म ज्ञान का विस्फोट हो चुका है।

❖ "बिश्नोई धर्म की भक्ति"

प्रश्नः- बिश्नोई धर्म में क्या भक्ति होती है? इसके प्रवर्तक कौन महापुरूष थे?
उत्तरः- बिश्नोई धर्म के प्रवर्तक श्री जम्भेश्वर जी महाराज हैं। उनका जन्म गाँव पीपासर (राजस्थान प्रांत में भारत वर्ष) में हुआ, इनका भक्तिस्थल गाँव = समराथल (राजस्थान) में है तथा निर्वाण स्थल गाँव लालासर (राजस्थान) के पास में है जिसे मुकाम कहते हैं। (मुकाम का अर्थ स्थान है।)

बिश्नोई धर्म में भक्तिः- श्री जम्भेश्वर जी को श्री विष्णु जी (सतगुण विष्णु) का अवतार माना गया है जो स्वयं श्री जम्भेश्वर जी ने अपनी अमतवाणी में बताया है।

प्रमाण :- शब्द वाणी श्री जम्भेश्वर जी के शब्द सं. 94, 54, 67, 116

बिश्नोई धर्म में श्री विष्णु जी तथा श्री कष्ण जी (जो श्री विष्णु सतगुण के अवतार थे) की भक्ति करने के लिए श्री जम्भेश्वर जी ने अपने मुख कमल से आदेश फरमाया है। बिश्नोई धर्म की भक्ति से स्वर्ग प्राप्ति (बैकुंठवास) ही अन्तिम लाभ है, यह भी अमत वाणी में प्रमाण है।

प्रमाण :- शब्द वाणी सँख्या 13, 14, 15, 23, 25, 31, 33, 34, 64, 67, 78, 97, 98, 102, 119, 120

श्री विष्णु जी को संसार का मूल जड़ अर्थात् पालन करता कहा है।

❖ "सतगुरू से नाम दीक्षा लेकर भक्ति करें"

वाणी शब्द सँख्या = 30

श्री जम्भेश्वर महाराज जी का आदेश है कि गुरू से नाम लेकर भक्ति करने से लाभ होगा, पहले गुरू की परख करो, गुरू बिन दान नहीं करना चाहिए, गुरू ही दान के लिए सुपात्र हैं, कुपात्र को दान नहीं देना चाहिए।

प्रमाण :- शब्द वाणी संख्या :- 1, 23, 26, 29, 30, 35, 36, 37, 40, 41, 45, 77, 85, 86, 90, 91, 101, 107, 108, 120, 56

कुपात्र को दान देना व्यर्थ :- विशेष विवरण = शब्द वाणी सँख्या 56 में है। जिसमें कहा है कि कुपात्र को दान देना तो ऐसा है जैसे अँधेरी रात्रि में चोर चोरी कर ले गया हो और सुपात्र को दान देना ऐसा है जैसे उपजाऊ खेत में बीज डाल दिया हो। बिश्नोई धर्म में तीर्थ पर जाना, वहाँ स्नानार्थ जाना, पिण्ड भराना (पिण्डोदक क्रिया) आदि-आदि पूजाओं का निषेध है।

प्रमाण :- शब्द वाणी सँख्या = 50

❖ श्री जम्भेश्वर महाराज जी को परमात्मा जिन्दा के रूप में गाँव समराथल में मिले थे। प्रमाण :- शब्द वाणी सं. 50, 72, 90

❖ वेद शास्त्रों में पूर्ण मोक्ष मार्ग नहीं है :- प्रमाण - शब्द वाणी सं. 59, 92

❖ भक्ति बिना राज-पाट तथा सर्व महिमा व्यर्थ है :- प्रमाण वाणी सं. 60

❖ **श्री रामचन्द्र जी ने कुछ गलतियाँ की थी :- प्रमाण-शब्द वाणी सं. 62**

❖ **गुरू को छोड़कर शिष्य का सम्मान (महिमा) करना गलत है :-**

प्रमाण :- शब्द वाणी सं. 71

कबीर परमेश्वर जी ने भी कहा है :-

गुरू को तजै भजै जो आना (अन्य)। ता पशुआ को फोकट ज्ञाना।।

❖ **बिश्नोई धर्म में स्वर्ग (बैकुंठ) को ही उत्तम (श्रेष्ठ) लोक माना है :- प्रमाण - शब्द वाणी सं. 73, 119, 94**

"हरियाणा में हरि आऐंगे"

श्री जम्भेश्वर जी की शब्द वाणी सं. 102 में लिखा है :-

विष्णु–विष्णु भण अजर जरी जै, धर्म हुवै पापां छुटिजै।
हरि पर हरि को नाम जपीजै, हिरयालो हरि आण हरूं, हरि नारायण देव नरूं।
आशा सास निरास भइलो, पाइलो मोक्ष दवार खिंणू।।

भावार्थ :- इसमें कहा है कि "हिरयालो हरि आण हरुं" इसमें "हरियालो" शब्द का अर्थ हरियाणा है। उस समय हरियाणा प्रांत नहीं था। इसलिये "हरियालो" लिख दिया गया है। इस पंक्ति का अर्थ कि "हरि अर्थात् परमात्मा हरियालो यानि हरियाणा प्रान्त में आऐंगे।" परमात्मा जिसे नारायण कहते हैं। वे नर अर्थात् साधारण मनुष्य का रूप धारण करके आऐंगे। वैसे नारायण का अर्थ है जल पर प्रकट होने वाला, वह केवल परमेश्वर ही है। इसलिए परमात्मा को नारायण कहा जाता है। उनके द्वारा बताए ज्ञान से निराश भक्तों की आशा जागेगी और मोक्ष का द्वार प्राप्त होगा। भावार्थ है कि शास्त्र विरूद्ध साधना करने से साधक भक्ति करके भी कोई लाभ प्राप्त नहीं कर रहे थे, परमात्मा हरियाणा में आऐंगे। उनके द्वारा बताई शास्त्रोक्त भक्ति की साधना से मोक्ष का द्वार प्राप्त होगा तथा निराशों को आशा होगी कि अब यहाँ भी सुख मिलेगा तथा प्रलोक में भी तथा मोक्ष प्राप्ति अवश्य होगी।

वाणी :- हरि पर हीरे को नाम उपीजै। **यह वाणी इस प्रकार पढ़ें :-**

हर पल हरि को नाम जपीजै।

"श्री जम्भेश्वर जी के भी कोई गुरू थे" (पहले लिख दिया है।)

प्रमाण :- शब्द वाणी सं. 90, 91, 92

शब्द सं. 90 की गुरू सम्बन्धी वाणी गुरू आसण समराथले।

कहै सतगुरू भूल मत जाइयों पड़ोला अभै दोजखे।

शब्द सं. 91 से कुछ अंश :-

मेरे गुरू जो दीन्ही शिक्षा, सर्व आलिडगंण फेरी दीक्षा।
सत सत भाखत गुरू रायों जरा मरण भय भागु।।

प्रमाण के लिए पुस्तक ''गीता तेरा ज्ञान अमृत'' से संबंधित श्रीमद्भगवत गीता के कुछ अध्याय तथा श्लोक जिनका हिन्दी अनुवाद ''श्री जयदयाल गोयन्दका'' द्वारा किया गया है तथा भारत की प्रसिद्ध प्रैस ''गीता प्रैस गोरखपुर'' (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित है।

(श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 1 में कोई भी श्लोक गीता ज्ञान दाता का बोला हुआ नहीं है। इसलिए इसको छोड़ दिया जाता है।)

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 2 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अध्याय २ ३५

कथम्, भीष्मम्, अहम्, सङ्ख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन,
इषुभिः, प्रति, योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन ॥ ४ ॥

तब अर्जुन बोले कि—

मधुसूदन	= हे मधुसूदन!	**द्रोणम्**	= द्रोणाचार्यके
अहम्	= मैं	**प्रति योत्स्यामि**	= विरुद्ध लड़ूँगा?
सङ्ख्ये	= रणभूमिमें		
कथम्	= किस प्रकार	**(यतः)**	= क्योंकि
इषुभिः	= बाणोंसे	**अरिसूदन**	= हे अरिसूदन!
भीष्मम्	= भीष्मपितामह	**(तौ)**	= वे दोनों ही
च	= और	**पूजार्हौ**	= पूजनीय हैं।

गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्,
भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु,
गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

इसलिये इन—

महानुभावान्	= महानुभाव	**हि**	= क्योंकि
गुरून्	= गुरुजनोंको	**गुरून्**	= गुरुजनोंको
अहत्वा	= न मारकर (मैं)	**हत्वा**	= मारकर
इह	= इस	**(अपि)**	= भी
लोके	= लोकमें	**इह**	= इस लोकमें
भैक्ष्यम्	= भिक्षाका अन्न	**रुधिरप्रदिग्धान्**	= रुधिरसे सने हुए
अपि	= भी	**अर्थकामान्**	= अर्थ और कामरूप
भोक्तुम्	= खाना	**भोगान्, एव**	= भोगोंको ही
श्रेयः	= कल्याणकारक (समझता हूँ)।	**तु**	= तो
		भुञ्जीय	= भोगूँगा।

न, च, एतत्, विद्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यत्,
वा, जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान्, एव, हत्वा, न,
जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः, प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

एतत्	= यह	**नः**	= हमको (वे)
च	= भी	**जयेयुः**	= जीतेंगे। (और)
न	= नहीं	**यान्**	= जिनको
विद्मः	= जानते (कि)	**हत्वा**	= मारकर (हम)
नः	= हमारे लिये (युद्ध करना और न करना—इन)	**न, जिजीविषामः**	= जीना भी नहीं चाहते,
		ते	= वे
कतरत्	= दोनोंमेंसे कौन-सा	**एव**	= ही (हमारे आत्मीय)
गरीयः	= श्रेष्ठ है	**धार्तराष्ट्राः**	= धृतराष्ट्रके पुत्र
यत्, वा	= अथवा (यह भी नहीं जानते कि)	**प्रमुखे**	= हमारे सामने मुकाबलेमें
जयेम	= उन्हें हम जीतेंगे	**अवस्थिताः**	= खड़े हैं।
यदि, वा	= या		

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसम्मूढचेताः,
यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः,
ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्य-दोषोपहत-स्वभावः	= कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाव-वाला (तथा)	**त्वाम्**	= आपसे
		पृच्छामि	= पूछता हूँ (कि)
		यत्	= जो (साधन)
धर्मसम्मूढचेताः	= धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ (मैं)	**निश्चितम्**	= निश्चित
		श्रेयः	= कल्याणकारक

स्यात्	= हो,	ते	= आपका
तत्	= वह	शिष्य:	= शिष्य हूँ (इसलिये)
मे	= मेरे लिये	त्वाम्	= आपके
ब्रूहि	= { कहिये; (क्योंकि)	प्रपन्नम्	= शरण हुए
		माम्	= मुझको
अहम्	= मैं	शाधि	= शिक्षा दीजिये।

न, तु, एव, अहम्,जातु, न,आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपा:,
न, च, एव, न, भविष्याम:, सर्वे, वयम्, अत:, परम्॥ १२ ॥

न	= न	न	= नहीं
तु	= तो	(आसन्)	= थे
(एवम्)	= ऐसा	च	= और
एव	= ही (है कि)	न	= न
अहम्	= मैं	(एवम्)	= ऐसा
जातु	= किसी कालमें	एव	ही (है कि)
न	= नहीं	अत:	= इससे
आसम्	= था (अथवा)	परम्	= आगे
त्वम्	= तू	वयम्	= हम
न	= नहीं	सर्वे	= सब
(आसी:)	= था (अथवा)	न	= नहीं
इमे	= ये	भविष्याम:	= रहेंगे।
जनाधिपा:	= राजालोग		

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति॥ १७॥

इस न्यायके अनुसार—

अविनाशि	= नाशरहित	ततम्	= व्याप्त है।
तु	= तो (तू)	अस्य	= इस
तत्	= उसको	अव्ययस्य	= अविनाशीका
विद्धि	= जान,	विनाशम्	= विनाश
येन	= जिससे	कर्तुम्	= करनेमें
इदम्	= यह		
सर्वम्	= { सम्पूर्ण जगत् (दृश्यवर्ग)	कश्चित्	= कोई भी
		न, अर्हति	= समर्थ नहीं है।

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति,
नरः, अपराणि, तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि,
अन्यानि, संयाति, नवानि, देही ॥ २२ ॥

यथा	= जैसे	**तथा**	= वैसे ही
नरः	= मनुष्य	**देही**	= जीवात्मा
जीर्णानि	= पुराने	**जीर्णानि**	= पुराने
वासांसि	= वस्त्रोंको	**शरीराणि**	= शरीरोंको
विहाय	= त्यागकर	**विहाय**	= त्यागकर
अपराणि	= दूसरे	**अन्यानि**	= दूसरे
नवानि	= नये (वस्त्रोंको)	**नवानि**	= नये (शरीरोंको)
गृह्णाति	= ग्रहण करता है,	**संयाति**	= प्राप्त होता है।

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च, तस्मात्,
अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥ २७ ॥

हि	= क्योंकि (इस मान्यताके अनुसार)	**जन्म**	= जन्म
		ध्रुवम्	= निश्चित है।
		तस्मात्	= इससे (भी इस)
जातस्य	= जन्मे हुएकी	**अपरिहार्ये**	= बिना उपायवाले
मृत्युः	= मृत्यु	**अर्थे**	= विषयमें
ध्रुवः	= निश्चित है	**त्वम्**	= तू
च	= और	**शोचितुम्**	= शोक करनेको
मृतस्य	= मरे हुएका	**न, अर्हसि**	= योग्य नहीं है।

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्,
तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

वा	= या (तो तू युद्धमें)	**भोक्ष्यसे**	= भोगेगा।
हतः	= मारा जाकर	**तस्मात्**	= इस कारण
स्वर्गम्	= स्वर्गको	**कौन्तेय**	= हे अर्जुन! (तू)
प्राप्स्यसि	= प्राप्त होगा	**युद्धाय**	= युद्धके लिये
वा	= अथवा (संग्राममें)	**कृतनिश्चयः**	= निश्चय करके
जित्वा	= जीतकर		
महीम्	= पृथ्वीका राज्य	**उत्तिष्ठ**	= खड़ा हो जा।

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ,
ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि॥ ३८॥

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी—

जयाजयौ	= जय-पराजय	**युज्यस्व**	= तैयार हो जा,
लाभालाभौ	= लाभ-हानि (और)	**एवम्**	= इस प्रकार (युद्ध करनेसे तू)
सुखदुःखे	= सुख-दुःखको	**पापम्**	= पापको
समे	= समान	**न**	= नहीं
कृत्वा	= समझकर,	**अवाप्स्यसि**	= प्राप्त होगा।
ततः	= उसके बाद		
युद्धाय	= युद्धके लिये		

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, सम्प्लुतोदके,
तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः॥ ४६॥

क्योंकि—

सर्वतः	= सब ओरसे	**(अस्ति)**	= रहता है,
सम्प्लुतोदके	= परिपूर्ण जलाशयके	**विजानतः**	= (ब्रह्मको) तत्त्वसे जाननेवाले
(प्राप्ते सति)	= प्राप्त हो जानेपर	**ब्राह्मणस्य**	= ब्राह्मणका
उदपाने	= छोटे जलाशयमें (मनुष्यका)	**सर्वेषु**	= समस्त
		वेदेषु	= वेदोंमें
यावान्	= जितना	**तावान्**	= उतना (ही प्रयोजन रह जाता है)।
अर्थः	= प्रयोजन		

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्॥ ५१॥

हि	= क्योंकि	**फलम्**	= फलको
बुद्धियुक्ताः	= समबुद्धिसे युक्त	**त्यक्त्वा**	= त्यागकर
मनीषिणः	= ज्ञानीजन	**जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः**	= जन्मरूप-बन्धनसे मुक्त हो
कर्मजम्	= कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले		

अनामयम्	= निर्विकार	**पदम्**	= परमपदको
		गच्छन्ति	= प्राप्त हो जाते हैं।

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला,
समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

और—

श्रुतिविप्रतिपन्ना	= भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई	**अचला**	= स्थिर
		स्थास्यति	= ठहर जायगी,
		तदा	= तब (तू)
ते	= तेरी		
बुद्धिः	= बुद्धि	**योगम्**	= योगको
यदा	= जब	**अवाप्स्यसि**	= प्राप्त हो जायगा अर्थात् तेरा परमात्मासे नित्य संयोग हो जायगा।
समाधौ	= परमात्मामें		
निश्चला	= अचल (और)		

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः,
रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते ॥ ५९ ॥

यद्यपि—

निराहारस्य	= (इन्द्रियोंके द्वारा) विषयोंको ग्रहण न करनेवाले	**रसवर्जम्**	= आसक्ति निवृत्त नहीं होती।
		अस्य	= इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी (तो)
देहिनः	= पुरुषके (भी केवल)	**रसः**	= आसक्ति
विषयाः	= विषय (तो)	**अपि**	= भी
		परम्	= परमात्माका
विनिवर्तन्ते	= निवृत्त हो जाते हैं, (परंतु उनमें रहनेवाली)	**दृष्ट्वा**	= साक्षात्कार करके
		निवर्तते	= निवृत्त हो जाती है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 3 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच—

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन,
तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव॥ १॥

इसपर अर्जुनने प्रश्न किया कि—

जनार्दन	= हे जनार्दन!	**तत्**	= तो फिर
चेत्	= यदि	**केशव**	= हे केशव!
ते	= आपको	**माम्**	= मुझे
कर्मणः	= कर्मकी अपेक्षा	**घोरे**	= भयंकर
बुद्धिः	= ज्ञान	**कर्मणि**	= कर्ममें
ज्यायसी	= श्रेष्ठ	**किम्**	= क्यों
मता	= मान्य है	**नियोजयसि**	= लगाते हैं?

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे
तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम्॥ २॥

व्यामिश्रेण, इव	= मिले हुए-से	**तत्**	= उस
वाक्येन	= वचनोंसे	**एकम्**	= एक बातको
मे	= मेरी	**निश्चित्य**	= निश्चित करके
बुद्धिम्	= बुद्धिको	**वद**	= कहिये,
		येन	= जिससे
मोहयसि, इव	= मानो मोहित कर रहे हैं (इसलिये)	**अहम्**	= मैं
		श्रेयः	= कल्याणको
		आप्नुयाम्	= प्राप्त हो जाऊँ।

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ,
ज्ञानयोगेन, साङ्ख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम्॥ ३॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज बोले—

अनघ	= हे निष्पाप!	**अस्मिन्**	= इस

लोके	= लोकमें	**साङ्ख्यानाम्**	= साङ्ख्ययोगियों-की (निष्ठा तो)
द्विविधा	= दो प्रकारकी		
निष्ठा	= निष्ठा*	**ज्ञानयोगेन**	= ज्ञानयोगसे[1] (और)
मया	= मेरे द्वारा		
पुरा	= पहले	**योगिनाम्**	= योगियोंकी (निष्ठा)
प्रोक्ता	= कही गयी है। (उनमेंसे)	**कर्मयोगेन**	= कर्मयोगसे[2] (होती है)।

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,
न, च, सन्न्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति॥ ४॥

परंतु किसी भी मार्गके अनुसार कर्मोंको स्वरूपसे त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि—

पुरुषः	= मनुष्य	**च**	= और
न	= न (तो)	**न**	= न
कर्मणाम्	= कर्मोंका	**सन्न्यसनात्,**	= (कर्मोंके केवल) त्यागमात्रसे
अनारम्भात्	= आरम्भ किये बिना	**एव**	
नैष्कर्म्यम्	= निष्कर्मताको[3] यानी योग-निष्ठाको	**सिद्धिम्**	= सिद्धि यानी सांख्यनिष्ठाको (ही)
अश्नुते	= प्राप्त होता है	**समधिगच्छति**	= प्राप्त होता है।

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्,
कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः॥ ५॥

तथा सर्वथा कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता—

हि	= निःसन्देह	**अकर्मकृत्**	= बिना कर्म किये
कश्चित्	= कोई भी (मनुष्य)	**न**	= नहीं
जातु	= किसी भी कालमें	**तिष्ठति**	= रहता;
क्षणम्	= क्षणमात्र	**हि**	= क्योंकि
अपि	= भी		

सर्वः	= सारा मनुष्य-समुदाय	**अवशः**	= परवश हुआ
प्रकृतिजैः	= प्रकृतिजनित	**कर्म**	= कर्म करनेके लिये
गुणैः	= गुणोंद्वारा	**कार्यते**	= बाध्य किया जाता है।

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्,
इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते॥ ६॥

इसलिये—

यः	= जो	**इन्द्रियार्थान्**	= इन्द्रियोंके विषयोंका
विमूढात्मा	= मूढ़बुद्धि मनुष्य	**स्मरन्**	= चिन्तन करता
कर्मेन्द्रियाणि	= समस्त इन्द्रियों-को (हठपूर्वक ऊपरसे)	**आस्ते**	= रहता है,
		सः	= वह
संयम्य	= रोककर	**मिथ्याचारः**	= मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी
मनसा	= मनसे (उन)	**उच्यते**	= कहा जाता है।

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन,
कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते॥ ७॥

तु	= किंतु	**असक्तः**	= अनासक्त हुआ
अर्जुन	= हे अर्जुन!	**कर्मेन्द्रियैः**	= समस्त इन्द्रियोंद्वारा
यः	= जो (पुरुष)	**कर्मयोगम्**	= कर्मयोगका
मनसा	= मनसे	**आरभते**	= आचरण करता है,
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको	**सः**	= वही
नियम्य	= वशमें करके	**विशिष्यते**	= श्रेष्ठ है।

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,
शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः॥ ८॥

इसलिये—

त्वम्	= तू	**ज्यायः**	= श्रेष्ठ है
नियतम्	= शास्त्रविहित	**च**	= तथा
कर्म	= कर्तव्यकर्म	**अकर्मणः**	= कर्म न करनेसे
कुरु	= कर;	**ते**	= तेरा
हि	= क्योंकि	**शरीरयात्रा**	= शरीर-निर्वाह
अकर्मणः	= कर्म न करनेकी अपेक्षा	**अपि**	= भी
		न	= नहीं
कर्म	= कर्म करना	**प्रसिद्ध्येत्**	= सिद्ध होगा।

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,
तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर ॥ ९ ॥

यज्ञार्थात्	= यज्ञके निमित्त किये जानेवाले
कर्मणः	= कर्मोंसे अतिरिक्त
अन्यत्र	= दूसरे कर्मोंमें (लगा हुआ ही)
अयम्	= यह
लोकः	= मनुष्य-समुदाय
कर्मबन्धनः	= कर्मोंसे बँधता है।
	(इसलिये)
कौन्तेय	= हे अर्जुन! (तू)
मुक्तसङ्गः	= आसक्तिसे रहित होकर
तदर्थम्	= उस यज्ञके निमित्त (ही भलीभाँति)
कर्म	= कर्तव्यकर्म
समाचर	= कर।

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,
अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥ १० ॥

प्रजापतिः	= प्रजापति ब्रह्माने
पुरा	= कल्पके आदिमें
सहयज्ञाः	= यज्ञसहित
प्रजाः	= प्रजाओंको
सृष्ट्वा	= रचकर (उनसे)
उवाच	= कहा (कि)
(यूयम्)	= तुमलोग
अनेन	= इस यज्ञके द्वारा
प्रसविष्यध्वम्	= वृद्धिको प्राप्त होओ (और)
एषः	= यह यज्ञ
वः	= तुमलोगोंको
इष्टकामधुक्	= इच्छित भोग प्रदान करनेवाला
अस्तु	= हो।

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,
परस्परम्, भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अनेन	= इस यज्ञके द्वारा
देवान्	= देवताओंको
भावयत	= उन्नत करो (और)
ते	= वे
देवाः	= देवता
वः	= तुमलोगोंको
भावयन्तु	= उन्नत करें।

(एवम्)	= इस प्रकार (निःस्वार्थभावसे)	**(यूयम्)**	= तुमलोग
		परम्	= परम
परस्परम्	= एक–दूसरेको	**श्रेयः**	= कल्याणको
भावयन्तः	= उन्नत करते हुए	**अवाप्स्यथ**	= प्राप्त हो जाओगे।

इष्टान्, भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः,
तैः, दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः ॥ १२ ॥

यज्ञभाविताः	= यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए	**तैः**	= उन देवताओंके द्वारा
देवाः	= देवता	**दत्तान्**	= दिये हुए भोगोंको
वः	= तुमलोगोंको (बिना माँगे ही)	**यः**	= जो पुरुष
		एभ्यः	= इनको
इष्टान्	= इच्छित	**अप्रदाय**	= बिना दिये (स्वयम्)
भोगान्	= भोग		
हि	= निश्चय ही	**भुङ्क्ते**	= भोगता है,
		सः	= वह
दास्यन्ते	= देते रहेंगे। (इस प्रकार)	**स्तेनः**	= चोर
		एव	= ही है।

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः,
भुञ्जते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात् ॥ १३ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः	= यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले	**आत्मकारणात्**	= अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही
सन्तः	= श्रेष्ठ पुरुष		
सर्वकिल्बिषैः	= सब पापोंसे	**पचन्ति**	= (अन्न) पकाते हैं,
मुच्यन्ते	= मुक्त हो जाते हैं (और)	**ते**	= वे
		तु	= तो
ये	= जो	**अघम्**	= पापको (ही)
पापाः	= पापीलोग	**भुंजते**	= खाते हैं।

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,
यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,
तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

क्योंकि—

भूतानि = सम्पूर्ण प्राणी
अन्नात् = अन्नसे
भवन्ति = उत्पन्न होते हैं,
अन्नसम्भवः = अन्नकी उत्पत्ति
पर्जन्यात् = वृष्टिसे (होती है)
पर्जन्यः = वृष्टि
यज्ञात् = यज्ञसे
भवति = होती है (और)
यज्ञः = यज्ञ
कर्मसमुद्भवः = विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है।
कर्म = कर्मसमुदायको (तू)
ब्रह्मोद्भवम् = वेदसे उत्पन्न (और)
ब्रह्म = वेदको
अक्षरसमुद्भवम् = अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ
विद्धि = जान।
तस्मात् = इससे (सिद्ध होता है कि)
सर्वगतम् = सर्वव्यापी
ब्रह्म = परम अक्षर परमात्मा
नित्यम् = सदा ही
यज्ञे = यज्ञमें
प्रतिष्ठितम् = प्रतिष्ठित है।

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः,
अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति ॥ १६ ॥

पार्थ = हे पार्थ!
यः = जो पुरुष
इह = इस लोकमें
एवम् = इस प्रकार (परम्परासे
प्रवर्तितम् = प्रचलित
चक्रम् = सृष्टिचक्रके
न, अनुवर्तयति = अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता,
सः = वह
इन्द्रियारामः = इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला
अघायुः = पापायु (पुरुष)
मोघम् = व्यर्थ (ही)
जीवति = जीता है।

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,
असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः ॥ १९ ॥

तस्मात्	= इसलिये (तू)	**असक्तः**	= आसक्तिसे रहित होकर
सततम्	= निरन्तर		
असक्तः	= आसक्तिसे रहित होकर (सदा)	**कर्म**	= कर्म
कार्यम्, कर्म	= कर्तव्यकर्मको	**आचरन्**	= करता हुआ
समाचर	= भलीभाँति करता रह।	**पूरुषः**	= मनुष्य
		परम्	= परमात्माको
हि	= क्योंकि	**आप्नोति**	= प्राप्त हो जाता है।

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥ २३ ॥

हि	= क्योंकि	**वर्तेयम्**	= बरतूँ (तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि)
पार्थ	= हे पार्थ!		
यदि	= यदि		
जातु	= कदाचित्	**मनुष्याः**	= मनुष्य
अहम्	= मैं	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
अतन्द्रितः	= सावधान होकर	**मम**	= मेरे (ही)
कर्मणि	= कर्मोंमें	**वर्त्म**	= मार्गका
न	= न	**अनुवर्तन्ते**	= अनुसरण करते हैं।

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्,
जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन् ॥ २६ ॥

तथा—

युक्तः	= परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए	**कर्मसङ्गिनाम्**	= शास्त्रविहितकर्मों- में आसक्तिवाले
		अज्ञानाम्	= अज्ञानियोंकी
विद्वान्	= ज्ञानी पुरुषको (चाहिये कि वह)	**बुद्धिभेदम्**	= बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा

न, जनयेत्	= उत्पन्न न करे। (किंतु स्वयम्)	**समाचरन्**	= भलीभाँति करता हुआ (उनसे भी वैसे ही)
सर्वकर्माणि	= शास्त्रविहित समस्त कर्म	**जोषयेत्**	= करवावे।

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः,
श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः ॥ ३१ ॥

और हे अर्जुन!—

ये	= जो कोई	**मतम्**	= मतका
मानवाः	= मनुष्य	**नित्यम्**	= सदा
अनसूयन्तः	= दोषदृष्टिसे रहित (और)	**अनुतिष्ठन्ति**	= अनुसरण करते हैं,
		ते	= वे
श्रद्धावन्तः	= श्रद्धायुक्त होकर	**अपि**	= भी
मे	= मेरे	**कर्मभिः**	= सम्पूर्ण कर्मोंसे
इदम्	= इस	**मुच्यन्ते**	= छूट जाते हैं।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः ॥ ३५ ॥

इसलिये उन दोनोंको जीतकर सावधान हुआ स्वधर्मका आचरण करे; क्योंकि—

स्वनुष्ठितात्	= अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए	**स्वधर्मे**	= अपने धर्ममें (तो)
		निधनम्	= मरना (भी)
		श्रेयः	= कल्याणकारक है (और)
परधर्मात्	= दूसरेके धर्मसे		
विगुणः	= गुणरहित (भी)	**परधर्मः**	= दूसरेका धर्म
स्वधर्मः	= अपना धर्म	**भयावहः**	= भयको देनेवाला है।
श्रेयान्	= अति उत्तम है।		

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः,
मनसः, तु, परा, बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः ॥ ४२ ॥

और यदि तू समझे कि इन्द्रियोंको रोककर कामरूप वैरीको मारनेकी मेरी शक्ति नहीं है तो तेरी यह भूल है; क्योंकि—

इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको (स्थूल शरीरसे)	**मनसः**	= मनसे
		तु	= भी
पराणि	= पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म	**परा**	= पर
		बुद्धिः	= बुद्धि है
		तु	= और
आहुः	= कहते हैं;	**यः**	= जो
इन्द्रियेभ्यः	= इन इन्द्रियोंसे	**बुद्धेः**	= बुद्धिसे (भी)
परम्	= पर	**परतः**	= अत्यन्त पर है,
मनः	= मन है,	**सः**	= वह (आत्मा) है।

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,
जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥ ४३ ॥

एवम्	= इस प्रकार	**आत्मानम्**	= मनको
बुद्धेः	= बुद्धिसे	**संस्तभ्य**	= वशमें करके
परम्	= पर अर्थात् सूक्ष्म बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको	**महाबाहो**	= हे महाबाहो! (तू इस)
		कामरूपम्	= कामरूप
		दुरासदम्	= दुर्जय
बुद्ध्वा	= जानकर (और)	**शत्रुम्**	= शत्रुको
आत्मना	= बुद्धिके द्वारा	**जहि**	= मार डाल।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 4 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ चतुर्थोऽध्यायः

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

अहम्	= मैंने	**विवस्वान्**	= सूर्यने (अपने पुत्र वैवस्वत)
इमम्	= इस	**मनवे**	= मनुसे
अव्ययम्	= अविनाशी	**प्राह**	= कहा (और)
योगम्	= योगको	**मनुः**	= मनुने (अपने पुत्र)
विवस्वते	= सूर्यसे	**इक्ष्वाकवे**	= राजा इक्ष्वाकुसे
प्रोक्तवान्	= कहा था,	**अब्रवीत्**	= कहा।

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः,
सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परन्तप ॥ २ ॥

परन्तप	= हे परन्तप अर्जुन!	**सः**	= वह
एवम्	= इस प्रकार	**योगः**	= योग
परम्पराप्राप्तम्	= परम्परासे प्राप्त	**महता**	= बहुत
इमम्	= इस योगको	**कालेन**	= कालसे
राजर्षयः	= राजर्षियोंने		
विदुः	= जाना, (किंतु उसके बाद)	**इह**	= इस पृथ्वीलोकमें
		नष्टः	= लुप्तप्राय हो गया।

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः,
भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम् ॥ ३ ॥

(त्वम्)	= तू	**सः, एव**	= वही
मे	= मेरा	**अयम्**	= यह
भक्तः	= भक्त	**पुरातनः**	= पुरातन
च	= और	**योगः**	= योग
सखा	= प्रिय सखा	**अद्य**	= आज
असि	= है,	**मया**	= मैंने
इति	= इसलिये	**ते**	= तुझको

प्रोक्तः	= कहा है;		
हि	= क्योंकि		
एतत्	= यह	**रहस्यम्**	= रहस्य है अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य विषय है।
उत्तमम्	= बड़ा ही उत्तम		

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः,
कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान् इति॥ ४॥

इस प्रकार भगवान्के वचन सुनकर अर्जुन बोले, हे भगवन्!

भवतः	= आपका	**इति**	= इस बातको
जन्म	= जन्म (तो)	**कथम्**	= कैसे
अपरम्	= अर्वाचीन—अभी हालका है (और)	**विजानीयाम्**	= समझूँ (कि)
विवस्वतः	= सूर्यका	**त्वम्**	= आपहीने
जन्म	= जन्म		
परम्	= बहुत पुराना है अर्थात् कल्पके आदिमें हो चुका था; (तब मैं)	**आदौ**	= कल्पके आदिमें (सूर्यसे)
		एतत्	= यह योग
		प्रोक्तवान्	= कहा था?

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,
तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप॥ ५॥

इसपर श्रीभगवान् बोले—

परन्तप	= हे परन्तप	**व्यतीतानि**	= हो चुके हैं।
अर्जुन	= अर्जुन!	**तानि**	= उन
मे	= मेरे	**सर्वाणि**	= सबको
च	= और	**त्वम्**	= तू
तव	= तेरे	**न**	= नहीं
बहूनि	= बहुत-से	**वेत्थ**	= जानता, (किंतु)
जन्मानि	= जन्म	**अहम्**	= मैं
		वेद	= जानता हूँ।

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्,
प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया॥ ६॥

तथा मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है—

(अहम्)	= मैं	**अपि**	= भी
अजः	= अजन्मा (और)	**स्वाम्**	= अपनी
अव्ययात्मा	= अविनाशीस्वरूप	**प्रकृतिम्**	= प्रकृतिको
सन्	= होते हुए	**अधिष्ठाय**	= अधीन करके
अपि	= भी (तथा)		
भूतानाम्	= समस्त प्राणियोंका	**आत्ममायया**	= अपनी योगमायासे
ईश्वरः	= ईश्वर		
सन्	= होते हुए	**सम्भवामि**	= प्रकट होता हूँ।

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत,
अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम्॥ ७॥

भारत	= हे भारत!	**तदा**	= तब-तब
यदा, यदा	= जब-जब	**हि**	= ही
धर्मस्य	= धर्मकी	**अहम्**	= मैं
ग्लानिः	= हानि (और)	**आत्मानम्**	= अपने रूपको
अधर्मस्य	= अधर्मकी	**सृजामि**	= रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।
अभ्युत्थानम्	= वृद्धि		
भवति	= होती है,		

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे॥ ८॥

क्योंकि—

साधूनाम्	= साधु पुरुषोंका	**विनाशाय**	= विनाश करनेके लिये
परित्राणाय	= उद्धार करनेके लिये		
दुष्कृताम्	= पापकर्म करनेवालोंका	**च**	= और

धर्मसंस्थापनार्थाय	= धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये (मैं)	युगे, युगे	= युग-युगमें
		सम्भवामि	= प्रकट हुआ करता हूँ।

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन॥ ९ ॥

इसलिये—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	वेत्ति	= जान लेता है,
मे	= मेरे	सः	= वह
जन्म	= जन्म	देहम्	= शरीरको
च	= और	त्यक्त्वा	= त्यागकर
कर्म	= कर्म	पुनः	= फिर
दिव्यम्	= दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—	जन्म	= जन्मको
		न, एति	= प्राप्त नहीं होता, (किंतु)
एवम्	= इस प्रकार		
यः	= जो मनुष्य	माम्	= मुझे (ही)
तत्त्वतः	= तत्त्वसे*	एति	= प्राप्त होता है।

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः,
बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः ॥ १० ॥

और हे अर्जुन! पहले भी—

वीतरागभयक्रोधाः	= जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे (और)	माम्	= मेरे
		उपाश्रिताः	= आश्रित रहनेवाले
		बहवः	= बहुत-से भक्त (उपर्युक्त)
		ज्ञानतपसा	= ज्ञानरूप तपसे
मन्मयाः	= जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, (ऐसे)	पूताः	= पवित्र होकर
		मद्भावम्	= मेरे स्वरूपको
		आगताः	= प्राप्त हो चुके हैं।

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्,
मम्, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥ ११ ॥

क्योंकि—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**भजामि**	= भजता हूँ; (क्योंकि)
ये	= जो भक्त		
माम्	= मुझे	**मनुष्याः**	= सभी मनुष्य
यथा	= जिस प्रकार	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
प्रपद्यन्ते	= भजते हैं,	**मम**	= मेरे (ही)
अहम्	= मैं (भी)	**वर्त्म**	= मार्गका
तान्	= उनको	**अनुवर्तन्ते**	= अनुसरण करते हैं।
तथा, एव	= उसी प्रकार		

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः,
क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥ १२ ॥

जो मुझे तत्त्वसे नहीं जानते हैं, वे—

इह	= इस	**यजन्ते**	= पूजन किया करते हैं;
मानुषे	= मनुष्य-		
लोके	= लोकमें	**हि**	= क्योंकि (उनको)
कर्मणाम्	= कर्मोंके	**कर्मजा**	= कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली
सिद्धिम्	= फलको		
काङ्क्षन्तः	= चाहनेवाले (लोग)	**सिद्धिः**	= सिद्धि
		क्षिप्रम्	= शीघ्र
देवताः	= देवताओंका	**भवति**	= मिल जाती है।

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः,
तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम् ॥ १३ ॥

तथा हे अर्जुन!—

चातुर्वर्ण्यम्	= ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों-का समूह,	**तस्य**	= उस (सृष्टिरचनादि-कर्म)-का
		कर्तारम्	= कर्ता होनेपर
		अपि	= भी
		माम्	= मुझ
गुणकर्मविभागशः	= गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक	**अव्ययम्**	= अविनाशी परमेश्वरको (तू वास्तवमें)
मया	= मेरे द्वारा		
सृष्टम्	= रचा गया है। (इस प्रकार)	**अकर्तारम्**	= अकर्ता (ही)
		विद्धि	= जान।

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा,
इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते॥ १४॥

क्योंकि—

कर्मफले	= कर्मोंके फलमें	**यः**	= जो
मे	= मेरी	**माम्**	= मुझे
स्पृहा	= स्पृहा	**अभिजानाति**	= तत्त्वसे जान लेता है,
न	= नहीं है, (इसलिये)		
माम्	= मुझे	**सः**	= वह (भी)
कर्माणि	= कर्म	**कर्मभिः**	= कर्मोंसे
न, लिम्पन्ति	= लिप्त नहीं करते—	**न**	= नहीं
इति	= इस प्रकार	**बध्यते**	= बँधता।

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः,
कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम्॥ १५॥

तथा—

पूर्वैः	= पूर्वकालके	**तस्मात्**	= इसलिये
मुमुक्षुभिः	= मुमुक्षुओंने	**त्वम्**	= तू (भी)
अपि	= भी	**पूर्वैः**	= पूर्वजोंद्वारा
एवम्	= इस प्रकार	**पूर्वतरम्, कृतम्**	= सदासे किये जानेवाले
ज्ञात्वा	= जानकर (ही)		
कर्म	= कर्म	**कर्म**	= कर्मोंको
कृतम्	= किये हैं।	**एव**	= ही
		कुरु	= कर

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्॥ १६॥

परंतु—

कर्म	= कर्म	**तत्**	= वह
किम्	= क्या है? (और)	**कर्म**	= कर्म-तत्त्व (मैं)
अकर्म	= अकर्म	**ते**	= तुझे
किम्	= क्या है?—	**प्रवक्ष्यामि**	= भलीभाँति समझाकर कहूँगा,
इति	= इस प्रकार (इसका)		
अत्र	= निर्णय करनेमें	**यत्**	= जिसे
कवयः	= बुद्धिमान् पुरुष	**ज्ञात्वा**	= जानकर (तू)
अपि	= भी	**अशुभात्**	= अशुभसे अर्थात् कर्मबन्धनसे
मोहिताः	= मोहित हो जाते हैं। (इसलिये)	**मोक्ष्यसे**	= मुक्त हो जायगा।

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः,
अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः ॥ १७ ॥

कर्मणः	= कर्मका (स्वरूप)	**विकर्मणः**	= विकर्मका (स्वरूप भी)
अपि	= भी		
बोद्धव्यम्	= जानना चाहिये		
च	= और	**बोद्धव्यम्**	= जानना चाहिये;
अकर्मणः	= अकर्मका (स्वरूप भी)	**हि**	= क्योंकि
		कर्मणः	= कर्मकी
बोद्धव्यम्	= जानना चाहिये;	**गतिः**	= गति
च	= तथा	**गहना**	= गहन है।

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः,
सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

यः	= जो मनुष्य	**सः**	= वह
कर्मणि	= कर्ममें	**मनुष्येषु**	= मनुष्योंमें
अकर्म	= अकर्म	**बुद्धिमान्**	= बुद्धिमान् है (और)
पश्येत्	= देखता है		
च	= और	**सः**	= वह
यः	= जो	**युक्तः**	= योगी
अकर्मणि	= अकर्ममें	**कृत्स्नकर्मकृत्**	= समस्त कर्मोंको करनेवाला है।
कर्म	= कर्म (देखता है),		

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसङ्कल्पवर्जिताः,
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः ॥ १९ ॥

और हे अर्जुन!—

यस्य	= जिसके	**ज्ञानाग्निदग्ध-कर्माणम्**	= जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं,
सर्वे	= सम्पूर्ण (शास्त्रसम्मत)		
समारम्भाः	= कर्म		
		तम्	= उस महापुरुषको
कामसङ्कल्प-वर्जिताः	= बिना कामना और संकल्पके होते हैं (तथा)	**बुधाः**	= ज्ञानीजन (भी)
		पण्डितम्	= पण्डित
		आहुः	= कहते हैं।

त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः,
कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किंचित्, करोति,सः ॥ २० ॥

और जो पुरुष—

कर्मफलासङ्गम्	= समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका (सर्वथा)	**सः**	= वह
		कर्मणि	= कर्मोंमें
		अभिप्रवृत्तः	= भलीभाँति बरतता हुआ
त्यक्त्वा	= त्याग करके	**अपि**	= भी (वास्तवमें)
निराश्रयः	= संसारके आश्रयसे रहित हो गया है (और)	**किंचित्**	= कुछ
		एव	= भी
		न	= नहीं
नित्यतृप्तः	= परमात्मामें नित्य तृप्त है,	**करोति**	= करता।

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,
शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्॥ २१ ॥

और—

यतचित्तात्मा	= जिसका अन्तः-करण और इन्द्रियोंके सहित शरीर जीता हुआ है (और)	**निराशीः**	= आशारहित पुरुष
		केवलम्	= केवल
		शारीरम्	= शरीर-सम्बन्धी
		कर्म	= कर्म
त्यक्तसर्वपरिग्रहः	= जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, (ऐसा)	**कुर्वन्**	= करता हुआ (भी)
		किल्बिषम्	= पापको
		न	= नहीं
		आप्नोति	= प्राप्त होता।

यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः,
समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते॥ २२ ॥

और—

यदृच्छालाभ-सन्तुष्टः	= जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा संतुष्ट रहता है,	**विमत्सरः**	= जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है,

द्वन्द्वातीतः	= जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—(ऐसा)
सिद्धौ	= सिद्धि
च	= और
असिद्धौ	= असिद्धिमें
समः	= सम रहनेवाला कर्मयोगी (कर्म)
कृत्वा	= करता हुआ
अपि	= भी (उनसे)
न	= नहीं
निबध्यते	= बँधता।

गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः,
यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते ॥ २३ ॥

क्योंकि—

गतसङ्गस्य	= जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है,
मुक्तस्य	= जो देहाभिमान और ममतासे रहित हो गया है,
ज्ञानावस्थित-चेतसः	= जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा-के ज्ञानमें स्थित रहता है—(ऐसे केवल)
यज्ञाय	= यज्ञसम्पादनके लिये (कर्म)
आचरतः	= करनेवाले मनुष्यके
समग्रम्	= सम्पूर्ण
कर्म	= कर्म
प्रविलीयते	= भलीभाँति विलीन हो जाते हैं।

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

उन यज्ञके लिये आचरण करनेवाले पुरुषोंमेंसे कोई तो इस भावसे यज्ञ करते हैं कि—

अर्पणम्	= (जिस यज्ञमें) अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि (भी)
ब्रह्म	= ब्रह्म है (और)
हविः	= हवन किये जाने योग्य द्रव्य (भी)
ब्रह्म	= ब्रह्म है (तथा)
ब्रह्मणा	= ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा
ब्रह्माग्नौ	= ब्रह्मरूप अग्निमें

हुतम् = आहुति देनारूप क्रिया (भी ब्रह्म है)-
तेन = उस
ब्रह्मकर्म-समाधिना = ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले योगीद्वारा
गन्तव्यम् = प्राप्त किये जानेयोग्य (फल भी)
ब्रह्म = ब्रह्म
एव = ही है।

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते,
ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति ॥ २५ ॥

अपरे = दूसरे
योगिनः = योगीजन
दैवम् = देवताओंके पूजनरूप
ब्रह्माग्नौ = परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें (अभेददर्शनरूप)
यज्ञम् = यज्ञका
एव = ही
पर्युपासते = भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और
अपरे = अन्य (योगीजन)
यज्ञेन = यज्ञके द्वारा
एव = ही
यज्ञम् = आत्मरूप यज्ञका
उपजुह्वति = हवन* किया करते हैं।

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति,
शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति ॥ २६ ॥

अन्ये = अन्य (योगीजन)
श्रोत्रादीनि = श्रोत्र आदि
इन्द्रियाणि = समस्त इन्द्रियोंको
संयमाग्निषु = संयमरूप अग्नियोंमें
जुह्वति = हवन किया करते हैं (और)
अन्ये = दूसरे (योगीलोग)
शब्दादीन् = शब्दादि
विषयान् = समस्त विषयोंको
इन्द्रियाग्निषु = इन्द्रियरूप अग्नियोंमें
जुह्वति = हवन किया करते हैं।

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे,
आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अपरे	= दूसरे (योगीजन)	**ज्ञानदीपिते**	= ज्ञानसे प्रकाशित
सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि	= इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको	**आत्मसंयम-योगाग्नौ**	= आत्मसंयम-योगरूप अग्निमें
च	= और	**जुह्वति**	= हवन किया करते हैं* ।
प्राणकर्माणि	= प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको		

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः ॥ २८ ॥

अपरे	= कई पुरुष	**योगयज्ञाः**	= योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं
द्रव्ययज्ञाः	= द्रव्य-सम्बन्धी यज्ञ करनेवाले हैं, (कितने ही)	**च**	= और (कितने ही)
तपोयज्ञाः	= तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं	**संशितव्रताः**	= अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त
तथा	= तथा (दूसरे कितने ही)	**यतयः**	= यत्नशील पुरुष
		स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः	= स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं।

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपरे	= दूसरे (कितने ही योगीजन)	**प्राणम्**	= प्राणवायुको
		जुह्वति	= हवन करते हैं।
अपाने	= अपानवायुमें	**तथा**	= वैसे ही (अन्य योगीजन)

प्राणे = प्राणवायुमें	**रुद्ध्वा** = रोककर
अपानम् = अपानवायुको (हवन करते हैं तथा)	**प्राणान्** = प्राणोंको
अपरे = अन्य (कितने ही)	**प्राणेषु** = प्राणोंमें (ही)
नियताहाराः = नियमित आहार* करनेवाले	**जुह्वति** = हवन किया करते हैं।
प्राणायामपरायणाः = प्राणायामपरायण पुरुष	**एते** = ये
प्राणापानगती = प्राण और अपानकी गतिको	**सर्वे, अपि** = सभी (साधक)
	यज्ञक्षपित-कल्मषाः = यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले (और)
	यज्ञविदः = यज्ञोंको जाननेवाले हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

कुरुसत्तम = हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन!	**अयज्ञस्य** = यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये (तो)
यज्ञशिष्टामृतभुजः = यज्ञसे बचे हुए अमृतका अनुभव करनेवाले (योगीजन)	**अयम्** = यह
सनातनम् = सनातन	**लोकः** = मनुष्यलोक भी (सुखदायक)
ब्रह्म = परब्रह्म परमात्माको	**न** = नहीं
यान्ति = प्राप्त होते हैं (और)	**अस्ति** = है, (फिर)
	अन्यः = परलोक
	कुतः = कैसे (सुखदायक हो सकता है)?

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे,
कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

एवम् = इस प्रकार (और भी)	**बहुविधाः** = बहुत तरहके
	यज्ञाः = यज्ञ

ब्रह्मणः	= वेदकी	**विद्धि**	= जान,
मुखे	= वाणीमें	**एवम्**	= इस प्रकार (तत्त्वसे)
वितताः	= विस्तारसे कहे गये हैं।	**ज्ञात्वा**	= जानकर (उनके अनुष्ठान-द्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा)
तान्	= उन		
सर्वान्	= सबको (तू)		
कर्मजान्	= मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रिया-द्वारा सम्पन्न होनेवाले	**विमोक्ष्यसे**	= मुक्त हो जायगा।

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप,
सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

और—

परन्तप, पार्थ	= हे परंतप अर्जुन!	**अखिलम्**	= यावन्मात्र
द्रव्यमयात्	= द्रव्यमय	**सर्वम्**	= सम्पूर्ण
यज्ञात्	= यज्ञकी अपेक्षा	**कर्म**	= कर्म
ज्ञानयज्ञः	= ज्ञानयज्ञ	**ज्ञाने**	= ज्ञानमें
श्रेयान्	= अत्यन्त श्रेष्ठ है (तथा)	**परिसमाप्यते**	= समाप्त हो जाते हैं।

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया,
उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तत्	= उस ज्ञानको (तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर)	**परिप्रश्नेन**	= सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे
		ते	= वे
विद्धि	= समझ, (उनको)	**तत्त्वदर्शिनः**	= परमात्मतत्त्व-को भली-भाँति जाननेवाले
प्रणिपातेन	= भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, (उनकी)	**ज्ञानिनः**	= ज्ञानी महात्मा (तुझे उस)
सेवया	= सेवा करनेसे और कपट छोड़कर	**ज्ञानम्**	= तत्त्वज्ञानका
		उपदेक्ष्यन्ति	= उपदेश करेंगे—

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव,
येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि॥ ३५॥

कि—

यत्	= जिसको	**भूतानि**	= सम्पूर्ण भूतोंको
ज्ञात्वा	= जानकर	**अशेषेण**	= नि:शेष भावसे (पहले)
पुनः	= फिर (तू)		
एवम्	= इस प्रकार	**आत्मनि**	= अपनेमें[1] (और)
मोहम्	= मोहको	**अथो**	= पीछे
न	= नहीं	**मयि**	= मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें
यास्यसि	= प्राप्त होगा (तथा)		
पाण्डव	= हे अर्जुन!		
येन	= जिस ज्ञानके द्वारा (तू)	**द्रक्ष्यसि**	= देखेगा[2] ।

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः,
सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, सन्तरिष्यसि॥ ३६॥

चेत्	= यदि (तू अन्य)	**ज्ञानप्लवेन**	= ज्ञानरूप नौकाद्वारा
सर्वेभ्यः	= सब	**एव**	= नि:सन्देह
पापेभ्यः	= पापियोंसे	**सर्वम्**	= सम्पूर्ण
अपि	= भी	**वृजिनम्**	= पाप-समुद्रसे
पापकृत्तमः	= अधिक पाप करनेवाला	**सन्तरिष्यसि**	= भलीभाँति तर जायगा।
असि	= है, (तो भी तू)		

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन,
ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा॥ ३७॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**कुरुते**	= कर देता है,
यथा	= जैसे	**तथा**	= वैसे ही
समिद्धः	= प्रज्वलित	**ज्ञानाग्निः**	= ज्ञानरूप अग्नि
अग्निः	= अग्नि	**सर्वकर्माणि**	= सम्पूर्ण कर्मोंको
एधांसि	= ईंधनोंको	**भस्मसात्**	= भस्ममय
भस्मसात्	= भस्ममय	**कुरुते**	= कर देता है।

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते,
तत्, स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति ॥ ३८ ॥

इसलिये—

इह	= इस संसारमें	**कालेन**	= कितने ही कालसे
ज्ञानेन	= ज्ञानके	**योगसंसिद्धः**	= कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य
सदृशम्	= समान		
पवित्रम्	= पवित्र करनेवाला		
हि	= निःसन्देह (कुछ भी)	**स्वयम्**	= अपने-आप (ही)
न	= नहीं		
विद्यते	= है।	**आत्मनि**	= आत्मामें
तत्	= उस ज्ञानको	**विन्दति**	= पा लेता है।

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः,
ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति ॥ ३९ ॥

और हे अर्जुन!—

संयतेन्द्रियः	= जितेन्द्रिय,	**लब्ध्वा**	= प्राप्त होकर (वह)
तत्परः	= साधनपरायण (और)	**अचिरेण**	= बिना विलम्बके—तत्काल ही (भगवत्प्राप्तिरूप)
श्रद्धावान्	= श्रद्धावान् मनुष्य		
ज्ञानम्	= ज्ञानको		
लभते	= प्राप्त होता है (तथा)	**पराम्**	= परम
		शान्तिम्	= शान्तिको
ज्ञानम्	= ज्ञानको	**अधिगच्छति**	= प्राप्त हो जाता है।

अज्ञः, च, अश्रद्दधानः, च, संशयात्मा, विनश्यति,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः ॥ ४० ॥

और हे अर्जुन!—

अज्ञः	= विवेकहीन	**विनश्यति**	= परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है (ऐसे)
च	= और		
अश्रद्दधानः	= श्रद्धारहित		
संशयात्मा	= संशययुक्त मनुष्य	**संशयात्मनः**	= संशययुक्त मनुष्यके लिये

न	= न	**परः**	= परलोक है
अयम्	= यह	**च**	= और
लोकः	= लोक	**न**	= न
अस्ति	= है,	**सुखम्**	= सुख (ही है)।
न	= न		

योगसन्न्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनञ्जय ॥ ४१ ॥

धनञ्जय	= हे धनंजय!		(ऐसे)
योग-सन्न्यस्त-कर्माणम्	= जिसने कर्मयोगकी विधिसे समस्त कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है (और)	**आत्मवन्तम्**	= वशमें किये हुए अन्तःकरणवाले पुरुषको
		कर्माणि	= कर्म
ज्ञानसञ्छिन्न-संशयम्	= जिसने विवेकद्वारा समस्त संशयोंका नाश कर दिया है,	**न**	= नहीं
		निबध्नन्ति	= बाँधते।

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः,
छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत ॥ ४२ ॥

तस्मात्	= इसलिये	**छित्त्वा**	= छेदन करके
भारत	= हे भरतवंशी अर्जुन! (तू)		
हृत्स्थम्	= हृदयमें स्थित	**योगम्**	= समत्वरूप कर्मयोगमें
एनम्	= इस		
अज्ञानसम्भूतम्	= अज्ञानजनित	**आतिष्ठ**	= स्थित हो जा (और युद्धके लिये)
आत्मनः	= अपने		
संशयम्	= संशयका	**उत्तिष्ठ**	= खड़ा हो जा।
ज्ञानासिना	= विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा		

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 5 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

सन्न्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि,
यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम्॥ १ ॥

तत्पश्चात् अर्जुन बोले—

कृष्ण = हे कृष्ण! (आप)		**यत्** = जो	
कर्मणाम् = कर्मोंके		**एकम्** = एक	
सन्न्यासम् = संन्यासकी		**मे** = मेरे लिये	
च = और			
पुनः = फिर		**सुनिश्चितम्** = भलीभाँति निश्चित	
योगम् = कर्मयोगकी		**श्रेयः** = कल्याणकारक साधन (हो),	
शंससि = प्रशंसा करते हैं। (इसलिये)		**तत्** = उसको	
एतयोः = इन दोनोंमेंसे		**ब्रूहि** = कहिये।	

श्रीभगवानुवाच

सन्न्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयोः, तु, कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

सन्न्यासः = कर्मसंन्यास[१]	**तु** = परंतु
च = और	**तयोः** = उन दोनोंमें (भी)
कर्मयोगः = कर्मयोग[२] (ये)	**कर्मसन्न्यासात्** = कर्मसंन्याससे
उभौ = दोनों (ही)	**कर्मयोगः** = कर्मयोग (साधनमें सुगम होनेसे)
निःश्रेयसकरौ = परम कल्याणके करनेवाले हैं,	**विशिष्यते** = श्रेष्ठ है।

ज्ञेयः, सः, नित्यसन्न्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,
निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

इसलिये—

महाबाहो	= हे अर्जुन!	**नित्यसन्न्यासी**	= सदा संन्यासी (ही)
यः	= जो पुरुष	**ज्ञेयः**	= समझनेयोग्य है;
न	= न (किसीसे)	**हि**	= क्योंकि
द्वेष्टि	= द्वेष करता है (और)	**निर्द्वन्द्वः**	= राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित (पुरुष)
न	= न (किसीकी)	**सुखम्**	= सुखपूर्वक
काङ्क्षति	= आकांक्षा करता है,	**बन्धात्**	= संसारबन्धनसे
सः	= वह कर्मयोगी	**प्रमुच्यते**	= मुक्त हो जाता है।

साङ्ख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः,
एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम् ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन! उपर्युक्त—

साङ्ख्ययोगौ	= संन्यास और कर्मयोगको	**एकम्**	= एकमें
		अपि	= भी
बालाः	= मूर्खलोग	**सम्यक्** **आस्थितः**	= सम्यक् प्रकारसे स्थित (पुरुष)
पृथक्	= पृथक्-पृथक् (फल देनेवाले)		
प्रवदन्ति	= कहते हैं	**उभयोः**	= दोनोंके
न	= न (कि)	**फलम्**	= फलरूप (परमात्माको)
पण्डिताः	= पण्डितजन		
(हि)	= क्योंकि (दोनोंमेंसे)	**विन्दते**	= प्राप्त होता है।

यत्, साङ्ख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते,
एकम्, साङ्ख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥ ५ ॥

साङ्ख्यैः	=	ज्ञानयोगियोंद्वारा	**यः**	=	जो पुरुष
यत्	=	जो	**साङ्ख्यम्**	=	ज्ञानयोग
स्थानम्	=	परमधाम	**च**	=	और
प्राप्यते	=	प्राप्त किया जाता है,	**योगम्**	=	कर्मयोगको (फलरूपमें)
योगैः	=	कर्मयोगियोंद्वारा			
अपि	=	भी	**एकम्**	=	एक
तत्	=	वही	**पश्यति**	=	देखता है;
गम्यते	=	प्राप्त किया जाता है। (इसलिये)	**सः, च**	=	वही (यथार्थ)
			पश्यति	=	देखता है।

सन्न्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति ॥ ६ ॥

तु	=	परंतु	**आप्तुम्**	=	प्राप्त होना
महाबाहो	=	हे अर्जुन!	**दुःखम्**	=	कठिन है (और)
अयोगतः	=	कर्मयोगके बिना	**मुनिः**	=	भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला
सन्न्यासः	=	संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग	**योगयुक्तः**	=	कर्मयोगी
			ब्रह्म	=	परब्रह्म परमात्माको
			नचिरेण	=	शीघ्र ही
			अधिगच्छति	=	प्राप्त हो जाता है।

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते ॥ ७ ॥

तथा—

विजितात्मा	=	जिसका मन अपने वशमें है,	**सर्वभूतात्म-भूतात्मा**	=	सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है (ऐसा)
जितेन्द्रियः	=	जो जितेन्द्रिय (एवम्)	**योगयुक्तः**	=	कर्मयोगी (कर्म)
विशुद्धात्मा	=	विशुद्ध अन्तः-करणवाला है (और)	**कुर्वन्**	=	करता हुआ
			अपि	=	भी
			न, लिप्यते	=	लिप्त नहीं होता।

न, एव, किञ्चित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्,
पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्,
श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन्॥ ८-९ ॥

और हे अर्जुन!—

तत्त्ववित्	= तत्त्वको जाननेवाला	**उन्मिषन्**	= आँखोंको खोलता (और)
युक्तः	= सांख्ययोगी (तो)	**निमिषन्**	= मूँदता हुआ
पश्यन्	= देखता हुआ,	**अपि**	= भी,
शृण्वन्	= सुनता हुआ,	**इन्द्रियाणि**	= सब इन्द्रियाँ
स्पृशन्	= स्पर्श करता हुआ,	**इन्द्रियार्थेषु**	= अपने-अपने अर्थोंमें
जिघ्रन्	= सूँघता हुआ,	**वर्तन्ते**	= बरत रही हैं—
अश्नन्	= भोजन करता हुआ,	**इति**	= इस प्रकार
गच्छन्	= गमन करता हुआ,	**धारयन्**	= समझकर
स्वपन्	= सोता हुआ,	**एव**	= निःसन्देह
श्वसन्	= श्वास लेता हुआ,	**इति**	= ऐसा
प्रलपन्	= बोलता हुआ,	**मन्येत**	= माने (कि मैं)
विसृजन्	= त्यागता हुआ,	**किंचित्**	= कुछ भी
गृह्णन्	= ग्रहण करता हुआ (तथा)	**न**	= नहीं
		करोमि	= करता हूँ।

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः,
लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा ॥ १० ॥

यः	= जो पुरुष	**सङ्गम्**	= आसक्तिको
कर्माणि	= सब कर्मोंको	**त्यक्त्वा**	= त्यागकर (कर्म)
ब्रह्मणि	= परमात्मामें	**करोति**	= करता है,
आधाय	= अर्पण करके (और)	**सः**	= वह पुरुष

अम्भसा	= जलसे	**इव**	= भाँति
पद्मपत्रम्	= कमलके पत्तेकी	**पापेन**	= पापसे
		न, लिप्यते	= लिप्त नहीं होता।

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि,
योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये ॥ ११ ॥

इसलिये—

योगिनः	= कर्मयोगी (ममत्वबुद्धिरहित)	**अपि**	= भी
		सङ्गम्	= आसक्तिको
केवलैः	= केवल	**त्यक्त्वा**	= त्यागकर
इन्द्रियैः	= इन्द्रिय,	**आत्मशुद्धये**	= अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
मनसा	= मन,		
बुद्ध्या	= बुद्धि (और)	**कर्म**	= कर्म
कायेन	= शरीरद्वारा	**कुर्वन्ति**	= करते हैं।

[कर्मफलके त्यागसे शान्ति और कामनासे बन्धन।]

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्,
अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते ॥ १२ ॥

इसीसे—

युक्तः	= कर्मयोगी	**अयुक्तः**	= सकामपुरुष
कर्मफलम्	= कर्मोंके फलका	**कामकारेण**	= कामनाकी प्रेरणासे
त्यक्त्वा	= त्याग करके		
नैष्ठिकीम्	= भगवत्प्राप्तिरूप		
शान्तिम्	= शान्तिको	**फले**	= फलमें
आप्नोति	= प्राप्त होता है (और)	**सक्तः**	= आसक्त होकर
		निबध्यते	= बँधता है।

सर्वकर्माणि, मनसा, सन्न्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी,
नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन्॥ १३॥

और हे अर्जुन!—

वशी = अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्य-योगका आचरण करनेवाला
देही = पुरुष
न = न
कुर्वन् = करता हुआ (और)
न = न
कारयन् = करवाता हुआ
एव = ही

नवद्वारे = नवद्वारोंवाले शरीररूप
पुरे = घरमें
सर्वकर्माणि = सब कर्मोंको
मनसा = मनसे
सन्न्यस्य = त्यागकर
सुखम् = आनन्दपूर्वक (सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें)
आस्ते = स्थित रहता है।

[परमात्मामें कर्तापनके अभावका कथन।]

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः,
न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते॥ १४॥

और—

प्रभुः = परमेश्वर
लोकस्य = मनुष्योंके
न = न (तो)
कर्तृत्वम् = कर्तापनकी,
न = न
कर्माणि = कर्मोंकी (और)
न = न

कर्मफलसंयोगम् = कर्मफलके संयोगकी (ही)
सृजति = रचना करते हैं,
तु = किंतु
स्वभावः = स्वभाव (ही)
प्रवर्तते = बरत रहा है।

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः,
अज्ञानेन, आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः ॥ १५ ॥

विभुः	= सर्वव्यापी परमेश्वर (भी)	**आदत्ते**	= ग्रहण करता है; (किंतु)
न	= न	**अज्ञानेन**	= अज्ञानके द्वारा
कस्यचित्	= किसीके	**ज्ञानम्**	= ज्ञान
पापम्	= पापकर्मको	**आवृतम्**	= ढका हुआ है,
च	= और	**तेन**	= उसीसे
न	= न (किसीके)	**जन्तवः**	= सब अज्ञानी मनुष्य
सुकृतम्	= शुभकर्मको		
एव	= ही	**मुह्यन्ति**	= मोहित हो रहे हैं।

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः,
तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम् ॥ १६ ॥

तु	= परंतु	**तेषाम्**	= उनका (वह)
येषाम्	= जिनका	**ज्ञानम्**	= ज्ञान
तत्	= वह	**आदित्यवत्**	= सूर्यके सदृश
अज्ञानम्	= अज्ञान	**तत्परम्**	= उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको
आत्मनः	= परमात्माके		
ज्ञानेन	= तत्त्वज्ञानद्वारा		
नाशितम्	= नष्ट कर दिया गया है,	**प्रकाशयति**	= प्रकाशित कर देता है*।

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः,
गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

तदात्मानः	= जिनका मन तद्रूप हो रहा है,	**तन्निष्ठाः**	= सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, (ऐसे)
तद्बुद्धयः	= जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है (और)		

तत्परायणाः	= तत्परायण पुरुष	**अपुनरावृत्तिम्**	= अपुनरावृत्तिको अर्थात् परम गतिको
ज्ञाननिर्धूत-कल्मषाः	= ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर	**गच्छन्ति**	= प्राप्त होते हैं।

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,
शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः ॥ १८ ॥

पण्डिताः	= ज्ञानीजन	**हस्तिनि**	= हाथी,
विद्याविनय-सम्पन्ने	= विद्या और विनययुक्त	**शुनि**	= कुत्ते
		च	= और
ब्राह्मणे	= ब्राह्मणमें	**श्वपाके**	= चाण्डालमें (भी)
च	= तथा	**समदर्शिनः**	= समदर्शी[१]
गवि	= गौ,	**एव**	= ही (होते हैं)।

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,
निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥ १९ ॥

येषाम्	= जिनका	**हि**	= क्योंकि
मनः	= मन	**ब्रह्म**	= सच्चिदानन्दघन परमात्मा
साम्ये	= समभावमें		
स्थितम्	= स्थित है,	**निर्दोषम्**	= निर्दोष (और)
तैः	= उनके द्वारा	**समम्**	= सम है,
इह	= इस जीवित अवस्थामें	**तस्मात्**	= इससे
		ते	= वे
एव	= ही		
सर्गः	= सम्पूर्ण संसार	**ब्रह्मणि**	= सच्चिदानन्दघन परमात्मामें (ही)
जितः	= जीत लिया गया है;[२]	**स्थिताः**	= स्थित हैं।

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्,
स्थिरबुद्धिः, असम्मूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः ॥ २० ॥

प्रियम्	= प्रियको	**स्थिरबुद्धिः**	= स्थिरबुद्धि
प्राप्य	= प्राप्त होकर	**असम्मूढः**	= संशयरहित
न प्रहृष्येत्	= हर्षित नहीं हो	**ब्रह्मवित्**	= ब्रह्मवेत्ता पुरुष
च	= और	**ब्रह्मणि**	= सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें (एकीभावसे नित्य)
अप्रियम्	= अप्रियको		
प्राप्य	= प्राप्त होकर		
न, उद्विजेत्	= उद्विग्न न हो, (वह)	**स्थितः**	= स्थित है।

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्,
सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते ॥ २१ ॥

और—

बाह्यस्पर्शेषु	= बाहरके विषयोंमें	**सः**	= वह
असक्तात्मा	= आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला (साधक)	**ब्रह्मयोगयुक्तात्मा**	= सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष
आत्मनि	= आत्मामें (स्थित)		
यत्	= जो (ध्यानजनित सात्त्विक)	**अक्षयम्**	= अक्षय
सुखम्	= आनन्द है;	**सुखम्**	= आनन्दका
(तत्)	= उसको	**अश्नुते**	= अनुभव करता है।
विन्दति	= प्राप्त होता है; (तदनन्तर)		

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते,
आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः ॥ २२ ॥

ये	= जो (ये) इन्द्रिय तथा	दुःखयोनयः, एव	= दुःखके ही हेतु हैं (और)
संस्पर्शजाः	= विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले	आद्यन्तवन्तः	= आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। (इसलिये)
भोगाः	= सब भोग हैं,		
ते	= वे (यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी)	कौन्तेय	= हे अर्जुन!
		बुधः	= बुद्धिमान् विवेकी पुरुष
		तेषु	= उनमें
		न	= नहीं
हि	= निःसन्देह	रमते	= रमता।

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्,
कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः ॥ २३ ॥

यः	= जो साधक	वेगम्	= वेगको
इह	= इस मनुष्य-शरीरमें,	सोढुम्	= सहन करनेमें
शरीरविमोक्षणात्	= शरीरका नाश होनेसे	शक्नोति	= समर्थ हो जाता है,
		सः	= वही
प्राक्	= पहले-पहले	नरः	= पुरुष
एव	= ही	युक्तः	= योगी है (और)
कामक्रोधोद्भवम्	= काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले	सः	= वही
		सुखी	= सुखी है।

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः,एव, यः,
सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति ॥ २४ ॥

यः	= जो पुरुष	तथा	= तथा
एव	= निश्चय करके	यः	= जो
अन्तःसुखः	= अन्तरात्मामें ही सुखवाला है,	अन्तर्ज्योतिः	= आत्मामें ही ज्ञानवाला है,
अन्तरारामः	= आत्मामें ही रमण करनेवाला है	सः	= वह

ब्रह्मभूतः = सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभाव-को प्राप्त
योगी = सांख्ययोगी
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त ब्रह्मको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है।

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः,
छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः ॥ २५ ॥

और—

क्षीणकल्मषाः = जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं,
छिन्नद्वैधाः = जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं,
सर्वभूतहिते = जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें
रताः = रत हैं (और)
यतात्मानः = जिनका जीता हुआ मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, (वे)
ऋषयः = ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त ब्रह्मको
लभन्ते = प्राप्त होते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्,
अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

और—

कामक्रोध-वियुक्तानाम् = काम-क्रोधसे रहित,
यतचेतसाम् = जीते हुए चित्तवाले,
विदितात्मनाम् = परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए
यतीनाम् = ज्ञानी पुरुषोंके लिये
अभितः = सब ओरसे
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त परब्रह्म परमात्मा (ही)
वर्तते = परिपूर्ण हैं।

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,
प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः,
विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः ॥ २८ ॥

बाह्यान् = बाहरके
स्पर्शान् = विषयभोगोंको (न चिन्तन करता हुआ)
बहिः = बाहर
एव = ही
कृत्वा = निकालकर
च = और
चक्षुः = नेत्रोंकी दृष्टिको
भ्रुवोः = भृकुटीके
अन्तरे = बीचमें (स्थित करके तथा)
नासाभ्यन्तरचारिणौ = नासिकामें विचरनेवाले
प्राणापानौ = प्राण और अपानवायुको
समौ = सम
कृत्वा = करके
यतेन्द्रिय-मनोबुद्धिः = जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, (ऐसा)
यः = जो
मोक्षपरायणः = मोक्षपरायण
मुनिः = मुनि*
विगतेच्छा-भयक्रोधः = इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है,
सः = वह
सदा = सदा
मुक्तः = मुक्त
एव = ही है।

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,
सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति ॥ २९ ॥

माम् = मुझको
यज्ञतपसाम् = सब यज्ञ और तपोंका
भोक्तारम् = भोगनेवाला,
सर्वलोकमहेश्वरम् = सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर (तथा)
सर्वभूतानाम् = सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका
सुहृदम् = सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, (ऐसा)
ज्ञात्वा = तत्त्वसे जानकर
शान्तिम् = शान्तिको
ऋच्छति = प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 6 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ षष्ठोऽध्याय:

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रित:, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, य:,
स:, सन्यासी, च, योगी, च, न, निरग्नि:, न, च, अक्रिय: ॥ १ ॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

य:	= जो पुरुष	**च**	= और (केवल)
कर्मफलम्	= कर्मफलका	**निरग्नि:**	= अग्निका त्याग करनेवाला (संन्यासी)
अनाश्रित:	= आश्रय न लेकर		
कार्यम्	= करनेयोग्य		
कर्म	= कर्म	**न**	= नहीं है
करोति	= करता है,	**च**	= तथा (केवल)
स:	= वह	**अक्रिय:**	= क्रियाओंका त्याग करनेवाला (योगी)
सन्यासी	= संन्यासी		
च	= तथा		
योगी	= योगी है;	**न**	= नहीं है।

यम्, सन्यासम्, इति, प्राहु:, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव,
न, हि, असन्न्यस्तसंकल्प:, योगी, भवति, कश्चन ॥ २ ॥

इसलिये—

पाण्डव	= हे अर्जुन!	**हि**	= क्योंकि
यम्	= जिसको	**असन्न्यस्त-सङ्कल्प:**	= संकल्पोंका त्याग न करनेवाला
सन्यासम्	= संन्यास[१]		
इति	= ऐसा		
प्राहु:	= कहते हैं,	**कश्चन**	= कोई भी पुरुष
तम्	= उसीको (तू)	**योगी**	= योगी
योगम्	= योग[२]	**न**	= नहीं
विद्धि	= जान।	**भवति**	= होता।

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते,
योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते ॥ ३ ॥

योगम्	= योगमें	**उच्यते**	= कहा जाता है (और योगारूढ़ हो जानेपर)
आरुरुक्षोः	= आरूढ़ होनेकी इच्छावाले	**तस्य**	= उस
मुनेः	= मननशील पुरुषके लिये (योगकी प्राप्तिमें)	**योगारूढस्य**	= योगारूढ़ पुरुषका
		शमः	= जो सर्वसंकल्पों-का अभाव है,
कर्म	= निष्कामभावसे कर्म करना ही	**(सः), एव**	= वही (कल्याणमें)
		कारणम्	= हेतु
कारणम्	= हेतु	**उच्यते**	= कहा जाता है।

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते,
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते ॥ ४ ॥

यदा	= जिस कालमें	**अनुषज्जते**	= आसक्त होता है,
न	= न (तो)	**तदा**	= उस कालमें
इन्द्रियार्थेषु	= इन्द्रियोंके भोगोंमें (और)	**सर्वसङ्कल्प-सन्न्यासी**	= सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष
न	= न		
कर्मसु	= कर्मोंमें	**योगारूढः**	= योगारूढ़
हि	= ही	**उच्यते**	= कहा जाता है।

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,
आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः ॥ ५ ॥

आत्मना	= अपने द्वारा	**अवसादयेत्**	= डाले;
आत्मानम्	= अपना (संसार-समुद्रसे)	**हि**	= क्योंकि (यह मनुष्य)
उद्धरेत्	= उद्धार करे (और)	**आत्मा**	= आप
आत्मानम्	= अपनेको (अधोगतिमें)	**एव**	= ही तो
न	= न	**आत्मनः**	= अपना

बन्धुः = मित्र है (और)
आत्मा = आप

एव = ही
आत्मनः = अपना
रिपुः = शत्रु है।

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः,
अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत्॥ ६॥

येन = जिस
आत्मना = जीवात्माद्वारा
आत्मा = मनऔर इन्द्रियों-सहित शरीर
जितः = जीता हुआ है,
तस्य = उस
आत्मनः = जीवात्माका (तो वह)
आत्मा = आप
एव = ही
बन्धुः = मित्र है;

तु = और
अनात्मनः = जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों-सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये (वह)
आत्मा = आप
एव = ही
शत्रुवत् = शत्रुके सदृश
शत्रुत्वे = शत्रुतामें
वर्तेत = बरतता है।

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः॥ ७॥

और हे अर्जुन!—

शीतोष्ण-सुखदुःखेषु = सरदी-गरमी और सुख-दुःखादिमें
तथा = तथा
मानापमानयोः = मान और अपमानमें
प्रशान्तस्य = जिसके अन्तः-करणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, (ऐसे)

जितात्मनः = स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके (ज्ञानमें)
परमात्मा = सच्चिदानन्दघन परमात्मा
समाहितः = सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः,
युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥

ज्ञानविज्ञान-तृप्तात्मा	= जिसका अन्तः-करण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है,	**समलोष्टाश्म-काञ्चनः**	= जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, (वह)
कूटस्थः	= जिसकी स्थिति विकाररहित है,	**योगी**	= योगी
		युक्तः	= युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है,
विजितेन्द्रियः	= जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं (और)	**इति**	= ऐसे
		उच्यते	= कहा जाता है।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थ-द्वेष्यबन्धुषु	= सुहृद्[1] मित्र, वैरी, उदासीन[2], मध्यस्थ[3], द्वेष्य और बन्धुगणोंमें,	**पापेषु**	= पापियोंमें
		अपि	= भी
		समबुद्धिः	= समान भाव रखनेवाला
साधुषु	= धर्मात्माओंमें		
च	= और	**विशिष्यते**	= अत्यन्त श्रेष्ठ है।

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः ॥ १० ॥

इसलिये उचित है कि—

यतचित्तात्मा	= मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला,	**एकाकी**	= अकेला ही
		रहसि	= एकान्त स्थानमें
		स्थितः	= स्थित होकर
		आत्मानम्	= आत्माको
निराशीः	= आशारहित (और)	**सततम्**	= निरन्तर (परमात्मामें)
अपरिग्रहः	= संग्रहरहित		
योगी	= योगी	**युञ्जीत**	= लगावे।

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः,
न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ११ ॥

कैसे कि—

शुचौ	= शुद्ध	**न**	= न
देशे	= भूमिमें, (जिसके ऊपर क्रमशः)	**अतिनीचम्**	= बहुत नीचा, (ऐसे)
चैलाजिन-कुशोत्तरम्	= कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, (जो)	**आत्मनः**	= अपने
		आसनम्	= आसनको
न	= न	**स्थिरम्**	= स्थिर
अत्युच्छ्रितम्	= बहुत ऊँचा है (और)	**प्रतिष्ठाप्य**	= स्थापन करके—

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः,
उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

और—

तत्र	= उस	**मनः**	= मनको
आसने	= आसनपर	**एकाग्रम्**	= एकाग्र
उपविश्य	= बैठकर	**कृत्वा**	= करके
यतचित्तेन्द्रियक्रियः	= चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए	**आत्मविशुद्धये**	= अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
		योगम्	= योगका
		युञ्ज्यात्	= अभ्यास करे।

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः,
सम्प्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्॥ १३ ॥

उसकी विधि इस प्रकार है कि—

कायशिरोग्रीवम्	= काया, सिर और गलेको	**धारयन्**	= धारण करके
		च	= और
समम्	= समान (एवम्)	**स्थिरः**	= स्थिर होकर,
अचलम्	= अचल	**स्वम्**	= अपनी

नासिकाग्रम्	= नासिकाके अग्रभागपर	**दिशः**	= दिशाओंको
सम्प्रेक्ष्य	= दृष्टि जमाकर, (अन्य)	**अनवलोकयन्**	= न देखता हुआ—

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः,
मनः, संयम्य, मच्चित्तः, युक्तः, आसीत, मत्परः ॥ १४ ॥

ब्रह्मचारिव्रते	= ब्रह्मचारीके व्रतमें	**मनः**	= मनको
स्थितः	= स्थित	**संयम्य**	= रोककर
विगतभीः	= भयरहित (तथा)	**मच्चित्तः**	= मुझमें चित्तवाला (और)
प्रशान्तात्मा	= भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला	**मत्परः**	= मेरे परायण होकर
युक्तः	= सावधान योगी	**आसीत**	= स्थित होवे।

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः,
शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति ॥ १५ ॥

नियतमानसः	= वशमें किये हुए मनवाला	**युञ्जन्**	= लगाता हुआ
योगी	= योगी	**मत्संस्थाम्**	= मुझमें रहनेवाली
एवम्	= इस प्रकार	**निर्वाणपरमाम्**	= परमानन्दकी पराकाष्ठारूप
आत्मानम्	= आत्माको	**शान्तिम्**	= शान्तिको
सदा	= निरन्तर (मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें)	**अधिगच्छति**	= प्राप्त होता है।

न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः,
न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन ॥ १६ ॥

अर्जुन	= हे अर्जुन! (यह)	**च**	= तथा
योगः	= योग	**न**	= न
न	= न	**अति**	= बहुत
तु	= तो	**स्वप्नशीलस्य**	= शयन करनेके स्वभाववालेका
अति	= बहुत		
अश्नतः	= खानेवालेका	**च**	= और
च	= और	**न**	= न (सदा)
न	= न	**जाग्रतः**	= जागनेवालेका
एकान्तम्	= बिलकुल	**एव**	= ही
अनश्नतः	= न खानेवालेका	**अस्ति**	= सिद्ध होता है।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु,
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा॥ १७॥

दुःखहा	= दुःखोंका नाश करनेवाला	**युक्तचेष्टस्य**	= यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका (और)
योगः	= योग (तो)		
युक्ताहार-विहारस्य	= यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका,	**युक्तस्वप्नाव-बोधस्य**	= यथायोग्य सोने तथा जागने-वालेका (ही सिद्ध)
कर्मसु	= कर्मोंमें	**भवति**	= होता है।

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसञ्ज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा॥ २३॥

दुःखसंयोग-वियोगम्	= दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है (तथा)	**योगः**	= योग
योगसञ्ज्ञितम्	= जिसका नाम योग है,	**अनिर्विण्णचेतसा**	= न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे
तम्	= उसको		
विद्यात्	= जानना चाहिये।	**निश्चयेन**	= निश्चयपूर्वक
सः	= वह	**योक्तव्यः**	= करना कर्तव्य है।

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते ॥ ३१ ॥

इस प्रकार—

यः	= जो पुरुष	**सः**	= वह
एकत्वम्	= एकीभावमें	**योगी**	= योगी
आस्थितः	= स्थित होकर	**सर्वथा**	= सब प्रकारसे
सर्वभूतस्थितम्	= सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित	**वर्तमानः**	= बरतता हुआ
माम्	= मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको	**अपि**	= भी
भजति	= भजता है,	**मयि**	= मुझमें (ही)
		वर्तते	= बरतता है।

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन,
सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः ॥ ३२ ॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**यदि, वा**	= अथवा
यः	= जो योगी	**दुःखम्**	= दुःखको (भी सबमें सम देखता है),
आत्मौपम्येन	= अपनी भाँति *	**सः**	= वह
सर्वत्र	= सम्पूर्ण भूतोंमें	**योगी**	= योगी
समम्	= सम	**परमः**	= परम श्रेष्ठ
पश्यति	= देखता है	**मतः**	= माना गया है।
वा	= और		
सुखम्	= सुख		

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्,
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ॥ ३५ ॥

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**तु**	= परंतु
असंशयम्	= निःसन्देह	**कौन्तेय**	= हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह)
मनः	= मन		
चलम्	= चंचल (और)	**अभ्यासेन**	= अभ्यास*
		च	= और
दुर्निग्रहम्	= कठिनतासे वशमें होनेवाला है;	**वैराग्येण**	= वैराग्यसे
		गृह्यते	= वशमें होता है।

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः,
वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः ॥ ३६ ॥

असंयतात्मना	= जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा	**यतता**	= प्रयत्नशील पुरुषद्वारा
		उपायतः	= साधनसे (उसका)
योगः	= योग		
दुष्प्रापः	= दुष्प्राप्य है	**अवाप्तुम्**	= प्राप्त होना
तु	= और	**शक्यः**	= सहज है—
		इति	= यह
वश्यात्मना	= वशमें किये हुए मनवाले	**मे**	= मेरा
		मतिः	= मत है।

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः,
अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति ॥ ३७ ॥

इसपर अर्जुन बोले—

कृष्ण	= हे श्रीकृष्ण!	**योगसंसिद्धिम्**	= योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्-साक्षात्कारको
श्रद्धया, उपेतः	= जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है; किंतु		
अयतिः	= संयमी नहीं है, (इस कारण अन्तकालमें)	**अप्राप्य**	= न प्राप्त होकर
		काम्	= किस
योगात्-चलितमानसः	= जिसका मन योगसे विचलित हो गया है, (ऐसा साधक योगी)	**गतिम्**	= गतिको
		गच्छति	= प्राप्त होता है।

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि ॥ ३८ ॥

और—

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**छिन्नाभ्रम्**	= छिन्न-भिन्न बादलकी
कच्चित्	= क्या (वह)	**इव**	= भाँति
ब्रह्मणः	= भगवत्प्राप्तिके	**उभयविभ्रष्टः**	= दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर
पथि	= मार्गमें	**न, नश्यति**	= नष्ट तो नहीं हो जाता?
विमूढः	= मोहित (और)		
अप्रतिष्ठः	= आश्रयरहित पुरुष		

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः,
त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते ॥ ३९ ॥

कृष्ण	= हे श्रीकृष्ण!	**हि**	= क्योंकि
मे	= मेरे	**त्वदन्यः**	= आपके सिवा दूसरा
एतत्	= इस	**अस्य**	= इस
संशयम्	= संशयको	**संशयस्य**	= संशयका
अशेषतः	= सम्पूर्णरूपसे	**छेत्ता**	= छेदन करनेवाला
छेत्तुम्	= छेदन करनेके लिये (आप ही)	**न, उपपद्यते**	= मिलना सम्भव नहीं है।
अर्हसि	= योग्य हैं;		

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते,
न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति ॥ ४० ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले—

पार्थ	= हे पार्थ!	**तात**	= हे प्यारे!
तस्य	= उस पुरुषका	**कल्याणकृत्**	= आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला
न	= न (तो)		
इह	= इस लोकमें		
विनाशः	= विनाश		
विद्यते	= होता है (और)		
न	= न		
अमुत्र	= परलोकमें	**कश्चित्**	= कोई भी मनुष्य
एव	= ही;	**दुर्गतिम्**	= दुर्गतिको
हि	= क्योंकि	**न, गच्छति**	= प्राप्त नहीं होता।

प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः,
शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते ॥ ४१ ॥

किंतु वह—

योगभ्रष्टः	= योगभ्रष्ट पुरुष	**शाश्वतीः**	= बहुत
		समाः	= वर्षोंतक
पुण्यकृताम्	= पुण्यवानोंके	**उषित्वा**	= निवास करके (फिर)
लोकान्	= लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकोंको	**शुचीनाम्**	= शुद्ध आचरणवाले
		श्रीमताम्	= श्रीमान् पुरुषोंके
प्राप्य	= प्राप्त होकर, (उनमें)	**गेहे**	= घरमें
		अभिजायते	= जन्म लेता है।

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,
एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा	= अथवा (वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर)	**भवति**	= जन्म लेता है। (परंतु)
		ईदृशम्	= इस प्रकारका
		यत्	= जो
		एतत्	= यह
धीमताम्	= ज्ञानवान्	**जन्म**	= जन्म है, (सो)
योगिनाम्	= योगियोंके	**लोके**	= संसारमें
एव	= ही	**हि**	= निःसन्देह
कुले	= कुलमें	**दुर्लभतरम्**	= अत्यन्त दुर्लभ है।

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

और वह पुरुष—

तत्र	= वहाँ	**पौर्वदेहिकम्**	= पहले शरीरमें संग्रह किये हुए
तम्	= उस		

बुद्धिसंयोगम्	= बुद्धिके संयोगको अर्थात् समबुद्धि-रूप योगके संस्कारोंको (अनायास ही)	**ततः**	= उसके प्रभावसे (वह)
		भूयः	= फिर
लभते	= प्राप्त हो जाता है	**संसिद्धौ**	= परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये (पहलेसे भी बढ़कर)
च	= और		
कुरुनन्दन	= हे कुरुनन्दन!	**यतते**	= प्रयत्न करता है।

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते॥ ४४॥

और—

सः	= वह (श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट)	**ह्रियते**	= आकर्षित किया जाता है, (तथा)
		योगस्य	= समबुद्धिरूप योगका
अवशः	= पराधीन हुआ		
अपि	= भी	**जिज्ञासुः**	= जिज्ञासु
तेन	= उस	**अपि**	= भी
पूर्वाभ्यासेन	= पहलेके अभ्याससे	**शब्दब्रह्म**	= वेदमें कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको
एव	= ही		
हि	= निःसन्देह (भगवान्‌की ओर)	**अतिवर्तते**	= उल्लंघन कर जाता है।

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः, अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥ ४५॥

तु	= परंतु		जन्ममें संसिद्ध होकर
प्रयत्नात्	= प्रयत्नपूर्वक		
यतमानः	= अभ्यास करनेवाला	**संशुद्धकिल्बिषः**	= सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो
योगी	= योगी (तो)		
अनेकजन्मसंसिद्धः	= पिछले अनेक जन्मोंके संस्कार-बलसे इसी	**ततः**	= फिर तत्काल ही
		पराम्, गतिम्	= परमगतिको
		याति	= प्राप्त हो जाता है।

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः,
कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन ॥ ४६ ॥

क्योंकि—

योगी	= योगी	**योगी**	= योगी
तपस्विभ्यः	= तपस्वियोंसे	**अधिकः**	= श्रेष्ठ है;
अधिकः	= श्रेष्ठ है,	**तस्मात्**	= इससे
ज्ञानिभ्यः	= शास्त्रज्ञानियोंसे	**अर्जुन**	= हे अर्जुन! (तू)
अपि	= भी	**योगी**	= योगी
अधिकः	= श्रेष्ठ	**भव**	= हो।
मतः	= माना गया है		
च	= और		
कर्मिभ्यः	= सकाम कर्म करनेवालोंसे भी		

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः ॥ ४७ ॥

और हे प्यारे!—

सर्वेषाम्	= सम्पूर्ण	**माम्**	= मुझको (निरन्तर)
योगिनाम्	= योगियोंमें	**भजते**	= भजता है,
अपि	= भी	**सः**	= वह योगी
यः	= जो	**मे**	= मुझे
श्रद्धावान्	= श्रद्धावान् योगी		
मद्गतेन	= मुझमें लगे हुए	**युक्ततमः**	= परमश्रेष्ठ
अन्तरात्मना	= अन्तरात्मासे	**मतः**	= मान्य है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 7 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ सप्तमोऽध्याय:

मयि, आसक्तमना:, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रय:,
असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु ॥ १ ॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले—

पार्थ	= हे पार्थ!	**समग्रम्**	= सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप
मयि, आसक्तमना:	= अनन्य प्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त (तथा अनन्य भावसे)		
मदाश्रय:	= मेरे परायण होकर	**माम्**	= मुझको
		असंशयम्	= संशयरहित
योगम्	= योगमें	**ज्ञास्यसि**	= जानेगा,
युञ्जन्	= लगा हुआ (तू)	**तत्**	= उसको
यथा	= जिस प्रकारसे	**शृणु**	= सुन।

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषत:,
यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूय:, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते ॥ २ ॥

अहम्	= मैं	**ज्ञात्वा**	= जानकर
ते	= तेरे लिये	**इह**	= संसारमें
इदम्	= इस	**भूय:**	= फिर
सविज्ञानम्	= विज्ञानसहित	**अन्यत्**	= और कुछ भी
ज्ञानम्	= तत्त्वज्ञानको	**ज्ञातव्यम्**	= जाननेयोग्य
अशेषत:	= सम्पूर्णतया		
वक्ष्यामि	= कहूँगा,	**न, अवशिष्यते**	= शेष नहीं रह जाता।
यत्	= जिसको		

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वत: ॥ ३ ॥

सहस्रेषु	= हजारों	**सिद्धानाम्**	= योगियोंमें
मनुष्याणाम्	= मनुष्योंमें	**अपि**	= भी
कश्चित्	= कोई एक	**कश्चित्**	= कोई एक (मेरे परायण होकर)
सिद्धये	= मेरी प्राप्तिके लिये	**माम्**	= मुझको
यतति	= यत्न करता है (और उन)	**तत्त्वतः**	= तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे
यतताम्	= यत्न करनेवाले	**वेत्ति**	= जानता है।

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च,
अहङ्कारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा ॥ ४ ॥
अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्,
जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत् ॥ ५ ॥

परंतु हे अर्जुन!—

भूमिः	= पृथ्वी,	**तु**	= तो
आपः	= जल,	**अपरा**	= अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है (और)
अनलः	= अग्नि,	**महाबाहो**	= हे महाबाहो!
वायुः	= वायु,	**इतः**	= इससे
खम्	= आकाश,	**अन्याम्**	= दूसरीको,
मनः	= मन,	**यया**	= जिससे
बुद्धिः	= बुद्धि	**इदम्**	= यह (सम्पूर्ण)
च	= और	**जगत्**	= जगत्
अहङ्कारः	= अहंकार	**धार्यते**	= धारण किया जाता है,
एव	= भी—	**मे**	= मेरी
इति	= इस प्रकार	**जीवभूताम्**	= जीवरूपा
इयम्	= यह	**पराम्**	= परा अर्थात् चेतन
अष्टधा	= आठ प्रकारसे	**प्रकृतिम्**	= प्रकृति
भिन्ना	= विभाजित	**विद्धि**	= जान।
मे	= मेरी		
प्रकृतिः	= प्रकृति है।		
इयम्	= यह (आठ प्रकारके भेदोंवाली)		

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय,
अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा ॥ ६ ॥

और हे अर्जुन! तू—

इति	= ऐसा	**कृत्स्नस्य**	= सम्पूर्ण
उपधारय	= समझ (कि)	**जगतः**	= जगत्का
सर्वाणि	= सम्पूर्ण	**प्रभवः**	= प्रभव
भूतानि	= भूत	**तथा**	= तथा
एतद्योनीनि	= इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं (और)	**प्रलयः**	= प्रलय हूँ (अर्थात् सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण हूँ।)
अहम्	= मैं		

मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किञ्चित्, अस्ति, धनञ्जय,
मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव ॥ ७ ॥

इसलिये—

धनञ्जय	= हे धनंजय!	**इदम्**	= यह
मत्तः	= मुझसे	**सर्वम्**	= सम्पूर्ण (जगत्)
अन्यत्	= भिन्न दूसरा	**सूत्रे**	= सूत्रमें (सूत्रके)
किञ्चित्	= कोई भी	**मणिगणाः**	= मणियोंके
परतरम्	= परम (कारण)	**इव**	= सदृश
न	= नहीं	**मयि**	= मुझमें
अस्ति	= है।	**प्रोतम्**	= गुँथा हुआ है।

रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः,
प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु ॥ ८ ॥

कैसे कि—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**अस्मि**	= हूँ,
अहम्	= मैं	**सर्ववेदेषु**	= सम्पूर्ण वेदोंमें
अप्सु	= जलमें	**प्रणवः**	= ओंकार (हूँ),
रसः	= रस (हूँ),	**खे**	= आकाशमें
शशिसूर्ययोः	= चन्द्रमा और सूर्यमें	**शब्दः**	= शब्द (और)
		नृषु	= पुरुषोंमें
प्रभा	= प्रकाश	**पौरुषम्**	= पुरुषत्व (हूँ)।

पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ,
जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु ॥ ९ ॥

तथा मैं—

पृथिव्याम्	= पृथ्वीमें	**सर्वभूतेषु**	= सम्पूर्ण भूतोंमें (उनका)
पुण्यः	= पवित्र		
गन्धः	= गन्ध*		
च	= और	**जीवनम्**	= जीवन (हूँ)
विभावसौ	= अग्निमें	**च**	= और
तेजः	= तेज	**तपस्विषु**	= तपस्वियोंमें
अस्मि	= हूँ	**तपः**	= तप
च	= तथा	**अस्मि**	= हूँ।

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्,
बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम् ॥ १० ॥

तथा—

पार्थ	= हे अर्जुन! (तू)	**अहम्**	= मैं
सर्वभूतानाम्	= सम्पूर्ण भूतोंका	**बुद्धिमताम्**	= बुद्धिमानोंकी
सनातनम्	= सनातन	**बुद्धिः**	= बुद्धि (और)
बीजम्	= बीज	**तेजस्विनाम्**	= तेजस्वियोंका
माम्	= मुझको (ही)	**तेजः**	= तेज
विद्धि	= जान।	**अस्मि**	= हूँ।

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,
धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ ॥ ११ ॥

और—

भरतर्षभ	= हे भरतश्रेष्ठ!	**च**	= और
अहम्	= मैं	**भूतेषु**	= सब भूतोंमें
बलवताम्	= बलवानोंका	**धर्माविरुद्धः**	= धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल
कामराग-विवर्जितम्	= आसक्ति और कामनाओंसे रहित		
बलम्	= बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ	**कामः**	= काम
		अस्मि	= हूँ।

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि॥ १२॥

तथा—

च	= और	**तान्**	= उन सबको (तू)
एव	= भी		
ये	= जो	**मत्तः, एव**	= मुझसे ही (होनेवाले हैं)
सात्त्विकाः	= सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले	**इति**	= ऐसा
भावाः	= भाव हैं (और)	**विद्धि**	= जान
ये	= जो	**तु**	= परंतु (वास्तवमें)[१]
राजसाः	= रजोगुणसे	**तेषु**	= उनमें
च	= तथा	**अहम्**	= मैं (और)
तामसाः	= तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं,	**ते**	= वे
		मयि	= मुझमें
		न	= नहीं हैं।

त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्,
मोहितम्, न, अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम्॥ १३॥

किंतु—

गुणमयैः	= गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस—	**मोहितम्**	= मोहित हो रहा है, (इसीलिये)
एभिः	= इन	**एभ्यः**	= इन तीनों गुणोंसे
त्रिभिः	= तीनों प्रकारके	**परम्**	= परे
भावैः	= भावोंसे[२]	**माम्**	= मुझ
इदम्	= यह	**अव्ययम्**	= अविनाशीको
सर्वम्	= सारा		
जगत्	= संसार—प्राणिसमुदाय	**न**	= नहीं
		अभिजानाति	= जानता।

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया,
माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते ॥ १४ ॥

हि	= क्योंकि	**माम्**	= मुझको
एषा	= यह	**एव**	= ही (निरन्तर)
दैवी	= अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत	**प्रपद्यन्ते**	= भजते हैं,
		ते	= वे
गुणमयी	= त्रिगुणमयी	**एताम्**	= इस
मम	= मेरी	**मायाम्**	= मायाको
माया	= माया	**तरन्ति**	= उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।
दुरत्यया	= बड़ी दुस्तर है; (परंतु)		
ये	= जो पुरुष (केवल)		

न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः,
मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः ॥ १५ ॥

ऐसा सुगम उपाय होनेपर भी—

मायया	= मायाके द्वारा	**नराधमाः**	= मनुष्योंमें नीच,
अपहृतज्ञानाः	= जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, (ऐसे)	**दुष्कृतिनः**	= दूषित कर्म करनेवाले
		मूढाः	= मूढ़लोग
आसुरम्, भावम्	= आसुर स्वभावको	**माम्**	= मुझको
		न	= नहीं
आश्रिताः	= धारण किये हुए,	**प्रपद्यन्ते**	= भजते

चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन,
आर्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ ॥ १६ ॥

और—

भरतर्षभ अर्जुन	= हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!	**च**	= और
		ज्ञानी	= ज्ञानी—(ऐसे)
सुकृतिनः	= उत्तम कर्म करनेवाले	**चतुर्विधाः**	= चार प्रकारके
अर्थार्थी	= अर्थार्थी,[1]	**जनाः**	= भक्तजन
आर्तः	= आर्त,[2]	**माम्**	= मुझको
जिज्ञासुः	= जिज्ञासु[3]	**भजन्ते**	= भजते हैं।

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते,
प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः ॥ १७ ॥

तेषाम्	= उनमें	**ज्ञानिनः**	= ज्ञानीको
नित्ययुक्तः	= नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित	**अहम्**	= मैं
एकभक्तिः	= अनन्य प्रेमभक्तिवाला	**अत्यर्थम्**	= अत्यन्त
		प्रियः	= प्रिय हूँ
ज्ञानी	= ज्ञानी भक्त	**च**	= और
विशिष्यते	= अति उत्तम है;	**सः**	= वह ज्ञानी
हि	= क्योंकि (मुझको तत्त्वसे जाननेवाले)	**मम**	= मुझे (अत्यन्त)
		प्रियः	= प्रिय है।

उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम् ॥ १८ ॥

यद्यपि—

एते	= ये	**सः**	= वह
सर्वे, एव	= सभी	**युक्तात्मा**	= मद्गत मनबुद्धिवाला (ज्ञानी भक्त)
उदाराः	= उदार हैं,		
तु	= परंतु		
ज्ञानी	= ज्ञानी (तो साक्षात्)	**अनुत्तमाम्**	= अति उत्तम
		गतिम्	= गतिस्वरूप
आत्मा	= मेरा स्वरूप	**माम्**	= मुझमें
एव	= ही है—(ऐसा)	**एव**	= ही
मे	= मेरा		
मतम्	= मत है;	**आस्थितः**	= अच्छी प्रकार स्थित है।
हि	= क्योंकि		

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

और जो—

बहूनाम्	= बहुत	**इति**	= इस प्रकार
जन्मनाम्	= जन्मोंके	**माम्**	= मुझको
अन्ते	= अन्तके जन्ममें	**प्रपद्यते**	= भजता है,
ज्ञानवान्	= तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष,	**सः**	= वह
		महात्मा	= महात्मा
सर्वम्	= सब कुछ	**सुदुर्लभः**	= अत्यन्त दुर्लभ है।
वासुदेवः	= वासुदेव ही है[1]		

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः,
तम्, तम्, नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया॥ २०॥

और हे अर्जुन!—

तैः, तैः	= उन-उन	**नियताः**	= प्रेरित होकर
कामैः	= भोगोंकी कामनाद्वारा	**तम्, तम्**	= उस-उस
हृतज्ञानाः	= जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, (वे लोग)	**नियमम्**	= नियमको
		आस्थाय	= धारण करके[2]
		अन्यदेवताः	= अन्य देवताओंको
स्वया	= अपने	**प्रपद्यन्ते**	= भजते हैं अर्थात् पूजते हैं।
प्रकृत्या	= स्वभावसे		

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,
तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्॥ २१॥

यः, यः	= जो-जो	**तस्य**	= उस-
भक्तः	= सकाम भक्त	**तस्य**	= उस भक्तकी
याम्, याम्	= जिस-जिस	**श्रद्धाम्**	= श्रद्धाको
तनुम्	= देवताके स्वरूपको	**अहम्**	= मैं
श्रद्धया	= श्रद्धासे	**ताम्, एव**	= उसी देवताके प्रति
अर्चितुम्	= पूजना	**अचलाम्**	= स्थिर
इच्छति	= चाहता है;	**विदधामि**	= करता हूँ।

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते,
लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान्॥ २२॥

तथा—

सः	= वह पुरुष	**ततः**	= उस देवतासे
तया	= उस	**मया**	= मेरे द्वारा
श्रद्धया	= श्रद्धासे	**एव**	= ही
युक्तः	= युक्त होकर	**विहितान्**	= विधान किये हुए
तस्य	= उस देवताका	**तान्**	= उन
आराधनम्	= पूजन	**कामान्**	= इच्छित भोगोंको
ईहते	= करता है	**हि**	= निःसन्देह
च	= और	**लभते**	= प्राप्त करता है।

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्,
देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि॥ २३॥

तु	= परंतु	**देवान्**	= देवताओंको
तेषाम्	= उन	**यान्ति**	= प्राप्त होते हैं (और)
अल्पमेधसाम्	= अल्प बुद्धिवालोंका		
तत्	= वह	**मद्भक्ताः**	= मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे)
फलम्	= फल		
अन्तवत्	= नाशवान्		
भवति	= है (तथा वे)	**माम्**	= मुझको
देवयजः	= देवताओंको पूजनेवाले	**अपि**	= ही
		यान्ति	= प्राप्त होते हैं।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः,
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्॥ २४॥

ऐसा होनेपर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते, इसका कारण

अबुद्धयः	= बुद्धिहीन पुरुष		
मम	= मेरे	**माम्**	= मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको
अनुत्तमम्	= अनुत्तम		
अव्ययम्	= अविनाशी		(मनुष्यकी भाँति जन्मकर)
परम्	= परम		
भावम्	= भावको	**व्यक्तिम्**	= व्यक्ति-भावको
अजानन्तः	= न जानते हुए	**आपन्नम्**	= प्राप्त हुआ
अव्यक्तम्	= मन-इन्द्रियोंसे परे	**मन्यन्ते**	= मानते हैं।

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः,
मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम्॥ २५॥

तथा—

योगमाया-समावृतः	= अपनी योगमायासे छिपा हुआ	**माम्**	= मुझ
अहम्	= मैं	**अजम्**	= जन्मरहित
सर्वस्य	= सबके	**अव्ययम्**	= अविनाशी परमेश्वरको
प्रकाशः	= प्रत्यक्ष	**न**	= नहीं
न	= नहीं होता, (इसलिये)	**अभिजानाति**	= जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।
अयम्	= यह		
मूढः	= अज्ञानी		
लोकः	= जनसमुदाय		

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन,
भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन॥ २६॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**वेद**	= जानता हूँ,
समतीतानि	= पूर्वमें व्यतीत हुए	**तु**	= परंतु
च	= और	**माम्**	= मुझको
वर्तमानानि	= वर्तमानमें स्थित		
च	= तथा	**कश्चन**	= कोई भी (श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष)
भविष्याणि	= आगे होनेवाले		
भूतानि	= सब भूतोंको	**न**	= नहीं
अहम्	= मैं	**वेद**	= जानता।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,
सर्वभूतानि, सम्मोहम्, सर्गे, यान्ति, परन्तप॥ २७॥

क्योंकि—

भारत	= हे भरतवंशी	**द्वन्द्वमोहेन**	= सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे
परन्तप	= अर्जुन!		
सर्गे	= संसारमें	**सर्वभूतानि**	= सम्पूर्ण प्राणी
इच्छाद्वेष-समुत्थेन	= इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न	**सम्मोहम्**	= अत्यन्त अज्ञताको
		यान्ति	= प्राप्त हो रहे हैं।

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,
ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः ॥ २८ ॥

तु	= परंतु (निष्कामभावसे)	**अन्तगतम्**	= नष्ट हो गया है,
		ते	= वे
पुण्यकर्मणाम्	= श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले	**द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः**	= राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त
येषाम्	= जिन	**दृढव्रताः**	= दृढ़निश्चयी भक्त
जनानाम्	= पुरुषोंका	**माम्**	= मुझको (सब प्रकारसे)
पापम्	= पाप	**भजन्ते**	= भजते हैं।

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये,
ते, ब्रह्म, तत्, विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम्॥ २९ ॥

और—

ये	= जो	**ब्रह्म**	= ब्रह्मको,
माम्	= मेरे	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
आश्रित्य	= शरण होकर		
जरामरणमोक्षाय	= जरा और मरणसे छूटनेके लिये	**अध्यात्मम्**	= अध्यात्मको
		च	= तथा
यतन्ति	= यत्न करते हैं,	**अखिलम्**	= सम्पूर्ण
ते	= वे (पुरुष)	**कर्म**	= कर्मको
तत्	= उस	**विदुः**	= जानते हैं।

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः,
प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

और—

ये	= जो पुरुष	**अपि**	= भी
साधि-भूताधिदैवम्	= अधिभूत और अधिदैवके सहित	**विदुः**	= जानते हैं*
		ते	= वे
च	= तथा	**युक्तचेतसः**	= युक्तचित्तवाले पुरुष
साधियज्ञम्	= अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप)	**माम्**	= मुझे
		च	= ही
माम्	= मुझे	**विदुः**	= जानते हैं अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं।
प्रयाणकाले	= अन्तकालमें		

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 8 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते॥ १॥

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको न समझकर अर्जुन बोले—

पुरुषोत्तम	=	हे पुरुषोत्तम!	**अधिभूतम्**	=	अधिभूत (नामसे)
तत्	=	वह			
ब्रह्म	=	ब्रह्म	**किम्**	=	क्या
किम्	=	क्या है?	**प्रोक्तम्**	=	कहा गया है
अध्यात्मम्	=	अध्यात्म	**च**	=	और
किम्	=	क्या है?	**अधिदैवम्**	=	अधिदैव
कर्म	=	कर्म	**किम्**	=	किसको
किम्	=	क्या है?	**उच्यते**	=	कहते हैं?

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन,
प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः॥ २॥

और—

मधुसूदन	=	हे मधुसूदन!	**च**	=	तथा
अत्र	=	यहाँ	**नियतात्मभिः**	=	युक्त चित्तवाले पुरुषोंद्वारा
अधियज्ञः	=	अधियज्ञ			
कः	=	कौन है? (और वह)	**प्रयाणकाले**	=	अन्त समयमें (आप)
अस्मिन्	=	इस	**कथम्**	=	किस प्रकार
देहे	=	शरीरमें	**ज्ञेयः**	=	जाननेमें आते
कथम्	=	कैसे है?	**असि**	=	हैं?

अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते,
भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसञ्ज्ञितः॥ ३॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर श्रीभगवान् बोले, अर्जुन!—

परमम्	= परम	**उच्यते**	= कहा जाता है (तथा)
अक्षरम्	= अक्षर	**भूतभावोद्भवकरः**	= भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला (जो)
ब्रह्म	= 'ब्रह्म' है,		
स्वभावः	= अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा	**विसर्गः**	= त्याग है, (वह)
अध्यात्मम्	= 'अध्यात्म' (नामसे)	**कर्मसञ्ज्ञितः**	= 'कर्म' नामसे कहा गया है।

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्,
अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर ॥ ४ ॥

तथा—

क्षरः, भावः	= उत्पत्ति-विनाश धर्मवाले सब पदार्थ	**देहभृताम्, वर**	= हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन!
		अत्र	= इस
अधिभूतम्	= अधिभूत हैं,	**देहे**	= शरीरमें
पुरुषः	= हिरण्यमय पुरुष*	**अहम्**	= मैं वासुदेव
अधिदैवतम्	= अधिदैव है	**एव**	= ही (अन्तर्यामीरूपसे)
च	= और	**अधियज्ञः**	= अधियज्ञ हूँ।

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः ॥ ५ ॥

और

यः	= जो पुरुष	**सः**	= वह
अन्तकाले, च	= अन्तकालमें भी	**मद्भावम्**	= मेरे साक्षात् स्वरूपको
माम्	= मुझको		
एव	= ही	**याति**	= प्राप्त होता है—
स्मरन्	= स्मरण करता हुआ	**अत्र**	= इसमें (कुछ भी)
कलेवरम्	= शरीरको	**संशयः**	= संशय
मुक्त्वा	= त्यागकर	**न**	= नहीं
प्रयाति	= जाता है,	**अस्ति**	= है।

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

कारण कि—

कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह मनुष्य)	**त्यजति**	= त्याग करता है,
अन्ते	= अन्तकालमें	**तम्, तम्**	= उस-उसको
यम्, यम्	= जिस-जिस	**एव**	= ही
वा, अपि	= भी	**एति**	= प्राप्त होता है; (क्योंकि वह)
भावम्	= भावको	**सदा**	= सदा
स्मरन्	= स्मरण करता हुआ	**तद्भावभावितः**	= उसी भावसे भावित रहा है।
कलेवरम्	= शरीरका		

[निरन्तर भगवच्चिन्तन करते हुए युद्ध करनेकी आज्ञा एवं उसका फल]

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम्॥ ७॥

तस्मात्	= इसलिये (हे अर्जुन! तू)	**मयि**	= मुझमें
सर्वेषु	= सब	**अर्पितमनोबुद्धिः**	= अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर (तू)
कालेषु	= समयमें (निरन्तर)		
माम्	= मेरा	**असंशयम्**	= निःसन्देह
अनुस्मर	= स्मरण कर	**माम्**	= मुझको
च	= और	**एव**	= ही
युध्य	= युद्ध भी कर। (इस प्रकार)	**एष्यसि**	= प्राप्त होगा।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना,
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

पार्थ	= हे पार्थ! (यह नियम है कि)	**अभ्यासयोगयुक्तेन**	= परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त

नान्यगामिना	= दूसरी ओर न जानेवाले	**परमम्**	= परम (प्रकाशस्वरूप)
चेतसा	= चित्तसे	**दिव्यम्**	= दिव्य
अनुचिन्तयन्	= निरन्तर चिन्तन करता हुआ (मनुष्य)	**पुरुषम्**	= पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको (ही)
		याति	= प्राप्त होता है।

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, ,सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ ९ ॥

यः	= जो पुरुष	**अचिन्त्यरूपम्**	= अचिन्त्यस्वरूप
कविम्	= सर्वज्ञ,	**आदित्यवर्णम्**	= सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप (और)
पुराणम्	= अनादि,		
अनुशासितारम्	= सबके नियन्ता, *		
अणोः, अणीयांसम्	= सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म,	**तमसः**	= अविद्यासे
सर्वस्य	= सबके	**परस्तात्**	= अति परे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका
धातारम्	= धारण-पोषण करनेवाले,	**अनुस्मरेत्**	= स्मरण करता है—

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ॥ १० ॥

सः	= वह	**अचलेन**	= निश्चल
भक्त्या, युक्तः	= भक्तियुक्त पुरुष	**मनसा**	= मनसे
प्रयाणकाले	= अन्तकालमें (भी)	**(स्मरन्)**	= स्मरण करता हुआ
योगबलेन	= योगबलसे	**तम्**	= उस
भ्रुवोः	= भृकुटीके	**दिव्यम्**	= दिव्यरूप
मध्ये	= मध्यमें	**परम्**	= परम
प्राणम्	= प्राणको	**पुरुषम्**	= पुरुष परमात्माको
सम्यक्	= अच्छी प्रकार	**एव**	= ही
आवेश्य	= स्थापित करके	**उपैति**	= प्राप्त होता है—
च	= फिर		

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः,
वीतरागाः,यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते,
पदम्, सङ्ग्रहेण, प्रवक्ष्ये॥ ११ ॥

और हे अर्जुन!—

वेदविदः	=	वेदके जाननेवाले विद्वान्			(और)
यत्	=	जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको	**यत्**	=	जिस परमपदको
अक्षरम्	=	अविनाशी	**इच्छन्तः**	=	चाहनेवाले (ब्रह्मचारी लोग)
वदन्ति	=	कहते हैं,	**ब्रह्मचर्यम्**	=	ब्रह्मचर्यका
वीतरागाः	=	आसक्तिरहित	**चरन्ति**	=	आचरण करते हैं,
यतयः	=	यत्नशील संन्यासी महात्माजन	**तत्**	=	उस
			पदम्	=	परमपदको (मैं)
			ते	=	तेरे लिये
यत्	=	जिसमें	**सङ्ग्रहेण**	=	संक्षेपसे
विशन्ति	=	प्रवेश करते हैं	**प्रवक्ष्ये**	=	कहूँगा।

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च,
मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्॥ १२ ॥
ओम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्,
यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्॥ १३ ॥

हे अर्जुन!—

सर्वद्वाराणि	=	सब इन्द्रियोंके द्वारोंको	**ओम्**	=	'ॐ'
			इति	=	इस
संयम्य	=	रोककर	**एकाक्षरम्**	=	एक अक्षररूप
च	=	तथा	**ब्रह्म**	=	ब्रह्मको
मनः	=	मनको			
हृदि	=	हृद्देशमें	**व्याहरन्**	=	उच्चारण करता हुआ (और उसके अर्थस्वरूप)
निरुध्य	=	स्थिर करके, (फिर उस जीते हुए मनके द्वारा)	**माम्**	=	मुझ निर्गुण ब्रह्मका
प्राणम्	=	प्राणको	**अनुस्मरन्**	=	चिन्तन करता हुआ
मूर्ध्नि	=	मस्तकमें	**देहम्**	=	शरीरको
आधाय	=	स्थापित करके	**त्यजन्**	=	त्यागकर
आत्मनः	=	परमात्मसम्बन्धी	**प्रयाति**	=	जाता है,
योगधारणाम्	=	योगधारणामें	**सः**	=	वह पुरुष
आस्थितः	=	स्थित होकर	**परमाम्,गतिम्**	=	परमगतिको
यः	=	जो पुरुष	**याति**	=	प्राप्त होता है।

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः,
तस्य, अहम्, सुलभः,पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः ॥ १४ ॥

और—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**तस्य**	= उस
यः	= जो पुरुष	**नित्ययुक्तस्य**	= नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए
(मयि)	= मुझमें		
अनन्यचेताः	= अनन्यचित्त होकर	**योगिनः**	= योगीके लिये
नित्यशः	= सदा ही	**अहम्**	= मैं
सततम्	= निरन्तर	**सुलभः**	= सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।
माम्	= मुझ पुरुषोत्तमको		
स्मरति	= स्मरण करता है,		

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्,
न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः ॥ १५ ॥

और वे—

परमाम्	= परम	**दुःखालयम्**	= दुःखोंके घर (एवं)
संसिद्धिम्	= सिद्धिको	**अशाश्वतम्**	= क्षणभंगुर
गताः	= प्राप्त	**पुनर्जन्म**	= पुनर्जन्मको
महात्मानः	= महात्माजन	**न**	= नहीं
माम्	= मुझको	**आप्नुवन्ति**	= प्राप्त होते।
उपेत्य	= प्राप्त होकर		

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन,
माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते ॥ १६ ॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**माम्**	= मुझको
आब्रह्मभुवनात्	= ब्रह्मलोकपर्यन्त	**उपेत्य**	= प्राप्त होकर
लोकाः	= सब लोक		
पुनरावर्तिनः	= पुनरावर्ती* हैं,	**पुनर्जन्म**	= पुनर्जन्म
तु	= परंतु	**न**	= नहीं
कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र!	**विद्यते**	= होता;

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः, यत्, ब्रह्मणः, विदुः,
रात्रिम्, युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः ॥ १७ ॥

हे अर्जुन!—

ब्रह्मणः	= ब्रह्माका	**युगसहस्त्रान्ताम्**	= एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाली
यत्	= जो	**(ये)**	= जो पुरुष
अहः	= एक दिन है, (उसको)	**विदुः**	= तत्त्वसे जानते हैं, *
सहस्त्रयुगपर्यन्तम्	= एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाला (और)	**ते**	= वे
		जनाः	= योगीजन
रात्रिम्	= रात्रिको (भी)	**अहोरात्रविदः**	= कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं।

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे,
रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तसञ्ज्ञके ॥ १८ ॥

इसलिये वे यह भी जानते हैं कि—

सर्वाः	= सम्पूर्ण	**रात्र्यागमे**	= ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें
व्यक्तयः	= चराचर भूतगण		
अहरागमे	= ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें	**तत्र**	= उस
अव्यक्तात्	= अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे	**अव्यक्तसंज्ञके**	= अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें
प्रभवन्ति	= उत्पन्न होते हैं (और)	**एव**	= ही
		प्रलीयन्ते	= लीन हो जाते हैं।

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते,
रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे ॥ १९ ॥

और—

पार्थ	= हे पार्थ!	**रात्र्यागमे**	= रात्रिके प्रवेशकालमें
सः, एव	= वही	**प्रलीयते**	= लीन होता है (और)
अयम्	= यह	**अहरागमे**	= दिनके प्रवेश-कालमें (फिर)
भूतग्रामः	= भूतसमुदाय	**प्रभवति**	= उत्पन्न होता है।
भूत्वा, भूत्वा	= उत्पन्न हो-होकर		
अवशः	= प्रकृतिके वशमें हुआ		

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः,
यः, सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति ॥ २० ॥

तु	= परंतु	**सनातनः**	= सनातन
तस्मात्	= उस	**अव्यक्तः**	= अव्यक्त
अव्यक्तात्	= अव्यक्तसे (भी अति)	**भावः**	= भाव है;
परः	= परे	**सः**	= वह परम दिव्य पुरुष
अन्यः	= दूसरा अर्थात् विलक्षण	**सर्वेषु**	= सब
यः	= जो	**भूतेषु**	= भूतोंके
		नश्यत्सु	= नष्ट होनेपर (भी)
		न, विनश्यति	= नष्ट नहीं होता।

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्,
यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ २१ ॥

और जो—

अव्यक्तः	= अव्यक्त	**यम्**	= जिस सनातन अव्यक्तभावको
अक्षरः	= 'अक्षर'	**प्राप्य**	= प्राप्त होकर (मनुष्य)
इति	= इस (नामसे)	**न, निवर्तन्ते**	= वापस नहीं आते,
उक्तः	= कहा गया है,	**तत्**	= वह
तम्	= उसी अक्षर नामक अव्यक्तभावको	**मम**	= मेरा
परमाम्, गतिम्	= परमगति	**परमम्**	= परम
आहुः	= कहते हैं, (तथा)	**धाम**	= धाम है।

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया,
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्॥ २२॥

पार्थ	= हे पार्थ!	**ततम्**	= परिपूर्ण * है,
यस्य	= जिस परमात्माके	**सः**	= वह सनातन अव्यक्त
अन्तःस्थानि	= अन्तर्गत	**परः**	= परम
भूतानि	= सर्वभूत हैं (और)	**पुरुषः**	= पुरुष
येन	= जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे	**तु**	= तो
		अनन्यया	= अनन्य[१]
इदम्	= यह	**भक्त्या**	= भक्तिसे (ही)
सर्वम्	= समस्त जगत्	**लभ्यः**	= प्राप्त होनेयोग्य है।

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्,
प्रदिष्टम्, अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी,
परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम्॥ २८॥

क्योंकि—

योगी	= योगी पुरुष	**प्रदिष्टम्**	= कहा है,
इदम्	= इस रहस्यको	**तत्**	= उस
विदित्वा	= तत्त्वसे जानकर	**सर्वम्**	= सबको
वेदेषु	= वेदोंके पढ़नेमें	**एव**	= निःसन्देह
च	= तथा	**अत्येति**	= उल्लंघन कर जाता है
यज्ञेषु	= यज्ञ,		
तपःसु	= तप (और)	**च**	= और
दानेषु	= दानादिके करनेमें	**आद्यम्**	= सनातन
यत्	= जो	**परम्, स्थानम्**	= परमपदको
पुण्यफलम्	= पुण्यफल	**उपैति**	= प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 9 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ नवमोऽध्यायः

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्॥ १ ॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

ते	= तुझ	**प्रवक्ष्यामि**	= भलीभाँति कहूँगा
अनसूयवे	= दोष-दृष्टिरहित भक्तके लिये	**तु**	= कि
इदम्	= इस	**यत्**	= जिसको
गुह्यतमम्	= परम गोपनीय	**ज्ञात्वा**	= जानकर (तू)
विज्ञानसहितम्	= विज्ञानसहित	**अशुभात्**	= दुःखरूप संसारसे
ज्ञानम्	= ज्ञानको (पुनः)	**मोक्ष्यसे**	= मुक्त हो जायगा।

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम्॥ २ ॥

इदम्	= यह विज्ञानसहित ज्ञान	**प्रत्यक्षावगमम्**	= प्रत्यक्ष फलवाला।
राजविद्या	= सब विद्याओंका राजा,	**धर्म्यम्**	= धर्मयुक्त
राजगुह्यम्	= सब गोपनीयोंका राजा,	**कर्तुम्**	= साधन करनेमें
पवित्रम्	= अति पवित्र,	**सुसुखम्**	= बड़ा सुगम (और)
उत्तमम्	= अति उत्तम,	**अव्ययम्**	= अविनाशी है।

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परन्तप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ ३ ॥

और—

परन्तप	= हे परंतप!	**माम्**	= मुझको
अस्य	= इस (उपर्युक्त)	**अप्राप्य**	= न प्राप्त होकर
धर्मस्य	= धर्ममें	**मृत्युसंसार-वर्त्मनि**	= मृत्युरूप संसारचक्रमें
अश्रद्दधानाः	= श्रद्धारहित		
पुरुषाः	= पुरुष	**निवर्तन्ते**	= भ्रमण करते रहते हैं।

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,
मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन!—

मया	= मुझ	**सर्वभूतानि**	= सब भूत
अव्यक्तमूर्तिना	= निराकार परमात्मासे	**मत्स्थानि**	= मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, (किन्तु वास्तवमें)
इदम्	= यह		
सर्वम्	= सब		
जगत्	= जगत् (जलसे बर्फके सदृश)	**अहम्**	= मैं
ततम्	= परिपूर्ण है	**तेषु**	= उनमें
च	= और	**न,अवस्थितः**	= स्थित नहीं हूँ।

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्,
भूतभृत्, न, च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः ॥ ५ ॥

भूतानि	= वे सब भूत	**च**	= और
मत्स्थानि	= मुझमें स्थित	**भूतभावनः**	= भूतोंको उत्पन्न करनेवाला
न	= नहीं हैं; (किंतु)		
मे	= मेरी	**च**	= भी
ऐश्वरम्	= ईश्वरीय	**मम**	= मेरा
योगम्	= योगशक्तिको	**आत्मा**	= आत्मा (वास्तवमें)
पश्य	= देख (कि)		
भूतभृत्	= भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला	**भूतस्थः**	= भूतोंमें स्थित
		न	= नहीं है।

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय ॥ ६ ॥

क्योंकि—

यथा	= जैसे (आकाशसे उत्पन्न)	**तथा**	= वैसे ही (मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे)
सर्वत्रगः	= सर्वत्र विचरनेवाला		
महान्	= महान्	**सर्वाणि**	= सम्पूर्ण
वायुः	= वायु	**भूतानि**	= भूत
नित्यम्	= सदा	**मत्स्थानि**	= मुझमें स्थित हैं,
आकाशस्थितः	= आकाशमें ही स्थित है,	**इति**	= ऐसा
		उपधारय	= जान।

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्,
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम्॥ ७॥

और—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!		होते हैं (और)
कल्पक्षये	= कल्पोंके अन्तमें	**कल्पादौ**	= कल्पोंके आदिमें
सर्वभूतानि	= सब भूत		
मामिकाम्	= मेरी	**तानि**	= उनको
प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	**अहम्**	= मैं
यान्ति	= प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लीन	**पुनः**	= फिर
		विसृजामि	= रचता हूँ।

[सर्वभूतोंकी पुनः-पुनः उत्पत्तिका कथन।]

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः,
भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृतेः, वशात्॥ ८॥

कैसे कि—

स्वाम्	= अपनी	**इमम्**	= इस
प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
अवष्टभ्य	= अंगीकार करके	**भूतग्रामम्**	= भूतसमुदायको
प्रकृतेः	= स्वभावके	**पुनः, पुनः**	= बार-बार (उनके कर्मोंके अनुसार)
वशात्	= बलसे		
अवशम्	= परतन्त्र हुए	**विसृजामि**	= रचता हूँ।

अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्,
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम्॥ ११॥

ऐसा होनेपर भी—

मम	= मेरे	**भूतमहेश्वरम्**	= सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको
परम्	= परम		
भावम्	= भावको *	**अवजानन्ति**	= तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपने योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।
अजानन्तः	= न जाननेवाले		
मूढाः	= मूढ़लोग		
मानुषीम्	= मनुष्यका		
तनुम्	= शरीर		
आश्रितम्	= धारण करनेवाले		
माम्	= मुझ		

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः,
नमस्यन्तः, च, माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते ॥ १४ ॥

और वे—

दृढव्रताः	= दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन	**च**	= और
		माम्	= मुझको (बार-बार)
सततम्	= निरन्तर	**नमस्यन्तः**	= प्रणाम करते हुए
कीर्तयन्तः	= मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए	**नित्ययुक्ताः**	= सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर
च	= तथा (मेरी प्राप्तिके लिये)	**भक्त्या**	= अनन्य प्रेमसे
		माम्	= मेरी
यतन्तः	= यत्न करते हुए	**उपासते**	= उपासना करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते,
एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

अन्ये	= दूसरे ज्ञानयोगी		करते हैं)
माम्	= मुझ (निर्गुण-निराकार ब्रह्मका)	**च**	= और (दूसरे मनुष्य)
		बहुधा	= बहुत प्रकारसे स्थित
ज्ञानयज्ञेन	= ज्ञानयज्ञके द्वारा	**विश्वतोमुखम्**	= मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी
एकत्वेन	= अभिन्न-भावसे		
यजन्तः	= पूजन करते हुए	**पृथक्त्वेन**	= पृथक्-भावसे
अपि	= भी (मेरी उपासना	**उपासते**	= उपासना करते हैं।

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्,
प्रभवः, प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम् ॥ १८ ॥

और हे अर्जुन!—

गतिः	= प्राप्त होनेयोग्य परमधाम,	**सुहृत्**	= प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला
भर्ता	= भरण-पोषण करनेवाला,	**प्रभवः प्रलयः**	= सबकी उत्पत्ति-प्रलयका हेतु,
प्रभुः	= सबका स्वामी,	**स्थानम्**	= स्थितिका आधार,
साक्षी	= शुभाशुभका देखनेवाला,	**निधानम्**	= निधान* (और)
		अव्ययम्	= अविनाशी
		बीजम्	= कारण (भी)
निवासः	= सबका वासस्थान,	**(अहम्)**	= मैं
शरणम्	= शरण लेनेयोग्य,	**(एव)**	= ही हूँ।

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च,
अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन ॥ १९ ॥

और—

अहम्	= मैं (ही)	**एव**	= ही
तपामि	= सूर्यरूपसे तपता हूँ,	**अमृतम्**	= अमृत
वर्षम्	= वर्षाका	**च**	= और
निगृह्णामि	= आकर्षण करता हूँ	**मृत्युः**	= मृत्यु (हूँ)
च	= और (उसे)	**च**	= और
उत्सृजामि	= बरसाता हूँ।	**सत्, असत्**	= सत्-असत्
अर्जुन	= हे अर्जुन!	**च**	= भी
अहम्	= मैं	**अहम्**	= मैं ही (हूँ)।

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्,
प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति,
दिव्यान्, दिवि, देवभोगान् ॥ २० ॥

परंतु जो—

त्रैविद्याः	= तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्मोंको करनेवाले,	**प्रार्थयन्ते**	= चाहते हैं;
		ते	= वे पुरुष
सोमपाः	= सोमरसको पीनेवाले,	**पुण्यम्**	= अपने पुण्योंके फलरूप
		सुरेन्द्रलोकम्	= स्वर्गलोकको
पूतपापाः	= पापरहित पुरुष*	**आसाद्य**	= प्राप्त होकर
माम्	= मुझको	**दिवि**	= स्वर्गमें
यज्ञैः	= यज्ञोंके द्वारा	**दिव्यान्**	= दिव्य
इष्ट्वा	= पूजकर	**देवभोगान्**	= देवताओंके भोगोंको
स्वर्गतिम्	= स्वर्गकी प्राप्ति	**अश्नन्ति**	= भोगते हैं।

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये,
मर्त्यलोकम्, विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः,
गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते ॥ २१ ॥

और—

ते	= वे	**स्वर्गलोकम्**	= स्वर्गलोकको
तम्	= उस	**भुक्त्वा**	= भोगकर
विशालम्	= विशाल	**पुण्ये**	= पुण्य

क्षीणे	= क्षीण होनेपर	**कामकामाः**	= भोगोंकी कामनावाले पुरुष
मर्त्यलोकम्	= मृत्युलोकको	**गतागतम्**	= बार-बार आवागमनको
विशन्ति	= प्राप्त होते हैं।	**लभन्ते**	= प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकमें आते हैं।
एवम्	= इस प्रकार (स्वर्गके साधनरूप)		
त्रयीधर्मम्	= तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मका		
अनुप्रपन्नाः	= आश्रय लेनेवाले (और)		

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते,
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्॥ २२॥

और—

ये	= जो	**तेषाम्**	= उन
अनन्याः	= अनन्य प्रेमी	**नित्याभियुक्तानाम्**	= नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका
जनाः	= भक्तजन	**योगक्षेमम्**	= योगक्षेम*
माम्	= मुझ परमेश्वरको	**अहम्**	= मैं स्वयं
चिन्तयन्तः	= निरन्तर चिन्तन करते हुए	**वहामि**	= प्राप्त कर देता हूँ।
पर्युपासते	= निष्कामभावसे भजते हैं,		

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम्॥ २३॥

और—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**अपि**	= भी
अपि	= यद्यपि	**माम्**	= मुझको
श्रद्धया	= श्रद्धासे	**एव**	= ही
अन्विताः	= युक्त	**यजन्ति**	= पूजते हैं, (किंतु उनका वह पूजन)
ये	= जो सकाम		
भक्ताः	= भक्त		
अन्यदेवताः	= दूसरे देवताओंको	**अविधिपूर्वकम्**	= अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।
यजन्ते	= पूजते हैं,		
ते	= वे		

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च,
न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते॥ २४॥

हि = क्योंकि
सर्वयज्ञानाम् = सम्पूर्ण यज्ञोंका
भोक्ता = भोक्ता
च = और
प्रभुः = स्वामी
च = भी
अहम् = मैं
एव = ही हूँ;
तु = परंतु
ते = वे
माम् = मुझ परमेश्वरको
तत्त्वेन = तत्त्वसे
न = नहीं
अभिजानन्ति = जानते,
अतः = इसीसे
च्यवन्ति = गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं।

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः,
भूतानि, यान्ति, भूतेज्याः, यान्ति, मद्याजिनः, अपि, माम्॥ २५॥

कारण यह नियम है कि—

देवव्रताः = देवताओंको पूजनेवाले
देवान् = देवताओंको
यान्ति = प्राप्त होते हैं,
पितृव्रताः = पितरोंको पूजनेवाले
पितॄन् = पितरोंको
यान्ति = प्राप्त होते हैं,
भूतेज्याः = भूतोंको पूजनेवाले
भूतानि = भूतोंको
यान्ति = प्राप्त होते हैं (और)
मद्याजिनः = मेरा पूजन करनेवाले भक्त
माम् = मुझको
अपि = ही
यान्ति = प्राप्त होते हैं। (इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता।*)

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्,
साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः॥ ३०॥

तथा और भी मेरी भक्तिका प्रभाव सुन—

चेत्	= यदि (कोई)	**हि**	= क्योंकि
सुदुराचारः	= अतिशय दुराचारी	**सः**	= वह
अपि	= भी	**सम्यक्**	= यथार्थ
अनन्यभाक्	= अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर	**व्यवसितः**	= निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।
माम्	= मुझको		
भजते	= भजता है (तो)		
सः	= वह		
साधुः	= साधु		
एव	= ही		
मन्तव्यः	= माननेयोग्य है;		

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति,
कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति॥ ३१ ॥

इसलिये वह—

क्षिप्रम्	= शीघ्र ही	**कौन्तेय**	= हे अर्जुन! (तू)
धर्मात्मा	= धर्मात्मा	**प्रति**	= निश्चयपूर्वक सत्य
भवति	= हो जाता है (और)	**जानीहि**	= जान (कि)
शश्वत्	= सदा रहनेवाली	**मे**	= मेरा
शान्तिम्	= परमशान्तिको	**भक्तः**	= भक्त
निगच्छति	= प्राप्त होता है।	**न, प्रणश्यति**	= नष्ट नहीं होता।

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः,
स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम्॥ ३२ ॥

हि	= क्योंकि	**अपि**	= भी
पार्थ	= हे अर्जुन!	**स्युः**	= हों,
स्त्रियः	= स्त्री,	**ते**	= वे
वैश्याः	= वैश्य,	**अपि**	= भी
शूद्राः	= शूद्र	**माम्**	= मेरी
तथा	= तथा	**व्यपाश्रित्य**	= शरण होकर
पापयोनयः	= पापयोनि— चाण्डालादि	**पराम्**	= परम
		गतिम्	= गतिको (ही)
ये	= जो (कोई)	**यान्ति**	= प्राप्त होते हैं।

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा,
अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम्॥ ३३ ॥

पुनः	= फिर (इसमें तो कहना ही)		प्राप्त होते हैं। इसलिये तू)
किम्	= क्या है, (जो)	**असुखम्**	= सुखरहित (और)
पुण्याः	= पुण्यशील	**अनित्यम्**	= क्षणभंगुर
ब्राह्मणाः	= ब्राह्मण	**इमम्**	= इस
तथा	= तथा	**लोकम्**	= मनुष्य-शरीरको
राजर्षयः	= राजर्षि	**प्राप्य**	= प्राप्त होकर (निरन्तर)
भक्ताः	= भक्तजन (मेरी शरण होकर परमगतिको	**माम्**	= मेरा (ही)
		भजस्व	= भजन कर।

[अर्जुनको अपनी शरण होनेके लिये कहकर अंगसहित शरणागतिके स्वरूपका निरूपण।]

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः ॥ ३४ ॥

मन्मनाः	= मुझमें मनवाला	**एवम्**	= इस प्रकार
भव	= हो,	**आत्मानम्**	= आत्माको (मुझमें)
मद्भक्तः	= मेरा भक्त	**युक्त्वा**	= नियुक्त करके
(भव)	= बन,	**मत्परायणः**	= मेरे परायण होकर (तू)
मद्याजी	= मेरा पूजन करनेवाला		
(भव)	= हो,	**माम्**	= मुझको
माम्	= मुझको	**एव**	= ही
नमस्कुरु	= प्रणाम कर।	**एष्यसि**	= प्राप्त होगा।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 10 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ दशमोऽध्यायः

भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वचः,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—

महाबाहो	= हे महाबाहो !	**यत्**	= जिसे
भूयः	= फिर	**अहम्**	= मैं
एव	= भी	**ते**	= तुझ
मे	= मेरे	**प्रीयमाणाय**	= अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये
परमम्	= परम (रहस्य और प्रभावयुक्त)		
वचः	= वचनको	**हितकाम्यया**	= हितकी इच्छासे
शृणु	= सुन,	**वक्ष्यामि**	= कहूँगा।

['योग' शब्दवाच्य अपने प्रभावका वर्णन करके उसके जाननेका फल बतलाना।]

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥ २ ॥

हे अर्जुन!—

मे	= मेरी	**विदुः**	= जानते हैं;
प्रभवम्	= उत्पत्तिको अर्थात् लीलासे प्रकट होनेको	**हि**	= क्योंकि
		अहम्	= मैं
न	= न	**सर्वशः**	= सब प्रकारसे
सुरगणाः	= देवतालोग (जानते हैं और)	**देवानाम्**	= देवताओंका
		च	= और
न	= न	**महर्षीणाम्**	= महर्षियोंका (भी)
महर्षयः	= महर्षिजन (ही)	**आदिः**	= आदि कारण हूँ।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 11 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथैकादशोऽध्याय:

द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन् ॥ २० ॥

और—

महात्मन्	= हे महात्मन्!	व्याप्तम्	= परिपूर्ण हैं; (तथा)
इदम्	= यह		
द्यावापृथिव्योः, अन्तरम्	= स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश	तव	= आपके
		इदम्	= इस
		अद्भुतम्	= अलौकिक और
च	= तथा	उग्रम्	= भयंकर
सर्वाः	= सब	रूपम्	= रूपको
दिशः	= दिशाएँ	दृष्ट्वा	= देखकर
एकेन	= एक	लोकत्रयम्	= तीनों लोक
त्वया	= आपसे	प्रव्यथितम्	= अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं।
हि	= ही		

अमी, हि, त्वाम्, सुरसङ्घाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्राञ्जलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसङ्घाः, स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

और हे गोविन्द!—

अमी	= वे ही	गृणन्ति	= उच्चारण करते हैं (तथा)
सुरसङ्घाः, हि	= देवताओंके समूह	महर्षिसिद्धसङ्घाः	= महर्षि और सिद्धोंके समुदाय
त्वाम्	= आपमें		
विशन्ति	= प्रवेश करते हैं (और)	स्वस्ति	= 'कल्याण हो'
		इति	= ऐसा
केचित्	= कुछ	उक्त्वा	= कहकर
भीताः	= भयभीत होकर	पुष्कलाभिः	= उत्तम-उत्तम
प्राञ्जलयः	= हाथ जोड़े (आपके नाम और गुणोंका)	स्तुतिभिः	= स्तोत्रोंद्वारा
		त्वाम्	= आपकी
		स्तुवन्ति	= स्तुति करते हैं।

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः, तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो॥ ३०॥

और आप उन—

समग्रान्	= सम्पूर्ण	**तव**	= आपका
लोकान्	= लोकोंको	**उग्राः**	= उग्र
ज्वलद्भिः	= प्रज्वलित	**भासः**	= प्रकाश
वदनैः	= मुखोंद्वारा	**समग्रम्**	= सम्पूर्ण
ग्रसमानः	= ग्रास करते हुए	**जगत्**	= जगत्को
समन्तात्	= सब ओरसे	**तेजोभिः**	= तेजके द्वारा
लेलिह्यसे	= बार-बार चाट रहे हैं,	**आपूर्य**	= परिपूर्ण करके
विष्णो	= हे विष्णो!	**प्रतपन्ति**	= तपा रहा है।

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर,प्रसीद, विज्ञातुम्, इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्॥ ३१॥

हे भगवन्! कृपा करके—

मे	= मुझे	**आद्यम्**	= आदिपुरुष
आख्याहि	= बतलाइये (कि)	**भवन्तम्**	= आपको (मैं)
भवान्	= आप		
उग्ररूपः	= उग्ररूपवाले	**विज्ञातुम्**	= विशेषरूपसे जानना
कः	= कौन हैं?	**इच्छामि**	= चाहता हूँ;
देववर	= हे देवोंमें श्रेष्ठ!	**हि**	= क्योंकि (मैं)
ते	= आपको	**तव**	= आपकी
नमः	= नमस्कार	**प्रवृत्तिम्**	= प्रवृत्तिको
अस्तु	= हो। (आप)	**न**	= नहीं
प्रसीद	= प्रसन्न होइये।	**प्रजानामि**	= जानता।

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः॥ ३२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मैं—

लोकक्षयकृत् = लोकोंका नाश करनेवाला
प्रवृद्धः = बढ़ा हुआ
कालः = महाकाल
अस्मि = हूँ।
इह = इस समय
लोकान् = इन लोकोंको
समाहर्तुम् = नष्ट करनेके लिये
प्रवृत्तः = प्रवृत्त हुआ हूँ। (इसलिये)
ये = जो
प्रत्यनीकेषु = प्रतिपक्षियोंकी सेनामें
अवस्थिताः = स्थित
योधाः = योद्धा लोग हैं,
(ते) = वे
सर्वे = सब
त्वाम् = तेरे
ऋते = बिना
अपि = भी
न = नहीं
भविष्यन्ति = रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायगा।

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्,
भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः,
पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन्॥ ३३ ॥

तस्मात् = अतएव
त्वम् = तू
उत्तिष्ठ = उठ!
यशः = यश
लभस्व = प्राप्त कर (और)
शत्रून् = शत्रुओंको
जित्वा = जीतकर
समृद्धम् = धन-धान्यसे सम्पन्न
राज्यम् = राज्यको
भुङ्क्ष्व = भोग।
एते = ये सब (शूरवीर)
पूर्वम्, एव = पहलेहीसे
मया = मेरे ही द्वारा
निहताः = मारे हुए हैं।
सव्यसाचिन् = हे सव्यसाचिन्!*
निमित्तमात्रम्, एव = तू तो केवल निमित्तमात्र
भव = बन जा।

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः,
अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्,
अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत्॥ ३७ ॥

महात्मन्	= हे महात्मन्!	**देवेश**	= हे देवेश!
ब्रह्मणः	= ब्रह्माके	**जगन्निवास**	= हे जगन्निवास!
अपि	= भी	**यत्**	= जो
आदिकर्त्रे	= आदिकर्ता	**सत्**	= सत्,
च	= और	**असत्**	= असत् (और)
गरीयसे	= सबसे बड़े	**तत्परम्**	= उनसे परे
ते	= आपके लिये (ये)	**अक्षरम्**	= अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं,
कस्मात्	= कैसे	**(तत्)**	= वह
न, नमेरन्	= नमस्कार न करें (क्योंकि)	**त्वम्**	= आप (ही हैं)।
अनन्त	= हे अनन्त!		

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्, तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

और हे विष्णो!—

अहम्	= मैं	**इच्छामि**	= चाहता हूँ,
तथा	= वैसे	**(अतः)**	= इसलिये
एव	= ही	**विश्वमूर्ते**	= हे विश्वस्वरूप!
त्वाम्	= आपको	**सहस्रबाहो**	= हे सहस्रबाहो! (आप)
किरीटिनम्	= मुकुट धारण किये हुए (तथा)	**तेन एव**	= उसी
गदिनम्, चक्रहस्तम्	= गदा और चक्र हाथमें लिये हुए	**चतुर्भुजेन रूपेण**	= चतुर्भुजरूपसे (प्रकट)
द्रष्टुम्	= देखना	**भव**	= होइये।

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्, तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीभगवान् बोले—

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**इदम्**	= यह
प्रसन्नेन	= अनुग्रहपूर्वक	**मे**	= मेरा
मया	= मैंने	**परम्**	= परम
आत्मयोगात्	= अपनी योग-शक्तिके प्रभावसे	**तेजोमयम्**	= तेजोमय
		आद्यम्	= सबका आदि (और)

अनन्तम्	= सीमारहित	यत्	= जिसे
विश्वम्	= विराट्	त्वदन्येन	= तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने
रूपम्	= रूप		
तव	= तुझको	न दृष्टपूर्वम्	= पहले नहीं देखा था।
दर्शितम्	= दिखलाया है,		

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः, उग्रैः, एवंरूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर	= हे अर्जुन!	न	= न
नृलोके	= मनुष्यलोकमें	क्रियाभिः	= क्रियाओंसे
एवंरूपः	= इस प्रकार विश्वरूपवाला	च	= और
		न	= न
अहम्	= मैं	उग्रैः	= उग्र
न	= न	तपोभिः	= तपोंसे (ही)
वेदयज्ञाध्ययनैः	= वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे,	त्वदन्येन	= तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा
न	= न	द्रष्टुम्	= देखा जा
दानैः	= दानसे,	शक्यः	= सकता हूँ।

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्, व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य ॥ ४९ ॥

मम	= मेरे	त्वम्	= तू
ईदृक्	= इस प्रकारके	व्यपेतभीः	= भयरहित (और)
इदम्	= इस	प्रीतमनाः	= प्रीतियुक्त मनवाला होकर
घोरम्	= विकराल		
रूपम्	= रूपको	तत्, एव	= उसी
दृष्ट्वा	= देखकर	मे	= मेरे
ते	= तुझको	इदम्	= इस (शंख, चक्र, गदा–पद्मयुक्त चतुर्भुज)
व्यथा	= व्याकुलता		
मा	= नहीं होनी चाहिये		
च	= और	रूपम्	= रूपको
विमूढभावः	= मूढ़भाव (भी)	पुनः	= फिर
मा	= नहीं होना चाहिये।	प्रपश्य	= देख।

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा ॥ ५० ॥

उसके पश्चात् संजय बोले, हे राजन्!—

वासुदेवः	= वासुदेव भगवान्ने	**च**	= और
अर्जुनम्	= अर्जुनके प्रति	**पुनः**	= फिर
इति	= इस प्रकार	**महात्मा**	= महात्मा श्रीकृष्णने
उक्त्वा	= कहकर	**सौम्यवपुः**	= सौम्यमूर्ति
भूयः	= फिर	**भूत्वा**	= होकर
तथा	= वैसे ही	**एनम्**	= इस
स्वकम्	= अपने	**भीतम्**	= भयभीत अर्जुनको
रूपम्	= चतुर्भुजरूपको	**आश्वासयामास**	= धीरज दिया।
दर्शयामास	= दिखलाया		

दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन, इदानीम्, अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः ॥ ५१ ॥

उसके पश्चात् अर्जुन बोले—

जनार्दन	= हे जनार्दन!	**सचेताः**	= स्थिर-चित्त
तव	= आपके	**संवृत्तः**	= हो गया
इदम्	= इस	**अस्मि**	= हूँ (और)
सौम्यम्	= अतिशान्त		
मानुषम्, रूपम्	= मनुष्य रूपको	**प्रकृतिम्**	= अपनी स्वाभाविक स्थितिको
दृष्ट्वा	= देखकर		
इदानीम्	= अब (मैं)	**गतः**	= प्राप्त हो गया हूँ।

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवान्, असि, यत्, मम, देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अर्जुनके वचनको सुनकर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन !—

मम	= मेरा	**देवाः**	= देवता
यत्	= जो	**अपि**	= भी
रूपम्	= चतुर्भुजरूप (तुमने)	**नित्यम्**	= सदा
दृष्टवान्	= देखा	**अस्य**	= इस
असि	= है,	**रूपस्य**	= रूपके
इदम्	= यह		
सुदुर्दर्शम्	= सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं।	**दर्शनकाङ्क्षिणः**	= दर्शनकी आकांक्षा करते रहते हैं।

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया,
शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवान्, असि, माम्, यथा॥ ५३ ॥

और हे अर्जुन!—

यथा	= जिस प्रकार (तुमने)	**न**	= न
माम्	= मुझको	**तपसा**	= तपसे,
दृष्टवान्	= देखा	**न**	= न
असि	= है	**दानेन**	= दानसे
एवंविधः	= इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला	**च**	= और
		न	= न
अहम्	= मैं	**इज्यया**	= यज्ञसे (ही)
न	= न	**द्रष्टुम्**	= देखा
वेदैः	= वेदोंसे,	**शक्यः**	= जा सकता हूँ।

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन,
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन्, प्रवेष्टुम्, च, परन्तप॥ ५४ ॥

तु	= परंतु	**तत्त्वेन**	= तत्त्वसे
परन्तप	= हे परन्तप	**ज्ञातुम्**	= जाननेके लिये
अर्जुन	= अर्जुन!	**च**	= तथा
अनन्यया, भक्त्या	= अनन्यभक्ति*के द्वारा	**प्रवेष्टुम्**	= प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये
एवंविधः	= इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला		
अहम्	= मैं		
द्रष्टुम्	= प्रत्यक्ष देखनेके लिये,	**च**	= भी
		शक्यः	= शक्य हूँ।

मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः,
निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव॥ ५५ ॥

पाण्डव	= हे अर्जुन!		(और)
यः	= जो पुरुष केवल	**सर्वभूतेषु**	= सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें
मत्कर्मकृत्	= मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मोंको करनेवाला है,	**निर्वैरः**	= वैरभावसे रहित है*,
		सः	= वह (अनन्यभक्तियुक्त पुरुष)
मत्परमः	= मेरे परायण है,		
मद्भक्तः	= मेरा भक्त है,	**माम्**	= मुझको (ही)
सङ्गवर्जितः	= आसक्तिरहित है	**एति**	= प्राप्त होता है।

श्रीमदभगवत गीता अध्याय 12 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले, हे मनमोहन!—

ये = जो		**अक्षरम्** = अविनाशी सच्चिदानन्दघन	
भक्ताः = अनन्य प्रेमी भक्तजन			
एवम् = पूर्वोक्त प्रकारसे		**अव्यक्तम्** = निराकार ब्रह्मको	
सततयुक्ताः = निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर		**अपि** = ही	
		पर्युपासते = अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं—	
		तेषाम् = उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें	
त्वाम् = आप सगुणरूप परमेश्वरको		**योगवित्तमाः** = अति उत्तम योगवेत्ता	
च = और		**के** = कौन	
ये = दूसरे जो (केवल)		**(सन्ति)** = हैं ?	

श्रीभगवानुवाच

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन!—

मयि = मुझमें	**माम्** = मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
मनः = मनको	
आवेश्य = एकाग्र करके	**उपासते** = भजते हैं,
नित्ययुक्ताः = निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए*	**ते** = वे
	मे = मुझको
ये = जो भक्तजन	
परया = अतिशय श्रेष्ठ	**युक्ततमाः** = योगियोंमें अति उत्तम योगी
श्रद्धया = श्रद्धासे	
उपेताः = युक्त होकर	**मताः** = मान्य हैं।

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्॥ ३॥
सन्नियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः॥ ४॥

तु	= परंतु	**अक्षरम्**	= अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
ये	= जो पुरुष		
इन्द्रियग्रामम्	= इन्द्रियोंके समुदायको		
सन्नियम्य	= भली प्रकारसे वशमें करके	**पर्युपासते**	= निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं,
अचिन्त्यम्	= मन-बुद्धिसे परे,		
सर्वत्रगम्	= सर्वव्यापी,	**ते**	= वे
अनिर्देश्यम्	= अकथनीय स्वरूप	**सर्वभूतहिते**	= सम्पूर्ण भूतोंके हितमें
च	= और	**रताः**	= रत (और)
कूटस्थम्	= सदा एकरस रहनेवाले,	**सर्वत्र**	= सबमें
		समबुद्धयः	= समानभाववाले योगी
ध्रुवम्	= नित्य,	**माम्**	= मुझको
अचलम्	= अचल,	**एव**	= ही
अव्यक्तम्	= निराकार,	**प्राप्नुवन्ति**	= प्राप्त होते हैं।

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते॥ ५॥

किंतु—

तेषाम्	= उन	**हि**	= क्योंकि
अव्यक्तासक्त-चेतसाम्	= सच्चिदानन्दघन निराकारब्रह्ममें आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके (साधनमें)	**देहवद्भिः**	= देहाभिमानियोंके द्वारा
		अव्यक्ता	= अव्यक्तविषयक
		गतिः	= गति
क्लेशः	= परिश्रम	**दुःखम्**	= दुःखपूर्वक
अधिकतरः	= विशेष है;	**अवाप्यते**	= प्राप्त की जाती है।

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्पराः,
अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते ॥ ६ ॥

तु	= परंतु	**माम्**	= मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
ये	= जो		
मत्पराः	= मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन	**एव**	= ही
		अनन्येन	= अनन्य
सर्वाणि	= सम्पूर्ण	**योगेन**	= भक्तियोगसे
कर्माणि	= कर्मोंको	**ध्यायन्तः**	= निरन्तर चिन्तन करते हुए
मयि	= मुझमें		
सन्न्यस्य	= अर्पण करके	**उपासते**	= भजते हैं*—

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्,
भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

पार्थ	= हे अर्जुन!	**अहम्**	= मैं
तेषाम्	= उन	**नचिरात्**	= शीघ्र ही
मयि	= मुझमें	**मृत्युसंसार-सागरात्**	= मृत्युरूप संसारसमुद्रसे
आवेशितचेतसाम्	= चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका	**समुद्धर्ता**	= उद्धार करनेवाला
		भवामि	= होता हूँ।

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम्, निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः ॥ ८ ॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू—

मयि	= मुझमें	**ऊर्ध्वम्**	= उपरान्त (तू)
मनः	= मनको		
आधत्स्व	= लगा (और)	**मयि**	= मुझमें
मयि	= मुझमें	**एव**	= ही
एव	= ही	**निवसिष्यसि**	= निवास करेगा, (इसमें कुछ भी)
बुद्धिम्	= बुद्धिको		
निवेशय	= लगा;	**संशयः**	= संशय
अतः	= इसके	**न**	= नहीं है।

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनञ्जय ॥ ९ ॥

और—

अथ	= यदि (तू)	**ततः**	= तो
चित्तम्	= मनको	**धनञ्जय**	= हे अर्जुन!
मयि	= मुझमें	**अभ्यासयोगेन**	= अभ्यासरूप* योगके द्वारा
स्थिरम्	= अचल	**माम्**	= मुझको
समाधातुम्	= स्थापन करनेके लिये	**आप्तुम्**	= प्राप्त होनेके लिये
न, शक्नोषि	= समर्थ नहीं है,	**इच्छ**	= इच्छा कर।

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव,
मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि ॥ १० ॥

और यदि तू उपर्युक्त—

अभ्यासे	= अभ्यासमें	**मदर्थम्**	= मेरे निमित्त
अपि	= भी	**कर्माणि**	= कर्मोंको
असमर्थः	= असमर्थ	**कुर्वन्**	= करता हुआ
असि	= है (तो केवल)	**अपि**	= भी
मत्कर्मपरमः	= मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण*	**सिद्धिम्**	= मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको (ही)
भव	= हो जा। (इस प्रकार)	**अवाप्स्यसि**	= प्राप्त होगा।

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान् ॥ ११ ॥

और—

अथ	= यदि	**असि**	= है
मद्योगम्	= मेरी प्राप्तिरूप योगके	**ततः**	= तो
आश्रितः	= आश्रित होकर	**यतात्मवान्**	= मन-बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर
एतत्	= उपर्युक्त साधनको		
कर्तुम्	= करनेमें	**सर्वकर्मफलत्यागम्**	= सब कर्मोंके फलका त्याग[1]
अपि	= भी (तू)		
अशक्तः	= असमर्थ	**कुरु**	= कर

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते,
ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम्॥ १२॥

अभ्यासात्	= मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे	**ध्यानात्**	= ध्यानसे (भी)
ज्ञानम्	= ज्ञान[2]	**कर्मफलत्यागः**	= सब कर्मोंके फलका त्याग[3] (श्रेष्ठ है);
श्रेयः	= श्रेष्ठ है,	**हि**	= क्योंकि
ज्ञानात्	= ज्ञानसे	**त्यागात्**	= त्यागसे
ध्यानम्	= मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान	**अनन्तरम्**	= तत्काल ही
विशिष्यते	= श्रेष्ठ है (और)	**शान्तिः**	= परम शान्ति होती है।

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च,
निर्ममः, निरहङ्कारः, समदुःखसुखः, क्षमी॥ १३॥
सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः॥ १४॥

इस प्रकार शान्तिको प्राप्त हुआ—

यः	= जो पुरुष		(तथा जो)
सर्वभूतानाम्	= सब भूतोंमें	**योगी**	= योगी
अद्वेष्टा	= द्वेष-भावसे रहित,	**सततम्**	= निरन्तर
मैत्रः	= स्वार्थरहित सबका प्रेमी	**सन्तुष्टः**	= संतुष्ट है,
च	= और	**यतात्मा**	= मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है (और)
करुणः	= हेतुरहित दयालु है		
एव	= तथा*	**दृढनिश्चयः**	= मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—
निर्ममः	= ममतासे रहित,		
निरहङ्कारः	= अहंकारसे रहित,	**सः**	= वह
समदुःखसुखः	= सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम (और)	**मयि**	= मुझमें
		अर्पितमनोबुद्धिः	= अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला
क्षमी	= क्षमावान् है अर्थात् अपराध करने-वालेको भी अभय देनेवाला है;	**मद्भक्तः**	= मेरा भक्त
		मे	= मुझको
		प्रियः	= प्रिय है।

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः,
हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः ॥ १५ ॥

तथा—

यस्मात्	= जिससे	**च**	= तथा
लोकः	= कोई भी जीव	**यः**	= जो
न, उद्विजते	= उद्वेगको प्राप्त नहीं होता	**हर्षामर्षभयोद्वेगैः**	= हर्ष, अमर्ष[1] भय और उद्वेगादिसे
च	= और		
यः	= जो (स्वयं भी)	**मुक्तः**	= रहित है—
लोकात्	= किसी जीवसे	**सः**	= वह भक्त
न, उद्विजते	= उद्वेगको प्राप्त नहीं होता	**मे**	= मुझको
		प्रियः	= प्रिय है।

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः,
सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥ १६ ॥

और—

यः	= जो पुरुष	**गतव्यथः**	= दुःखोंसे छूटा हुआ है—
अनपेक्षः	= आकांक्षासे रहित,	**सः**	= वह
शुचिः	= बाहर-भीतरसे शुद्ध[2]	**सर्वारम्भ-परित्यागी**	= सब आरम्भोंका त्यागी*
दक्षः	= चतुर	**मद्भक्तः**	= मेरा भक्त
उदासीनः	= पक्षपातसे रहित (और)	**मे**	= मुझको
		प्रियः	= प्रिय है।

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः ॥ १७ ॥

और—

यः	= जो		(तथा)
न	= न (कभी)	**यः**	= जो
हृष्यति	= हर्षित होता है,	**शुभाशुभ-परित्यागी**	= शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—
न	= न		
द्वेष्टि	= द्वेष करता है,		
न	= न	**सः**	= वह
शोचति	= शोक करता है,	**भक्तिमान्**	= भक्तियुक्त पुरुष
न	= न	**मे**	= मुझको
काङ्क्षति	= कामना करता है	**प्रियः**	= प्रिय है।

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

और जो—

शत्रौ, मित्रे	= शत्रु-मित्रमें	**शीतोष्णसुखदुःखेषु**	= सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें
च	= और	**समः**	= सम है
मानापमानयोः	= मान-अपमानमें	**च**	= और
समः	= सम है	**सङ्गविवर्जितः**	= आसक्तिसे रहित है—
तथा	= तथा		

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, सन्तुष्टः, येन, केनचित्,
अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः ॥ १९ ॥

तथा जो—

तुल्यनिन्दास्तुतिः	= निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला,		(और)
मौनी	= मननशील* (और)	**अनिकेतः**	= रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है— (वह)
येन, केनचित्	= जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें	**स्थिरमतिः**	= स्थिरबुद्धि
		भक्तिमान्	= भक्तिमान्
		नरः	= पुरुष
		मे	= मुझको
सन्तुष्टः	= सदा ही संतुष्ट है	**प्रियः**	= प्रिय है।

ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते,
श्रद्दधानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः ॥ २० ॥

तु	= परंतु	**पर्युपासते**	= निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं,
ये	= जो		
श्रद्दधानाः	= श्रद्धायुक्त पुरुष[1]	**ते**	= वे
मत्परमाः	= मेरे परायण होकर[2]	**भक्ताः**	= भक्त
इदम्	= इस	**मे**	= मुझको
यथा, उक्तम्	= ऊपर कहे हुए	**अतीव**	= अतिशय
धर्म्यामृतम्	= धर्ममय अमृतको	**प्रियाः**	= प्रिय हैं।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 13 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः ॥ १ ॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् बोले—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**यः**	= जो
इदम्	= यह	**वेत्ति**	= जानता है,
शरीरम्	= शरीर	**तम्**	= उसको
क्षेत्रम्	= 'क्षेत्र'*	**क्षेत्रज्ञः**	= 'क्षेत्रज्ञ'
इति	= इस (नामसे)	**इति**	= इस (नामसे)
अभिधीयते	= कहा जाता है; (और)	**तद्विदः**	= उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन
एतत्	= इसको	**प्राहुः**	= कहते हैं।

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम ॥ २ ॥

भारत	= हे अर्जुन! (तू)	**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः**	= क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका
सर्वक्षेत्रेषु	= सब क्षेत्रोंमें	**यत्**	= जो
क्षेत्रज्ञम्	= क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा	**ज्ञानम्**	= तत्त्वसे जानना है[२]
अपि	= भी	**तत्**	= वह
माम्	= मुझे ही	**ज्ञानम्**	= ज्ञान है—
विद्धि	= जान[१]	**(इति)**	= ऐसा
		मम	= मेरा
च	= और	**मतम्**	= मत है।

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्,
सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु ॥ ३ ॥

इसलिये—

तत्	= वह	**च**	= तथा
क्षेत्रम्	= क्षेत्र	**यद्विकारि**	= जिन विकारोंवाला है
यत्	= जो		
च	= और	**च**	= और
यादृक्	= जैसा है	**यतः**	= जिस कारणसे

यत्	= जो (हुआ है)	**यत्प्रभावः**	= जिस प्रभाववाला है—
च	= तथा		
सः	= वह (क्षेत्रज्ञ भी)	**तत्**	= वह सब
		समासेन	= संक्षेपमें
यः	= जो	**मे**	= मुझसे
च	= और	**शृणु**	= सुन।

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्,
ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

यह क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञका तत्त्व—

ऋषिभिः	= ऋषियोंद्वारा	**च**	= तथा
बहुधा	= बहुत प्रकारसे	**विनिश्चितैः**	= भलीभाँति निश्चय किये हुए
गीतम्	= कहा गया है (और)	**हेतुमद्भिः**	= युक्तियुक्त
विविधैः	= विविध	**ब्रह्मसूत्रपदैः**	= ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा
छन्दोभिः	= वेदमन्त्रोंद्वारा (भी)		
पृथक्	= विभागपूर्वक	**एव**	= भी
(गीतम्)	= कहा गया है	**(गीतम्)**	= कहा गया है।

महाभूतानि, अहङ्कारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च,
इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पञ्च, च, इन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥

महाभूतानि	= पाँच महाभूत[1]	**इन्द्रियाणि**	= इन्द्रियाँ[2],
अहङ्कारः	= अहंकार,	**एकम्**	= एक मन
बुद्धिः	= बुद्धि	**च**	= और
च	= और	**पञ्च**	= पाँच
अव्यक्तम्	= मूल प्रकृति	**इन्द्रियगोचराः**	= इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—
एव	= भी		
च	= तथा		
दश	= दस		

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, सङ्घातः, चेतना, धृतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम् ॥ ६ ॥

तथा—

इच्छा = इच्छा,	**धृतिः** = धृति[४]—(इस प्रकार)
द्वेषः = द्वेष,	**सविकारम्** = विकारोंके सहित[५]
सुखम् = सुख,	**एतत्** = यह
दुःखम् = दुःख,	**क्षेत्रम्** = क्षेत्र
सङ्घातः = स्थूल देहका पिण्ड,	**समासेन** = संक्षेपमें
चेतना = चेतना[३] (और)	**उदाहृतम्** = कहा गया है।

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्,
आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन!—

अमानित्वम् = श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव,	**आर्जवम्** = मन-वाणी आदिकी सरलता,
अदम्भित्वम् = दम्भाचरणका अभाव,	**आचार्योपासनम्** = श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा,
	शौचम् = बाहर-भीतरकी शुद्धि*,
अहिंसा = किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना,	**स्थैर्यम्** = अन्तःकरणकी स्थिरता (और)
क्षान्तिः = क्षमाभाव,	**आत्मविनिग्रहः** = मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह—

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहङ्कारः, एव, च,
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

तथा—

इन्द्रियार्थेषु = इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें	**अनहङ्कारः, एव** = अहंकारका भी अभाव
वैराग्यम् = आसक्तिका अभाव	**जन्ममृत्युजरा-व्याधिदुःख-दोषानुदर्शनम्** = जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना—
च = और	

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

तथा—

पुत्रदारगृहादिषु = पुत्र-स्त्री-घर और धन आदिमें
असक्तिः = आसक्तिका अभाव,
अनभिष्वङ्गः = ममताका न होना
च = तथा
इष्टानिष्टोपपत्तिषु = प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें
नित्यम् = सदा ही
समचित्तत्वम् = चित्तका सम रहना—

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि ॥ १० ॥

और—

मयि = मुझ परमेश्वरमें
अनन्ययोगेन = अनन्य योगके द्वारा
अव्यभिचारिणी = अव्यभिचारिणी
भक्तिः = भक्ति[१]
च = तथा
विविक्तदेश-सेवित्वम् = एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव (और)
जनसंसदि = विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें
अरतिः = प्रेमका न होना—

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा ॥ ११ ॥

तथा—

अध्यात्मज्ञान-नित्यत्वम् = अध्यात्मज्ञानमें[२] नित्य स्थिति (और)
तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनम् = तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—
एतत् = यह सब
ज्ञानम् = ज्ञान[३] है (और)
यत् = जो
अतः = इससे
अन्यथा = विपरीत है,
अज्ञानम् = वह अज्ञान है*,
इति = ऐसा
प्रोक्तम् = कहा है।

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते,
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते॥ १२॥

और हे अर्जुन!—

यत्	= जो	**तत्**	= वह
ज्ञेयम्	= जाननेयोग्य है (तथा)	**अनादिमत्**	= अनादिवाला
		परम्	= परम
यत्	= जिसको	**ब्रह्म**	= ब्रह्म
ज्ञात्वा	= जानकर (मनुष्य)	**न**	= न
अमृतम्	= परमानन्दको	**सत्**	= सत् (ही)
अश्नुते	= प्राप्त होता है,		
तत्	= उसको	**उच्यते**	= कहा जाता है,
प्रवक्ष्यामि	= भलीभाँति कहूँगा।	**न**	= न
		असत्	= असत् (ही)।

सर्वतःपाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति॥ १३॥

परंतु—

तत्	= वह	**सर्वतःश्रुतिमत्**	= सब ओर कानवाला है।
सर्वतःपाणिपादम्	= सब ओर हाथ-पैरवाला,	**(यतः)**	= क्योंकि (वह)
		लोके	= संसारमें
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्	= सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला (तथा)	**सर्वम्**	= सबको
		आवृत्य	= व्याप्त करके
		तिष्ठति	= स्थित है*।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्,
असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च॥ १४॥

और वह—

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्	= सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, (परंतु वास्तवमें)	**असक्तम्**	= आसक्तिरहित (होनेपर)
		एव	= भी
		सर्वभृत्	= सबका धारण-पोषण करनेवाला
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्	= सब इन्द्रियोंसे रहित है	**च**	= और
		निर्गुणम्	= निर्गुण होनेपर (भी)
च	= तथा	**गुणभोक्तृ**	= गुणोंको भोगनेवाला है।

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च,
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत्॥ १५ ॥

तथा वह—

भूतानाम्	= चराचर सब भूतोंके	**सूक्ष्मत्वात्**	= सूक्ष्म होनेसे
बहिः, अन्तः	= बाहर-भीतर (परिपूर्ण है)	**अविज्ञेयम्**	= अविज्ञेय है[1]
		च	= तथा
च	= और	**अन्तिके**	= अति समीपमें[2]
चरम्, अचरम्	= चर-अचररूप	**च**	= और
एव	= भी (वही है;)	**दूरस्थम्**	= दूरमें भी स्थित[3]
च	= और		
तत्	= वह	**तत्**	= वही है।

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्,
भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च॥ १६ ॥

तथा वह परमात्मा—

अविभक्तम्	= विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर	**ज्ञेयम्**	= जाननेयोग्य परमात्मा
		भूतभर्तृ	= विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला
च	= भी	**च**	= और
भूतेषु	= चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें	**ग्रसिष्णु**	= रुद्ररूपसे संहार करनेवाला
विभक्तम्, इव	= विभक्त-सा	**च**	= तथा
स्थितम्	= स्थित[1] (प्रतीत होता है);	**प्रभविष्णु**	= ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है।
च	= तथा		
तत्	= वह		

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते,
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्॥ १७ ॥

और—

तत्	= वह परब्रह्म	**तमसः**	= मायासे
ज्योतिषाम्	= ज्योतियोंका	**परम्**	= अत्यन्त परे
अपि	= भी	**उच्यते**	= कहा जाता है। (वह परमात्मा)
ज्योतिः	= ज्योति[2] (एवं)		

ज्ञानम्	= बोधस्वरूप,		(और)
ज्ञेयम्	= जाननेके योग्य (एवं)	**सर्वस्य**	= सबके
		हृदि	= हृदयमें
ज्ञानगम्यम्	= तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है	**विष्ठितम्**	= विशेषरूपसे स्थित है।

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः,
मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते ॥ १८ ॥

हे अर्जुन!—

इति	= इस प्रकार	**समासतः**	= संक्षेपसे
क्षेत्रम्	= क्षेत्र[1]	**उक्तम्**	= कहा गया।
तथा	= तथा	**मद्भक्तः**	= मेरा भक्त
ज्ञानम्	= ज्ञान[2]	**एतत्**	= इसको
च	= और	**विज्ञाय**	= तत्त्वसे जानकर
ज्ञेयम्	= जानने योग्य परमात्माका स्वरूप[3]	**मद्भावाय**	= मेरे स्वरूपको
		उपपद्यते	= प्राप्त होता है।

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि,
विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसम्भवान् ॥ १९ ॥

और हे अर्जुन!—

प्रकृतिम्	= प्रकृति	**विकारान्**	= राग-द्वेषादि विकारोंको
च	= और		
पुरुषम्	= पुरुष—	**च**	= तथा
उभौ	= इन दोनोंको	**गुणान्**	= त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको
एव	= ही (तू)	**अपि**	= भी
अनादी	= अनादि	**प्रकृतिसम्भवान्, एव**	= प्रकृतिसे ही उत्पन्न
विद्धि	= जान		
च	= और	**विद्धि**	= जान।

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते,
पुरुषः, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते ॥ २० ॥

क्योंकि—

कार्यकरणकर्तृत्वे = कार्य और करणको* उत्पन्न करनेमें
हेतुः = हेतु
प्रकृतिः = प्रकृति
उच्यते = कही जाती है (और)
पुरुषः = जीवात्मा
सुखदुःखानाम् = सुख-दुःखोंके
भोक्तृत्वे = भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें
हेतुः = हेतु
उच्यते = कहा जाता है।

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्,
कारणम्, गुणसङ्गः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

परंतु—

प्रकृतिस्थः = प्रकृतिमें[1] स्थित
हि = ही
पुरुषः = पुरुष
प्रकृतिजान् = प्रकृतिसे उत्पन्न
गुणान् = त्रिगुणात्मक पदार्थोंको
भुङ्क्ते = भोगता है (और इन)
गुणसङ्गः = गुणोंका संग (ही)
अस्य = इस जीवात्माके
सदसद्योनिजन्मसु = अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका
कारणम् = कारण है[2]।

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः,
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः ॥ २२ ॥

अस्मिन् = इस
देहे (स्थितः) अपि = देहमें स्थित
पुरुषः = यह आत्मा (वास्तवमें)
परः (एव) = परमात्मा[3] ही है। (वही)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता,
भर्ता = सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता,
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता,
महेश्वरः = ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है।

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते ॥ २३ ॥

एवम्	= इस प्रकार	**सः**	= वह
पुरुषम्	= पुरुषको	**सर्वथा**	= सब प्रकारसे
च	= और	**वर्तमानः**	= कर्तव्य कर्म करता हुआ
गुणैः	= गुणोंके		
सह	= सहित	**अपि**	= भी
प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	**भूयः**	= फिर
यः	= जो मनुष्य	**न**	= नहीं
वेत्ति	= तत्त्वसे जानता है*,	**अभिजायते**	= जन्मता।

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना,
अन्ये, साङ्ख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥ २४ ॥

हे अर्जुन! उस परमपुरुष—

आत्मानम्	= परमात्माको	**अन्ये**	= अन्य कितने ही
केचित्	= कितने ही मनुष्य तो	**साङ्ख्येन योगेन**	= ज्ञानयोग[2]के द्वारा
आत्मना	= शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे	**च**	= और
		अपरे	= दूसरे (कितने ही)
ध्यानेन	= ध्यानके द्वारा[1]	**कर्मयोगेन**	= कर्मयोगके द्वारा[3]
आत्मनि	= हृदयमें	**(पश्यन्ति)**	= देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।
पश्यन्ति	= देखते हैं,		

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते,
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

तु	= परंतु	**अन्येभ्यः**	= दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे
अन्ये	= इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे		
		श्रुत्वा	= सुनकर ही (तदनुसार)
एवम्	= इस प्रकार		
अजानन्तः	= न जानते हुए	**उपासते**	= उपासना करते हैं[4]

च	= और	**अपि**	= भी
ते	= वे	**मृत्युम्**	= मृत्युरूप संसारसागरको
श्रुतिपरायणाः	= श्रवणपरायण पुरुष	**अतितरन्ति, एव**	= निःसन्देह तर जाते हैं।

यावत्, सञ्जायते, किञ्चित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ॥ २६॥

भरतर्षभ	= हे अर्जुन!	**तत्**	= उन सबको (तू)
यावत्	= यावन्मात्र	**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्**	= क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही (उत्पन्न)
किञ्चित्	= जितने भी		
स्थावरजङ्गमम्	= स्थावरजंगम		
सत्त्वम्	= प्राणी		
सञ्जायते	= उत्पन्न होते हैं,	**विद्धि**	= जान।

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्,
विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति॥ २७॥

इस प्रकार जानकर—

यः	= जो पुरुष	**अविनश्यन्तम्**	= नाशरहित (और)
विनश्यत्सु	= नष्ट होते हुए	**समम्**	= समभावसे
सर्वेषु	= सब	**तिष्ठन्तम्**	= स्थित
भूतेषु	= चराचर भूतोंमें	**पश्यति**	= देखता है,
परमेश्वरम्	= परमेश्वरको	**सः**	= वही (यथार्थ)
		पश्यति	= देखता है।

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्,
न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥ २८॥

हि	= क्योंकि (जो पुरुष)	**आत्मना**	= अपने द्वारा
		आत्मानम्	= अपनेको
सर्वत्र	= सबमें	**न हिनस्ति**	= नष्ट नहीं करता[1],
समवस्थितम्	= समभावसे स्थित	**ततः**	= इससे (वह)
ईश्वरम्	= परमेश्वरको	**पराम्**	= परम
समम्	= समान	**गतिम्**	= गतिको
पश्यन्	= देखता हुआ	**याति**	= प्राप्त होता है।

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः,
यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति ॥ २९ ॥

च = और		**पश्यति** = देखता है[२]	
यः = जो पुरुष		**तथा** = और	
कर्माणि = सम्पूर्ण कर्मोंको		**आत्मानम्** = आत्माको	
सर्वशः = सब प्रकारसे		**अकर्तारम्** = अकर्ता	
प्रकृत्या = प्रकृतिके द्वारा		**पश्यति** = देखता है,	
एव = ही		**सः** = वही (यथार्थ)	
क्रियमाणानि = किये जाते हुए		**(पश्यति)** = देखता है।	

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति,
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते तदा ॥ ३० ॥

और—

यदा = जिस क्षण (यह पुरुष)	**एव** = ही
भूतपृथग्भावम् = भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको	**विस्तारम्** = सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार
एकस्थम् = एक परमात्मामें ही स्थित	**अनुपश्यति** = देखता है,
च = तथा	**तदा** = उसी क्षण (वह)
ततः = उस परमात्मासे	**ब्रह्म** = सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
	सम्पद्यते = प्राप्त हो जाता है।

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः,
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते ॥ ३१ ॥

कौन्तेय = हे अर्जुन!	**शरीरस्थः** = शरीरमें स्थित होनेपर
अनादित्वात् = अनादि होनेसे (और)	**अपि** = भी (वास्तवमें)
निर्गुणत्वात् = निर्गुण होनेसे	**न** = न (तो)
अयम् = यह	**करोति** = कुछ करता है और
अव्ययः = अविनाशी	**न** = न
परमात्मा = परमात्मा	**लिप्यते** = लिप्त ही होता है।

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते,
सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते॥ ३२॥

यथा	= जिस प्रकार	**देहे**	= देहमें
सर्वगतम्	= सर्वत्र व्याप्त	**सर्वत्र**	= सर्वत्र
आकाशम्	= आकाश	**अवस्थितः**	= स्थित
सौक्ष्म्यात्	= सूक्ष्म होनेके कारण	**आत्मा**	= आत्मा (निर्गुण होनेके कारण देहके गुणोंसे)
न, उपलिप्यते	= लिप्त नहीं होता,		
तथा	= वैसे ही	**न, उपलिप्यते**	= लिप्त नहीं होता।

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः,
क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत॥ ३३॥

भारत	= हे अर्जुन!	**प्रकाशयति**	= प्रकाशित करता है,
यथा	= जिस प्रकार		
एकः	= एक ही	**तथा**	= उसी प्रकार
रविः	= सूर्य	**क्षेत्री**	= एक ही आत्मा
इमम्	= इस	**कृत्स्नम्**	= सम्पूर्ण
कृत्स्नम्	= सम्पूर्ण	**क्षेत्रम्**	= क्षेत्रको
लोकम्	= ब्रह्माण्डको	**प्रकाशयति**	= प्रकाशित करता है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा,
भूतप्रकृतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम्॥ ३४॥

एवम्	= इस प्रकार	**ये**	= जो पुरुष
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	= क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके	**ज्ञानचक्षुषा**	= ज्ञान-नेत्रोंद्वारा
अन्तरम्	= भेदको*	**विदुः**	= तत्त्वसे जानते हैं,
च	= तथा	**ते**	= वे महात्माजन
भूतप्रकृतिमोक्षम्	= कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको	**परम्**	= परम ब्रह्म परमात्माको
		यान्ति	= प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 14 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः ॥ १ ॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् बोले, अर्जुन!—

ज्ञानानाम्	= ज्ञानोंमें भी	**सर्वे**	= सब
उत्तमम् (तत्)	= अति उत्तम उस	**मुनयः**	= मुनिजन
परम्	= परम	**इतः**	= इस संसारसे (मुक्त होकर)
ज्ञानम्	= ज्ञानको (मैं)		
भूयः	= फिर		
प्रवक्ष्यामि	= कहूँगा,	**पराम्**	= परम
यत्	= जिसको	**सिद्धिम्**	= सिद्धिको
ज्ञात्वा	= जानकर	**गताः**	= प्राप्त हो गये हैं।

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च ॥ २ ॥

हे अर्जुन!—

इदम्	= इस	**सर्गे**	= सृष्टिके आदिमें (पुनः)
ज्ञानम्	= ज्ञानको		
उपाश्रित्य	= आश्रय करके अर्थात् धारण करके	**न उपजायन्ते**	= उत्पन्न नहीं होते
		च	= और
मम	= मेरे	**प्रलये**	= प्रलयकालमें
साधर्म्यम्	= स्वरूपको	**अपि**	= भी
आगताः	= प्राप्त हुए पुरुष	**न व्यथन्ति**	= व्याकुल नहीं होते।

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्,
सम्भवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत ॥ ३ ॥

भारत = हे अर्जुन!
मम = मेरी
महत्, ब्रह्म = महत्-ब्रह्मरूप मूल प्रकृति (सम्पूर्ण भूतोंकी)
योनिः = योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है (और)
अहम् = मैं
तस्मिन् = उस योनिमें
गर्भम् = चेतन-समुदायरूप गर्भको
दधामि = स्थापन करता हूँ।
ततः = उस जड़-चेतनके संयोगसे
सर्वभूतानाम् = सब भूतोंकी
सम्भवः = उत्पत्ति
भवति = होती है।

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः,
तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता ॥ ४ ॥

तथा—

कौन्तेय = हे अर्जुन!
सर्वयोनिषु = नाना प्रकारकी सब योनियोंमें
याः = जितनी
मूर्तयः = मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी
सम्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं,
महत्, ब्रह्म = प्रकृति (तो)
तासाम् = उन सबकी
योनिः = गर्भ धारण करनेवाली माता है (और)
अहम् = मैं
बीजप्रदः = बीजको स्थापन करनेवाला
पिता = पिता हूँ।

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसम्भवाः,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम् ॥ ५ ॥

तथा—

महाबाहो = हे अर्जुन!
सत्त्वम् = सत्त्वगुण,
रजः = रजोगुण और
तमः = तमोगुण—
इति = ये
प्रकृतिसम्भवाः = प्रकृतिसे उत्पन्न
गुणाः = तीनों गुण
अव्ययम् = अविनाशी
देहिनम् = जीवात्माको
देहे = शरीरमें
निबध्नन्ति = बाँधते हैं।

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति,
गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति॥ १९॥

और हे अर्जुन!—

यदा	= जिस समय	**परम्**	= अत्यन्त परे सच्चिदानन्द-घनस्वरूप मुझ परमात्माको
द्रष्टा	= द्रष्टा*		
गुणेभ्यः	= तीनों गुणोंके अतिरिक्त		
अन्यम्	= अन्य किसीको	**वेत्ति**	= तत्त्वसे जानता है, (उस समय)
कर्तारम्	= कर्ता		
न	= नहीं	**सः**	= वह
अनुपश्यति	= देखता	**मद्भावम्**	= मेरे स्वरूपको
च	= और	**अधिगच्छति**	= प्राप्त होता है।
गुणेभ्यः	= तीनों गुणोंसे		

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्,
जन्ममृत्युजरादुःखैः, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते॥ २०॥

तथा यह—

देही	= पुरुष	**जन्ममृत्युजरा-दुःखैः**	= जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे
देहसमुद्भवान्	= शरीरकी* उत्पत्तिके कारणरूप		
एतान्	= इन		
त्रीन्	= तीनों	**विमुक्तः**	= मुक्त हुआ
गुणान्	= गुणोंको	**अमृतम्**	= परमानन्दको
अतीत्य	= उल्लंघन करके	**अश्नुते**	= प्राप्त होता है।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः,
तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ २४॥

और—

स्वस्थः	= जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित,	**धीरः**	= ज्ञानी,
समदुःखसुखः	= दुःख-सुखको समान समझनेवाला,	**तुल्यप्रियाप्रियः**	= प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला (और)
समलोष्टाश्मकाञ्चनः	= मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला,	**तुल्यनिन्दात्म-संस्तुतिः**	= अपनी निन्दास्तुतिमें भी समान भाववाला है—

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥ २६ ॥

च	= और	**एतान्**	= इन
यः	= जो पुरुष	**गुणान्**	= तीनों गुणोंको
अव्यभिचारेण	= अव्यभिचारी	**समतीत्य**	= भलीभाँति लाँघकर
भक्तियोगेन	= भक्तियोगके द्वारा*	**ब्रह्मभूयाय**	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये
माम्	= मुझको (निरन्तर)		
सेवते	= भजता है,		
सः	= वह (भी)	**कल्पते**	= योग्य बन जाता है।

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च,
शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च ॥ २७ ॥

हे अर्जुन!—

हि	= क्योंकि (उस)	**धर्मस्य**	= धर्मका
अव्ययस्य	= अविनाशी	**च**	= और
ब्रह्मणः	= परब्रह्मका	**ऐकान्तिकस्य**	= अखण्ड एकरस
च	= और		
अमृतस्य	= अमृतका	**सुखस्य**	= आनन्दका
च	= तथा	**प्रतिष्ठा**	= आश्रय
शाश्वतस्य	= नित्य	**अहम्**	= मैं (हूँ)।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्॥ १ ॥

उसके पश्चात् श्रीभगवान् फिर बोले, हे अर्जुन!—

ऊर्ध्वमूलम्	= आदि पुरुष परमेश्वररूप मूलवाले[1] (और)	**यस्य**	= जिसके
अधःशाखम्	= ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले[2] (जिस)	**पर्णानि**	= पत्ते (कहे गये हैं—)
अश्वत्थम्	= संसाररूप पीपलके वृक्षको	**तम्**	= उस संसाररूप वृक्षको
अव्ययम्	= अविनाशी[1]	**यः**	= जो पुरुष (मूलसहित)
प्राहुः	= कहते हैं; (तथा)	**वेद**	= तत्त्वसे जानता है,
छन्दांसि	= वेद[2]	**सः**	= वह
		वेदवित्	= वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है[3]।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः,
विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि,
कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके॥ २ ॥

और हे अर्जुन!—

तस्य	= उस संसारवृक्षकी	**अधः**	= नीचे
गुणप्रवृद्धाः	= तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई (एवं)	**च**	= और
विषयप्रवालाः	= विषय[1] भोग-रूप कोंपलोंवाली	**ऊर्ध्वम्**	= ऊपर सर्वत्र
शाखाः	= देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ[2]	**प्रसृताः**	= फैली हुई हैं (तथा)
		मनुष्यलोके	= मनुष्यलोकमें[3]
		कर्मानुबन्धीनि	= कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली
		मूलानि	= अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें

(अपि)	= भी	(ऊर्ध्वम्)	= ऊपर
अधः	= नीचे	अनुसन्ततानि	= सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं।
च	= और		

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च, सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा ॥ ३ ॥

परंतु—

अस्य	= इस संसारवृक्षका	न	= न (इसकी)
रूपम्	= स्वरूप (जैसा कहा है),	सम्प्रतिष्ठा	= अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है [४]
तथा	= वैसा	(अतः)	= इसलिये
इह	= यहाँ(विचारकालमें)	एनम्	= इस
न	= नहीं	सुविरूढमूलम्	= अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले
उपलभ्यते	= पाया जाता;[१]		
(यतः)	= क्योंकि		
न	= न (तो इसका)	अश्वत्थम्	= संसाररूप पीपलके वृक्षको
आदिः	= आदि है[२]		
च	= और	दृढेन	= दृढ़
न	= न	असङ्गशस्त्रेण	= वैराग्यरूप[५] शस्त्रद्वारा
अन्तः	= अन्त है[३]		
च	= तथा	छित्त्वा	= काटकर[६]—

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी ॥ ४ ॥

ततः	= उसके पश्चात्	परिमार्गितव्यम्	= भलीभाँति खोजना चाहिये,
तत्	= उस		
पदम्	= परमपदरूप परमेश्वरको	यस्मिन्	= जिसमें
		गताः	= गये हुए पुरुष

भूयः = फिर
न, निवर्तन्ति = लौटकर संसारमें नहीं आते
च = और
यतः = जिस परमेश्वरसे (इस)
पुराणी = पुरातन
प्रवृत्तिः = संसारवृक्षकी प्रवृत्ति
प्रसृता = विस्तारको प्राप्त हुई है,

तम्, एव = उसी
आद्यम्, पुरुषम् = आदि-पुरुष नारायणके
प्रपद्ये = मैं शरण हूँ—(इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये।)

निर्मानमोहाः, जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः, द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसञ्ज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत्॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः = जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है,
जितसङ्गदोषाः = जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है,
अध्यात्मनित्याः = जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है (और)
विनिवृत्तकामाः = जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—(वे)

सुखदुःखसञ्ज्ञैः = सुख-दुःखनामक
द्वन्द्वैः = द्वन्द्वोंसे
विमुक्ताः = विमुक्त
अमूढाः = ज्ञानीजन
तत् = उस
अव्ययम् = अविनाशी
पदम् = परमपदको
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं।

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशाङ्कः, न, पावकः,
यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ ६ ॥

और—

यत् = जिस परमपदको
गत्वा = प्राप्त होकर (मनुष्य)
न, निवर्तन्ते = लौटकर संसारमें नहीं आते,

तत् = उस (स्वयं प्रकाश परमपदको)
न = न
सूर्यः = सूर्य

भासयते	= प्रकाशित कर सकता है	**पावकः**	= अग्नि ही;
न	= न	**तत्**	= वही
शशाङ्कः	= चन्द्रमा (और)	**मम**	= मेरा
न	= न	**परमम्, धाम**	= परमधाम है*।

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मृतिः,
ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव,
वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम्॥ १५॥

अहम्	= मैं (ही)	**सर्वैः**	= सब
सर्वस्य	= सब प्राणियोंके	**वेदैः**	= वेदोंद्वारा
हृदि	= हृदयमें	**अहम्**	= मैं
सन्निविष्टः	= अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ,	**एव**	= ही
च	= तथा	**वेद्यः**	= जाननेके योग्य हूँ[3] (तथा)
मत्तः	= मुझसे (ही)	**वेदान्तकृत्**	= वेदान्तका कर्ता
स्मृतिः	= स्मृति,	**च**	= और
ज्ञानम्	= ज्ञान	**वेदवित्**	= वेदोंको जाननेवाला (भी)
च	= और	**अहम्**	= मैं
अपोहनम्	= अपोहन[2]	**एव**	= ही (हूँ)।
(भवति)	= होता है		
च	= और		

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते॥ १६॥

तथा हे अर्जुन!—

लोके	= इस संसारमें	**सर्वाणि**	= सम्पूर्ण
क्षरः	= नाशवान्	**भूतानि**	= भूतप्राणियोंके शरीर (तो)
च	= और		
अक्षरः	= अविनाशी	**क्षरः**	= नाशवान्
एव	= भी—	**च**	= और
इमौ	= ये	**कूटस्थः**	= जीवात्मा
द्वौ	= दो प्रकारके*	**अक्षरः**	= अविनाशी
पुरुषौ	= पुरुष हैं।(इनमें)	**उच्यते**	= कहा जाता है।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः ॥ १७ ॥

तथा इन दोनोंसे—

उत्तमः	= उत्तम	**बिभर्ति**	= सबका धारण-पोषण करता है (एवं)
पुरुषः	= पुरुष		
तु	= तो	**अव्ययः**	= अविनाशी,
अन्यः	= अन्य ही है,	**ईश्वरः**	= परमेश्वर (और)
यः	= जो	**परमात्मा**	= परमात्मा
लोकत्रयम्	= तीनों लोकोंमें	**इति**	= इस प्रकार
आविश्य	= प्रवेश करके	**उदाहृतः**	= कहा गया है।

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,
अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

यस्मात्	= क्योंकि	**उत्तमः**	= उत्तम हूँ,
अहम्	= मैं	**अतः**	= इसलिये
क्षरम्	= नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्रसे (तो सर्वथा)	**लोके**	= लोकमें
		च	= और
अतीतः	= अतीत हूँ	**वेदे**	= वेदमें (भी)
च	= और		
अक्षरात्	= अविनाशी जीवात्मासे	**पुरुषोत्तमः**	= पुरुषोत्तम नामसे
		प्रथितः	= प्रसिद्ध
अपि	= भी	**अस्मि**	= हूँ।

यः, माम्, एवम्, असम्मूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्,
सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत॥ १९॥

भारत	= हे भारत!	**सः**	= वह
यः	= जो	**सर्ववित्**	= सर्वज्ञ पुरुष
असम्मूढः	= ज्ञानी पुरुष	**सर्वभावेन**	= सब प्रकारसे निरन्तर
माम्	= मुझको		
एवम्	= इस प्रकार (तत्त्वसे)	**माम्**	= मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही
पुरुषोत्तमम्	= पुरुषोत्तम		
जानाति	= जानता है,	**भजति**	= भजता है।

[उपर्युक्त गुह्यतम विषयके ज्ञानकी महिमा।]

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,
एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत॥ २०॥

अनघ	= हे निष्पाप	**उक्तम्**	= कहा गया,
भारत	= अर्जुन!	**एतत्**	= इसको
इति	= इस प्रकार	**बुद्ध्वा**	= तत्त्वसे जानकर (मनुष्य)
इदम्	= यह		
गुह्यतमम्	= अति रहस्ययुक्त गोपनीय	**बुद्धिमान्**	= ज्ञानवान्
		च	= और
शास्त्रम्	= शास्त्र	**कृतकृत्यः**	= कृतार्थ
मया	= मेरे द्वारा	**स्यात्**	= हो जाता है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 16 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः,
दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम्॥ १॥

उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन! दैवी सम्पदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी सम्पदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ, उनमेंसे—

अभयम् = भयका सर्वथा अभाव,
सत्त्वसंशुद्धिः = अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता,
ज्ञानयोगव्यवस्थितिः = तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति[१]
च = और
दानम् = सात्त्विकदान[२],
दमः = इन्द्रियोंका दमन,
यज्ञः = भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण (एवं)
स्वाध्यायः = वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन (तथा) भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन,
तपः = स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहना
च = और
आर्जवम् = शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तः-करणकी सरलता—

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्,
दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्॥ २॥

तथा—

अहिंसा = मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना,
सत्यम् = यथार्थ और प्रिय भाषण*
अक्रोधः = अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना,

त्यागः = कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग,
शान्तिः = अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव,
अपैशुनम् = किसीकी भी निन्दादि न करना,
भूतेषु = सब भूतप्राणियोंमें
दया = हेतुरहित दया,
अलोलुप्त्वम् = इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना,
मार्दवम् = कोमलता,
ह्रीः = लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा (और)
अचापलम् = व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव—

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता,
भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत ॥ ३ ॥

तथा—

तेजः = तेज[1]
क्षमा = क्षमा,
धृतिः = धैर्य,
शौचम् = बाहरकी शुद्धि[2] (एवं)
अद्रोहः = किसीमें भी शत्रुभावका न होना (और)
नातिमानिता = अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—(ये सब तो)
भारत = हे अर्जुन!
दैवीम्, सम्पदम् = दैवी सम्पदाको
अभिजातस्य = लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके (लक्षण)
भवन्ति = हैं।

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम् ॥ ४ ॥

और—

पार्थ = हे पार्थ!
दम्भः = दम्भ,
दर्पः = घमण्ड
च = और
अभिमानः = अभिमान
च = तथा
क्रोधः = क्रोध,
पारुष्यम् = कठोरता

च	= और	**सम्पदम्**	= सम्पदाको
अज्ञानम्	= अज्ञान		
एव	= भी—(ये सब)	**अभिजातस्य**	= लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके (लक्षण हैं)।
आसुरीम्	= आसुरी		

दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव॥ ५॥

उन दोनों प्रकारकी सम्पदाओंमें—

दैवी, सम्पत्	= दैवी सम्पदा	**पाण्डव**	= हे अर्जुन! (तू)
विमोक्षाय	= मुक्तिके लिये (और)	**मा, शुचः**	= शोक मत कर;
		(यतः)	= क्योंकि (तू)
आसुरी	= आसुरी सम्पदा		
निबन्धाय	= बाँधनेके लिये	**दैवीम्, सम्पदम्**	= दैवी सम्पदाको
मता	= मानी गयी है।	**अभिजातः**	= लेकर उत्पन्न हुआ
(अतः)	= इसलिये	**असि**	= है।

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च,
दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु॥ ६॥

और—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**दैवः**	= दैवी-प्रकृतिवाला (तो)
अस्मिन्	= इस		
लोके	= लोकमें	**विस्तरशः**	= विस्तारपूर्वक
भूतसर्गौ	= भूतोंकी सृष्टि यानी मनुष्यसमुदाय	**प्रोक्तः**	= कहा गया, (अब तू)
द्वौ एव	= दो ही प्रकारका है, (एक तो)	**आसुरम्**	= आसुरी-प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदायको भी विस्तारपूर्वक
दैवः	= दैवी-प्रकृतिवाला		
च	= और (दूसरा)	**मे**	= मुझसे
आसुरः	= आसुरी-प्रकृतिवाला (उनमेंसे)	**शृणु**	= सुन।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते ॥ ७ ॥

आसुराः	= आसुर-स्वभाववाले	**न**	= न (तो)
जनाः	= मनुष्य	**शौचम्**	= बाहर-भीतरकी शुद्धि है,
प्रवृत्तिम्	= प्रवृत्ति		
च	= और	**न**	= न
निवृत्तिम्	= निवृत्ति— (इन दोनोंको)	**आचारः**	= श्रेष्ठ आचरण है
		च	= और
च	= भी	**न**	= न
न	= नहीं	**सत्यम्**	= सत्यभाषण
विदुः	= जानते। (इसलिये)	**अपि**	= ही
तेषु	= उनमें	**विद्यते**	= है।

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्,
अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

ते	= वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य	**अपरस्परसम्भूतम्**	= अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, (अतएव)
आहुः	= कहा करते हैं (कि)		
जगत्	= जगत्		
अप्रतिष्ठम्	= आश्रयरहित,	**कामहैतुकम् (एव)**	= केवल काम ही इसका कारण है।
असत्यम्	= सर्वथा असत्य (और)	**अन्यत्**	= इसके सिवा (और)
अनीश्वरम्	= बिना ईश्वरके,	**किम्**	= क्या है?

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः,
प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः ॥ ९ ॥

एताम्	= इस	**अहिताः**	= सबका अपकार करनेवाले
दृष्टिम्	= मिथ्या ज्ञानको		
अवष्टभ्य	= अवलम्बन करके—	**उग्रकर्माणः**	= क्रूरकर्मी मनुष्य (केवल)
नष्टात्मानः	= जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है (तथा)	**जगतः**	= जगत्के
अल्पबुद्धयः	= जिनकी बुद्धि मन्द है (वे)	**क्षयाय**	= नाशके लिये ही
		प्रभवन्ति	= समर्थ होते हैं।

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,
मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः ॥ १० ॥

दम्भमान-मदान्विताः	= दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य	**असद्ग्राहान्**	= मिथ्या सिद्धान्तोंको
दुष्पूरम्	= किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली	**गृहीत्वा**	= ग्रहण करके (और)
कामम्	= कामनाओंका	**अशुचिव्रताः**	= भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके (संसारमें)
आश्रित्य	= आश्रय लेकर		
मोहात्	= अज्ञानसे	**प्रवर्तन्ते**	= विचरते हैं।

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः,
कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः ॥ ११ ॥

प्रलयान्ताम्	= मृत्युपर्यन्त रहनेवाली	**कामोपभोगपरमाः**	= विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले
अपरिमेयाम्	= असंख्य	**च**	= और
		एतावत्	= 'इतना ही सुख है'
चिन्ताम्	= चिन्ताओंका	**इति**	= इस प्रकार
उपाश्रिताः	= आश्रय लेनेवाले,	**निश्चिताः**	= माननेवाले होते हैं।

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः,
ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥

आशापाशशतैः	= आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे	**कामभोगार्थम्**	= विषय-भोगोंके लिये
		अन्यायेन	= अन्यायपूर्वक
बद्धाः	= बँधे हुए मनुष्य	**अर्थसञ्चयान्**	= धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी
कामक्रोधपरायणाः	= काम-क्रोधके परायण होकर	**ईहन्ते**	= चेष्टा करते रहते हैं।

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्,
इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम् ॥ १३ ॥

और वे सोचा करते हैं कि—

मया	= मैंने	**मे**	= मेरे पास
अद्य	= आज	**इदम्**	= यह (इतना)
इदम्	= यह	**धनम्**	= धन
लब्धम्	= प्राप्त कर लिया है (और अब)	**अस्ति**	= है (और)
		पुनः	= फिर
इमम्	= इस	**अपि**	= भी
मनोरथम्	= मनोरथको	**इदम्**	= यह
प्राप्स्ये	= प्राप्त कर लूँगा।	**भविष्यति**	= हो जायगा।

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि,
ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी ॥ १४ ॥

तथा—

असौ	= वह	**अहम्**	= मैं
शत्रुः	= शत्रु	**ईश्वरः**	= ईश्वर हूँ,
मया	= मेरे द्वारा	**भोगी**	= ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ।
हतः	= मारा गया	**अहम्**	= मैं
च	= और (उन)	**सिद्धः**	= सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ (और)
अपरान्	= दूसरे शत्रुओंको		
अपि	= भी		
अहम्	= मैं	**बलवान्**	= बलवान् (तथा)
हनिष्ये	= मार डालूँगा।	**सुखी**	= सुखी हूँ।

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया,
यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः,
प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ ॥ १६ ॥

तथा मैं—

आढ्यः	= बड़ा धनी (और)	**अस्ति**	= है? (मैं)
अभिजनवान्	= बड़े कुटुम्बवाला	**यक्ष्ये**	= यज्ञ करूँगा,
अस्मि	= हूँ।	**दास्यामि**	= दान दूँगा (और)
मया	= मेरे	**मोदिष्ये**	= आमोद-प्रमोद करूँगा।
सदृशः	= समान		
अन्यः	= दूसरा	**इति**	= इस प्रकार
कः	= कौन		

अज्ञानविमोहिताः	= अज्ञानसे मोहित रहनेवाले (तथा)
अनेकचित्तविभ्रान्ताः	= अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले
मोहजालसमावृताः	= मोहरूप जालसे समावृत (और)
कामभोगेषु	= विषयभोगोंमें
प्रसक्ताः	= अत्यन्त आसक्त (आसुरलोग)
अशुचौ	= महान् अपवित्र
नरके	= नरकमें
पतन्ति	= गिरते हैं।

आत्मसम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्॥ १७॥

तथा—

ते	= वे
आत्मसम्भाविताः	= अपने-आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले
स्तब्धाः	= घमण्डी पुरुष
धनमानमदान्विताः	= धन और मानके मदसे युक्त होकर
नामयज्ञैः	= केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा
दम्भेन	= पाखण्डसे
अविधिपूर्वकम्	= शास्त्रविधिरहित
यजन्ते	= यजन करते हैं।

अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः॥ १८॥

तथा वे—

अहङ्कारम्	= अहंकार,
बलम्	= बल,
दर्पम्	= घमण्ड,
कामम्	= कामना, (और)
क्रोधम्	= क्रोधादिके
संश्रिताः	= परायण
च	= और
अभ्यसूयकाः	= दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष
आत्मपरदेहेषु	= अपने और दूसरोंके शरीरमें (स्थित)
माम्	= मुझ अन्तर्यामीसे
प्रद्विषन्तः	= द्वेष करनेवाले होते हैं।

तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु॥ १९॥

ऐसे—

तान्	= उन	**संसारेषु**	= संसारमें
द्विषतः	= द्वेष करनेवाले	**अजस्रम्**	= बार-बार
अशुभान्	= पापाचारी (और)	**आसुरीषु**	= आसुरी
क्रूरान्	= क्रूरकर्मी	**योनिषु**	= योनियोंमें
नराधमान्	= नराधमोंको	**एव**	= ही
अहम्	= मैं	**क्षिपामि**	= डालता हूँ।

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम्, अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्॥ २०॥

इसलिये—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**योनिम्**	= योनिको
मूढाः	= वे मूढ	**आपन्नाः**	= प्राप्त होते हैं, (फिर)
माम्	= मुझको	**ततः**	= उससे भी
अप्राप्य	= न प्राप्त होकर	**अधमाम्**	= अति नीच
एव*	= ही	**गतिम्**	= गतिको
जन्मनि	= जन्म-	**यान्ति**	= प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।
जन्मनि	= जन्ममें		
आसुरीम्	= आसुरी		

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्॥ २१॥

और हे अर्जुन!—

कामः	= काम	**आत्मनः**	= आत्माका
क्रोधः	= क्रोध	**नाशनम्**	= नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं।
तथा	= तथा		
लोभः	= लोभ—		
इदम्	= ये	**तस्मात्**	= अतएव
त्रिविधम्	= तीन प्रकारके	**एतत्**	= इन
नरकस्य	= नरकके	**त्रयम्**	= तीनोंको
द्वारम्	= द्वार[1]	**त्यजेत्**	= त्याग देना चाहिये।

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः,
आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्, ॥ २२ ॥

क्योंकि—

कौन्तेय	= हे अर्जुन!	**आचरति**	= आचरण करता है[३]
एतैः	= इन	**ततः**	= इससे (वह)
त्रिभिः	= तीनों	**पराम्**	= परम
तमोद्वारैः	= नरकके द्वारोंसे	**गतिम्**	= गतिको
विमुक्तः	= मुक्त[२]		
नरः	= पुरुष	**याति**	= जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।
आत्मनः	= अपने		
श्रेयः	= कल्याणका		

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम् ॥ २३ ॥

और—

यः	= जो पुरुष	**सिद्धिम्**	= सिद्धिको
शास्त्रविधिम्	= शास्त्रविधिको	**अवाप्नोति**	= प्राप्त होता है,
उत्सृज्य	= त्यागकर	**न**	= न
कामकारतः	= अपनी इच्छासे मनमाना	**पराम्**	= परम
वर्तते	= आचरण करता है,	**गतिम्**	= गतिको (और)
सः	= वह	**न**	= न
न	= न	**सुखम्**	= सुखको ही।

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि ॥ २४ ॥

तस्मात्	= इससे	**प्रमाणम्**	= प्रमाण है।
ते	= तेरे लिये	**(एवम्)**	= ऐसा
इह	= इस	**ज्ञात्वा**	= जानकर (तू)
कार्याकार्यव्यवस्थितौ	= कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें	**शास्त्रविधानोक्तम्**	= शास्त्रविधिसे नियत
		कर्म	= कर्म (ही)
		कर्तुम्	= करने
शास्त्रम्	= शास्त्र (ही)	**अर्हसि**	= योग्य है।

श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 17 के श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले—

कृष्ण	= हे कृष्ण!	**तेषाम्**	= उनकी
ये	= जो मनुष्य	**निष्ठा**	= स्थिति
शास्त्रविधिम्	= शास्त्रविधिको	**तु**	= फिर
उत्सृज्य	= त्यागकर	**का**	= कौन-सी है?
श्रद्धया	= श्रद्धासे	**सत्त्वम्**	= सात्त्विकी है
अन्विताः	= युक्त हुए	**आहो**	= अथवा
यजन्ते	= देवादिका पूजन करते हैं,	**रजः**	= राजसी (किंवा)
		तमः	= तामसी?

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा,
सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले—हे अर्जुन!—

देहिनाम्	= मनुष्योंकी	**च**	= तथा
सा	= वह (शास्त्रीय संस्कारोंसे रहित केवल)	**तामसी**	= तामसी—
		इति	= ऐसे
		त्रिविधा	= तीनों प्रकारकी
स्वभावजा	= स्वभावसे उत्पन्न*	**एव**	= ही
श्रद्धा	= श्रद्धा	**भवति**	= होती है।
सात्त्विकी	= सात्त्विकी	**ताम्**	= उसको (तू)
च	= और	**(मत्तः)**	= मुझसे
राजसी	= राजसी	**शृणु**	= सुन।

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत,
श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥ ३ ॥

भारत	= हे भारत!	**श्रद्धामयः**	= श्रद्धामय है,
सर्वस्य	= सभी मनुष्योंकी	**(अतः)**	= इसलिये
श्रद्धा	= श्रद्धा	**यः**	= जो पुरुष
सत्त्वानुरूपा	= उनके अन्तःकरणके अनुरूप	**यच्छ्रद्धः**	= जैसी श्रद्धावाला है,
भवति	= होती है।	**सः**	= वह स्वयं
अयम्	= यह	**एव**	= भी
पुरुषः	= पुरुष	**सः**	= वही है।

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः,
प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः ॥ ४ ॥

उनमें—

सात्त्विकाः	= सात्त्विक पुरुष	**अन्ये**	= अन्य (जो)
देवान्	= देवोंको	**तामसाः**	= तामस
यजन्ते	= पूजते हैं,	**जनाः**	= मनुष्य हैं, (वे)
राजसाः	= राजस पुरुष	**प्रेतान्**	= प्रेत
यक्षरक्षांसि	= यक्ष और राक्षसोंको (तथा)	**च**	= और
		भूतगणान्	= भूतगणोंको
		यजन्ते	= पूजते हैं।

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः,
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

और हे अर्जुन!—

ये	= जो	**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः**	= दम्भ और अहंकारसे युक्त (एवं)
जनाः	= मनुष्य		
अशास्त्रविहितम्	= शास्त्रविधिसे रहित (केवल मनः-कल्पित)		
घोरम्	= घोर	**कामरागबलान्विताः**	= कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं—
तपः	= तपको		
तप्यन्ते	= तपते हैं (तथा)		

कर्शयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्,
च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्॥ ६॥

तथा जो—

शरीरस्थम्	= शरीररूपसे स्थित	**कर्शयन्तः**	= कृश करनेवाले हैं[2],
भूतग्रामम्	= भूत-समुदायको[1]	**तान्**	= उन
च	= और	**अचेतसः**	= अज्ञानियोंको (तू)
अन्तःशरीरस्थम्	= अन्तःकरणमें स्थित	**आसुरनिश्चयान्**	= आसुर-स्वभाववाले
माम्	= मुझ परमात्माको		
एव	= भी	**विद्धि**	= जान।

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः,
यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु॥ ७॥

और हे अर्जुन! जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है, वैसे ही—

आहारः	= भोजन	**तथा**	= वैसे ही
अपि	= भी	**यज्ञः**	= यज्ञ,
सर्वस्य	= सबको (अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार)	**तपः**	= तप (और)
		दानम्	= दान (भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं)
त्रिविधः	= तीन प्रकारका	**तेषाम्**	= उनके
प्रियः	= प्रिय	**इमम्**	= इस (पृथक्-पृथक्)
भवति	= होता है।	**भेदम्**	= भेदको (तू मुझसे)
तु	= और	**शृणु**	= सुन।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः,
रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः॥ ८॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः	= आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले,		(तथा)
		हृद्याः	= स्वभावसे ही मनको प्रिय—(ऐसे)
		आहाराः	= आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
रस्याः	= रसयुक्त,		
स्निग्धाः	= चिकने (और)	**सात्त्विकप्रियाः**	= सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।
स्थिराः	= स्थिर रहनेवाले*		

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

और—

कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्षविदाहिनः	= कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक (और)	**आहाराः**	= आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
दुःखशोक-आमयप्रदाः	= दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले	**राजसस्य**	= राजस पुरुषको
		इष्टाः	= प्रिय होते हैं।

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्, ॥ १० ॥

तथा—

यत्	= जो	**उच्छिष्टम्**	= उच्छिष्ट है
भोजनम्	= भोजन	**च**	= तथा (जो)
यातयामम्	= अधपका,	**अमेध्यम्**	= अपवित्र
गतरसम्	= रसरहित,	**अपि**	= भी है,
पूति	= दुर्गन्धयुक्त,	**(तत्)**	= वह भोजन
पर्युषितम्	= बासी	**तामसप्रियम्**	= तामस पुरुषको प्रिय होता है।
च	= और		

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते,
यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः ॥ ११ ॥

और हे अर्जुन!—

यः	= जो	**समाधाय**	= समाधान करके,
विधिदृष्टः	= शास्त्रविधिसे नियत,	**अफलाकाङ्क्षिभिः**	= फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा
यज्ञः	= यज्ञ	**इज्यते**	= किया जाता है,
यष्टव्यम्, एव	= करना ही कर्तव्य है—	**सः**	= वह
इति	= इस प्रकार	**सात्त्विकः**	= सात्त्विक है।
मनः	= मनको		

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्,
इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम्॥ १२॥

तु	= परंतु	**अभिसन्धाय**	= दृष्टिमें रखकर
भरतश्रेष्ठ	= हे अर्जुन!	**यत्**	= जो यज्ञ
दम्भार्थम्, एव	= केवल दम्भाचरण-के ही लिये	**इज्यते**	= किया जाता है,
		तम्	= उस
च	= अथवा	**यज्ञम्**	= यज्ञको (तू)
फलम्	= फलको	**राजसम्**	= राजस
अपि	= भी	**विद्धि**	= जान।

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्,
श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते॥ १३॥

विधिहीनम्	= शास्त्रविधिसे हीन,	**श्रद्धाविरहितम्**	= बिना श्रद्धाके किये जानेवाले
असृष्टान्नम्	= अन्नदानसे रहित,		
मन्त्रहीनम्	= बिना मन्त्रोंके,	**यज्ञम्**	= यज्ञको
अदक्षिणम्	= बिना दक्षिणाके (और)	**तामसम्**	= तामस यज्ञ
		परिचक्षते	= कहते हैं।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्,
ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते॥ १४॥

देवद्विज-गुरुप्राज्ञपूजनम्	= देवता, ब्राह्मण, गुरु[1] और ज्ञानीजनोंका पूजन,	**ब्रह्मचर्यम्**	= ब्रह्मचर्य
		च	= और
		अहिंसा	= अहिंसा—(यह)
		शारीरम्	= शरीरसम्बन्धी
शौचम्	= पवित्रता,	**तपः**	= तप
आर्जवम्	= सरलता,	**उच्यते**	= कहा जाता है।

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते॥ १५॥

यत्	= जो	**वाक्यम्**	= भाषण है[2]
अनुद्वेगकरम्	= उद्वेग न करनेवाला,	**च**	= तथा (जो)
प्रियहितम्	= प्रिय और हितकारक	**स्वाध्याय-अभ्यसनम्**	= वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—
च	= एवं		
सत्यम्	= यथार्थ		

(तत्) एव = वही	**तपः** = तप
वाङ्मयम् = वाणीसम्बन्धी	**उच्यते** = कहा जाता है।

[मानसिक तपके लक्षण।]

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,
भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते ॥ १६ ॥

तथा—

मनःप्रसादः = मनकी प्रसन्नता,	**भावसंशुद्धिः** = अन्तःकरणके भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—
सौम्यत्वम् = शान्तभाव,	**इति** = इस प्रकार
मौनम् = भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव,	**एतत्** = यह
	मानसम् = मनसम्बन्धी
आत्मविनिग्रहः = मनका निग्रह (और)	**तपः** = तप
	उच्यते = कहा जाता है।

[सात्त्विक तपके लक्षण।]

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते ॥ १७ ॥

परंतु हे अर्जुन!—

अफलाकाङ्क्षिभिः = फलको न चाहनेवाले	**तप्तम्** = किये हुए
	तत् = उस (पूर्वोक्त)
युक्तैः = योगी	**त्रिविधम्** = तीन प्रकारके
नरैः = पुरुषोंद्वारा	**तपः** = तपको
परया = परम	**सात्त्विकम्** = सात्त्विक
श्रद्धया = श्रद्धासे	**परिचक्षते** = कहते हैं।

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम् ॥ १८ ॥

यत् = जो
तप: = तप
सत्कारमानपूजार्थम् = सत्कार, मान और पूजाके लिये (तथा)
च, एव = अन्य किसी स्वार्थके लिये भी स्वभावसे
(वा) = या
दम्भेन = पाखण्डसे
क्रियते = किया जाता है,
तत् = वह
अध्रुवम् = अनिश्चित* (एवं)
चलम् = क्षणिक फलवाला तप
इह = यहाँ
राजसम् = राजस
प्रोक्तम् = कहा गया है।

मूढग्राहेण, आत्मन:, यत्, पीडया, क्रियते, तप:,
परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥ १९ ॥

यत् = जो
तप: = तप
मूढग्राहेण = मूढतापूर्वक हठसे,
आत्मन: = मन, वाणी और शरीरकी
पीडया = पीड़ाके सहित
वा = अथवा
परस्य = दूसरेका
उत्सादनार्थम् = अनिष्ट करनेके लिये
क्रियते = किया जाता है—
तत् = वह तप
तामसम् = तामस
उदाहृतम् = कहा गया है।

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे,
देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम्॥ २० ॥

दातव्यम् = दान देना ही कर्तव्य है—
इति = ऐसे भावसे
यत् = जो
दानम् = दान
देशे = देश[१]
च = तथा
काले = काल[२]
च = और
पात्रे = पात्रके[३] प्राप्त होनेपर
अनुपकारिणे = उपकार न करनेवालेके प्रति
दीयते = दिया जाता है,
तत् = वह
दानम् = दान
सात्त्विकम् = सात्त्विक
स्मृतम् = कहा गया है।

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः,
दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम् ॥ २१ ॥

तु	= किंतु	**उद्दिश्य**	= दृष्टिमें रखकर[३]
यत्	= जो (दान)	**पुनः**	= फिर
परिक्लिष्टम्	= क्लेशपूर्वक[१]		
च	= तथा	**दीयते**	= दिया जाता है,
प्रत्युपकारार्थम्	= प्रत्युपकारके प्रयोजनसे[२]	**तत्**	= वह
		दानम्	= दान
वा	= अथवा	**राजसम्**	= राजस
फलम्	= फलको	**स्मृतम्**	= कहा गया है।

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते,
असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत्	= जो	**च**	= और
दानम्	= दान	**अपात्रेभ्यः**	= कुपात्रके प्रति[४]
असत्कृतम्	= बिना सत्कारके	**दीयते**	= दिया जाता है,
(वा)	= अथवा	**तत्**	= वह दान
अवज्ञातम्	= तिरस्कारपूर्वक	**तामसम्**	= तामस
अदेशकाले	= अयोग्य देश-कालमें	**उदाहृतम्**	= कहा गया है।

ॐ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः,
ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा ॥ २३ ॥

और हे अर्जुन!—

ॐ	= ॐ,	**तेन**	= उसीसे
तत्	= तत्,	**पुरा**	= सृष्टिके आदिकालमें
सत्	= सत्—		
इति	= ऐसे (यह)	**ब्राह्मणाः**	= ब्राह्मण
त्रिविधः	= तीन प्रकारका	**च**	= और
ब्रह्मणः	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका	**वेदाः**	= वेद
		च	= तथा
निर्देशः	= नाम	**यज्ञाः**	= यज्ञादि
स्मृतः	= कहा है;	**विहिताः**	= रचे गये।

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः,
प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

तस्मात्	= इसलिये	**सततम्**	= सदा
ब्रह्मवादिनाम्	= वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी	**ओम्**	= 'ॐ'
		इति	= इस (परमात्माके नामको)
विधानोक्ताः	= शास्त्रविधिसे नियत	**उदाहृत्य**	= उच्चारण करके (ही)
यज्ञदानतपःक्रियाः	= यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ	**प्रवर्तन्ते**	= आरम्भ होती हैं।

तत्, इति, अनभिसन्धाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः,
दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

और—

तत्	= तत् अर्थात् 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है,	**यज्ञतपःक्रियाः**	= यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ
		च	= तथा
		दानक्रियाः	= दानरूप क्रियाएँ
इति	= इस (भावसे)	**मोक्षकाङ्क्षिभिः**	= कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा
फलम्	= फलको		
अनभिसन्धाय	= न चाहकर		
विविधाः	= नाना प्रकारकी	**क्रियन्ते**	= की जाती हैं।

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते,
प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते ॥ २६ ॥

और—

सत्	= 'सत्'—	**साधुभावे**	= श्रेष्ठभावमें
इति	= इस प्रकार	**प्रयुज्यते**	= प्रयोग किया जाता है
एतत्	= यह (परमात्माका नाम)	**तथा**	= तथा
सद्भावे	= सत्यभावमें	**पार्थ**	= हे पार्थ!
च	= और	**प्रशस्ते**	= उत्तम

कर्मणि	= कर्ममें (भी)	**शब्दः**	= शब्दका
सत्	= 'सत्'	**युज्यते**	= प्रयोग किया जाता है।

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते॥ २७॥

च	= तथा	**इति**	= इस प्रकार
यज्ञे	= यज्ञ,	**उच्यते**	= कही जाती है
तपसि	= तप	**च**	= और
च	= और	**तदर्थीयम्**	= उस परमात्माके लिये किया हुआ
दाने	= दानमें	**कर्म**	= कर्म
(या)	= जो	**एव**	= निश्चयपूर्वक
स्थितिः	= स्थिति है,	**सत्**	= सत्—
(सा)	= वह	**इति**	= ऐसे
एव	= भी	**अभिधीयते**	= कहा जाता है।
सत्	= 'सत्'		

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्,
असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह॥ २८॥

और—

पार्थ	= हे अर्जुन!	**(तत्)**	= वह समस्त
अश्रद्धया	= बिना श्रद्धाके किया हुआ	**असत्**	= 'असत्'—
हुतम्	= हवन,	**इति**	= इस प्रकार
दत्तम्	= दिया हुआ दान (एवं)	**उच्यते**	= कहा जाता है; (इसलिये)
तप्तम्	= तपा हुआ	**तत्**	= वह
तपः	= तप	**नो**	= न (तो)
च	= और	**इह**	= इस लोकमें (लाभदायक है),
यत्	= जो (कुछ भी)	**च**	= और
कृतम्	= किया हुआ शुभ कर्म है—	**न**	= न
		प्रेत्य	= मरनेके बाद ही।

श्रीमद्भगवत गीता के अंतिम अध्याय 18 के कुछ श्लोकों की फोटोकॉपी :-

अथाष्टादशोऽध्यायः

सन्न्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्,
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन॥ १ ॥

इसके पश्चात् अर्जुन बोले—

महाबाहो	= हे महाबाहो!	**त्यागस्य**	= त्यागके
हृषीकेश	= हे अन्तर्यामिन्!	**तत्त्वम्**	= तत्त्वको
केशिनिषूदन	= हे वासुदेव! (मैं)	**पृथक्**	= पृथक्-पृथक्
सन्न्यासस्य	= संन्यास	**वेदितुम्**	= जानना
च	= और	**इच्छामि**	= चाहता हूँ।

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, सन्न्यासम्, कवयः, विदुः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! कितने ही—

कवयः	= पण्डितजन (तो)		(तथा दूसरे)
काम्यानाम्	= काम्य[1]	**विचक्षणाः**	= विचारकुशल पुरुष
कर्मणाम्	= कर्मोंके	**सर्वकर्मफलत्यागम्**	= सब कर्मोंके फलके त्यागको[2]
न्यासम्	= त्यागको		
सन्न्यासम्	= संन्यास	**त्यागम्**	= त्याग
विदुः	= समझते हैं	**प्राहुः**	= कहते हैं।

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः,
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे॥ ३ ॥

एके	= कई एक	**च**	= और
मनीषिणः	= विद्वान्	**अपरे**	= दूसरे विद्वान्
इति	= ऐसा	**इति**	= यह
प्राहुः	= कहते हैं (कि)	**(आहुः)**	= कहते हैं (कि)
कर्म	= कर्ममात्र		
दोषवत्	= दोषयुक्त हैं, (इसलिये)	**यज्ञदानतपःकर्म**	= यज्ञ, दान और तपरूप कर्म
त्याज्यम्	= त्यागनेके योग्य हैं	**न, त्याज्यम्**	= त्यागनेयोग्य नहीं हैं।

निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, सम्प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

पुरुषव्याघ्र	= हे पुरुषश्रेष्ठ	**निश्चयम्**	= निश्चय
भरतसत्तम	= अर्जुन!	**शृणु**	= सुन।
तत्र	= संन्यास और त्याग—इन दोनोंमेंसे पहले	**हि**	= क्योंकि
त्यागे	= त्यागके विषयमें (तू)	**त्यागः**	= त्याग (सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे)
मे	= मेरा	**त्रिविधः**	= तीन प्रकारका
		सम्प्रकीर्तितः	= कहा गया है।

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञदानतपःकर्म	= यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	**यज्ञः**	= यज्ञ,
		दानम्	= दान
न, त्याज्यम्	= त्याग करनेके योग्य नहीं है, (बल्कि)	**च**	= और
		तपः	= तप—(ये तीनों)
तत्	= वह (तो)	**एव**	= ही (कर्म)
एव	= अवश्य	**मनीषिणाम्**	= बुद्धिमान्* पुरुषोंको
कार्यम्	= कर्तव्य है; क्योंकि	**पावनानि**	= पवित्र करनेवाले हैं।

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम् ॥ ६ ॥

पार्थ	= हे पार्थ!	**फलानि**	= फलोंका
एतानि	= इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको	**त्यक्त्वा**	= त्याग करके (अवश्य)
तु	= तथा		
(अन्यानि)	= और	**कर्तव्यानि**	= करना चाहिये;
अपि	= भी	**इति**	= यह
कर्माणि	= सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको	**मे**	= मेरा
		निश्चितम्	= निश्चय किया हुआ
सङ्गम्	= आसक्ति	**उत्तमम्**	= उत्तम
च	= और	**मतम्**	= मत है।

नियतस्य, तु, सन्न्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

तु	= परंतु	**मोहात्**	= मोहके कारण
नियतस्य	= नियत*	**तस्य**	= उसका
कर्मणः	= कर्मका	**परित्यागः**	= त्याग कर देना
सन्न्यासः	= स्वरूपसे त्याग	**तामसः**	= तामस
न, उपपद्यते	= उचित नहीं है। (इसलिये)	**परिकीर्तितः**	= त्याग कहा गया है।

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत् ॥ ८ ॥

यत्	= जो (कुछ)		(कर्तव्य कर्मोंका)
कर्म	= कर्म है,	**त्यजेत्**	= त्याग कर दे, (तो)
(तत्)	= वह सब	**सः**	= वह (ऐसा)
दुःखम्, एव	= दुःखरूप ही है—	**राजसम्**	= राजस
इति	= ऐसा (समझकर यदि कोई)	**त्यागम्**	= त्याग
		कृत्वा	= करके
		त्यागफलम्	= त्यागके फलको
कायक्लेशभयात्	= शारीरिक क्लेशके भयसे	**एव**	= किसी प्रकार भी
		न, लभेत्	= नहीं पाता।

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन,
सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः ॥ ९ ॥

अर्जुन	= हे अर्जुन!	**फलम्**	= फलका
यत्	= जो	**त्यक्त्वा**	= त्याग करके
नियतम्	= शास्त्रविहित	**क्रियते**	= किया जाता है—
कर्म	= कर्म	**सः, एव**	= वही
कार्यम्	= करना कर्तव्य है—	**सात्त्विकः**	= सात्त्विक
इति, एव	= इसी भावसे	**त्यागः**	= त्याग
सङ्गम्	= आसक्ति	**मतः**	= माना गया है।
च	= और		

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,
त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

अकुशलम् = अकुशल
कर्म = कर्मसे (तो)
न, द्वेष्टि = द्वेष नहीं करता (और)
कुशले = कुशल कर्ममें
न, अनुषज्जते = आसक्त नहीं होता—(वह)
सत्त्वसमाविष्टः = शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष
छिन्नसंशयः = संशयरहित,
मेधावी = बुद्धिमान् (और)
त्यागी = सच्चा त्यागी है।

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः,
यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते ॥ ११ ॥

हि = क्योंकि
देहभृता = शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा
अशेषतः = सम्पूर्णतासे
कर्माणि = सब कर्मोंका
त्यक्तुम् = त्याग किया जाना
न, शक्यम् = शक्य नहीं है;
(तस्मात्) = इसलिये
यः = जो
कर्मफलत्यागी = कर्मफलका त्यागी है,
सः, तु = वही
त्यागी = त्यागी है—
इति = यह
अभिधीयते = कहा जाता है।

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ,
अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्,
तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

भरतर्षभ = हे भरतश्रेष्ठ!
इदानीम् = अब
त्रिविधम् = तीन प्रकारके
सुखम् = सुखको
तु = भी (तू)
मे = मुझसे
शृणु = सुन।
यत्र = जिस सुखमें (साधक मनुष्य)
अभ्यासात् = भजन, ध्यान और सेवा आदिके अभ्याससे
रमते = रमण करता है
च = और (जिससे)
दुःखान्तम् = दुःखोंके अन्तको

निगच्छति = प्राप्त हो जाता है—
यत् = जो (ऐसा सुख है),
तत् = वह
अग्रे = आरम्भकालमें (यद्यपि)
विषम् = विषके
इव = तुल्य प्रतीत होता है[1], (परंतु)
परिणामे = परिणाममें
अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य है;
(अतः) = इसलिये
तत् = वह
आत्मबुद्धि-प्रसादजम् = परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादजम् उत्पन्न होनेवाला
सुखम् = सुख
सात्त्विकम् = सात्त्विक
प्रोक्तम् = कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्,
परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम्॥ ३८॥

यत् = जो
सुखम् = सुख
विषयेन्द्रिय-संयोगात् = विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे
(भवति) = होता है,
तत् = वह
अग्रे = पहले—भोगकालमें
अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी
परिणामे = परिणाममें
विषम् = विषके[2]
इव = तुल्य है;
(अतः) = इसलिये
तत् = वह सुख
राजसम् = राजस
स्मृतम् = कहा गया है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परन्तप,
कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः॥ ४१॥

परन्तप = हे परन्तप!
ब्राह्मणक्षत्रिय-विशाम् = ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके
च = तथा
शूद्राणाम् = शूद्रोंके
कर्माणि = कर्म
स्वभावप्रभवैः = स्वभावसे उत्पन्न
गुणैः = गुणोंके द्वारा
प्रविभक्तानि = विभक्त किये गये हैं।

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च,
ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्॥ ४२॥

शमः	= अन्तःकरणका निग्रह करना;	आस्तिक्यम्	= वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना;
दमः	= इन्द्रियोंका दमन करना;	ज्ञानम्	= वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना
तपः	= धर्म पालनके लिये कष्ट सहना;	च	= और
शौचम्	= बाहर-भीतरसे शुद्ध* रहना;	विज्ञानम्	= परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना— (ये सब-के-सब)
क्षान्तिः	= दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना;	एव	= ही
आर्जवम्	= मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना;	ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्	= ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्,
दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम्॥ ४३ ॥

शौर्यम्	= शूर-वीरता,	दानम्	= दान देना
तेजः	= तेज,	च	= और
धृतिः	= धैर्य,	ईश्वरभावः	= स्वामिभाव*—(ये सब-के-सब ही)
दाक्ष्यम्	= चतुरता		
च	= और		
युद्धे	= युद्धमें	क्षात्रम्	= क्षत्रियके
अपि	= भी	स्वभावजम्	= स्वाभाविक
अपलायनम्	= न भागना,	कर्म	= कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्,
परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम्॥ ४४ ॥

कृषिगौरक्ष्य-वाणिज्यम्	= खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य-व्यवहार*(ये)	**परिचर्यात्मकम्**	= सब वर्णोंकी सेवा करना
		शूद्रस्य	= शूद्रका
		अपि	= भी
वैश्यकर्म, स्वभावजम्	= वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं। (तथा)	**स्वभावजम्**	= स्वाभाविक
		कर्म	= कर्म है।

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥ ४५ ॥

स्वे, स्वे	= अपने-अपने (स्वाभाविक)	**स्वकर्मनिरतः**	= अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य
कर्मणि	= कर्मोंमें		
अभिरतः	= तत्परतासे लगा हुआ	**यथा**	= जिस प्रकारसे कर्म करके
नरः	= मनुष्य	**सिद्धिम्**	= परम सिद्धिको
संसिद्धिम्	= भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको	**विन्दति**	= प्राप्त होता है,
		तत्	= उस विधिको (तू)
लभते	= प्राप्त हो जाता है।	**शृणु**	= सुन।

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिं, विन्दति, मानवः ॥ ४६ ॥

यतः	= जिस परमेश्वरसे	**तम्**	= उस परमेश्वरकी
भूतानाम्	= सम्पूर्ण प्राणियोंकी	**स्वकर्मणा**	= अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा
प्रवृत्तिः	= उत्पत्ति हुई है (और)		
येन	= जिससे	**अभ्यर्च्य**	= पूजा करके[२]
इदम्	= यह	**मानवः**	= मनुष्य
सर्वम्	= समस्त (जगत्)	**सिद्धिम्**	= परम सिद्धिको
ततम्	= व्याप्त है*,	**विन्दति**	= प्राप्त हो जाता है।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

स्वनुष्ठितात्	= अच्छी प्रकार आचरण किये हुए	**विगुणः**	= गुणरहित
		(अपि)	= भी
परधर्मात्	= दूसरेके धर्मसे	**स्वधर्मः**	= अपना धर्म

श्रेयान् = श्रेष्ठ है;
(यस्मात्) = क्योंकि
स्वभावनियतम् = स्वभावसे नियत किये हुए
कर्म = स्वधर्मरूप कर्मको
कुर्वन् = करता हुआ (मनुष्य)
किल्बिषम् = पापको
न = नहीं
आप्नोति = प्राप्त होता।

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्,
सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः ॥ ४८ ॥

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र!
सदोषम् = दोषयुक्त होनेपर
अपि = भी
सहजम् = सहज*
कर्म = कर्मको
न = नहीं
त्यजेत् = त्यागना चाहिये;
हि = क्योंकि
धूमेन = धूएँसे
अग्निः = अग्निकी
इव = भाँति
सर्वारम्भाः = सभी कर्म (किसी-न-किसी)
दोषेण = दोषसे
आवृताः = युक्त हैं।

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, सन्न्यासेन, अधिगच्छति ॥ ४९ ॥

सर्वत्र = सर्वत्र
असक्तबुद्धिः = आसक्तिरहित बुद्धिवाला,
विगतस्पृहः = स्पृहारहित (और)
जितात्मा = जीते हुए अन्तः-करणवाला पुरुष
सन्न्यासेन = सांख्ययोगके द्वारा
परमाम् = उस परम
नैष्कर्म्यसिद्धिम् = नैष्कर्म्य सिद्धिको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है।

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा ॥ ५० ॥

या = जो (कि)
ज्ञानस्य = ज्ञानयोगकी
परा = परा
निष्ठा = निष्ठा है,
सिद्धिम् = उस नैष्कर्म्यसिद्धिको
यथा = जिस प्रकारसे
प्राप्तः = प्राप्त होकर मनुष्य
ब्रह्म = ब्रह्मको
आप्नोति = प्राप्त होता है,
तथा = उस प्रकारको
कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र! (तू)
समासेन = संक्षेपमें
एव = ही
मे = मुझसे
निबोध = समझ।

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च ॥ ५१ ॥
विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः,
ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥
अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य, निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥ ५३ ॥

हे अर्जुन!—

विशुद्धया = विशुद्ध
बुद्ध्या = बुद्धिसे
युक्तः = युक्त (तथा)
लघ्वाशी = हलका, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला,
शब्दादीन् = शब्दादि
विषयान् = विषयोंका
त्यक्त्वा = त्याग करके
विविक्तसेवी = एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला,
धृत्या = सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा*
आत्मानम् = अन्तःकरण और इन्द्रियोंका
नियम्य = संयम करके
यतवाक्कायमानसः = मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला,
रागद्वेषौ = राग-द्वेषको
व्युदस्य = सर्वथा नष्ट करके
वैराग्यम् = भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका
समुपाश्रितः = आश्रय लेनेवाला
च = तथा
अहङ्कारम् = अहंकार
बलम् = बल,
दर्पम् = घमण्ड,
कामम् = काम,
क्रोधम् = क्रोध
च = और
परिग्रहम् = परिग्रहका
विमुच्य = त्याग करके
नित्यम् = निरन्तर
ध्यानयोगपरः = ध्यानयोगके परायण रहनेवाला,
निर्ममः = ममतारहित (और)
शान्तः = शान्तियुक्त पुरुष
ब्रह्मभूयाय = सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका
कल्पते = पात्र होता है।

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम्, ॥ ५४ ॥

फिर वह—

ब्रह्मभूतः	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित,	**न**	= न (किसीकी)
		काङ्क्षति	= आकांक्षा ही करता है। (ऐसा)
प्रसन्नात्मा	= प्रसन्न मनवाला योगी	**सर्वेषु**	= समस्त
		भूतेषु	= प्राणियोंमें
न	= न (तो किसीके लिये)	**समः**	= समभाववाला[1] योगी
		पराम्, मद्भक्तिम्	= मेरी पराभक्तिको[2]
शोचति	= शोक करता है (और)	**लभते**	= प्राप्त हो जाता है।

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः,
ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

और उस—

भक्त्या	= पराभक्तिके द्वारा (वह)	**तत्त्वतः, अभिजानाति**	= ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है, (तथा)
माम्	= मुझ परमात्माको	**ततः**	= उस भक्तिसे
(अहम्)	= मैं	**माम्**	= मुझको
		तत्त्वतः	= तत्त्वसे
यः	= जो हूँ	**ज्ञात्वा**	= जानकर
च	= और	**तदनन्तरम्**	= तत्काल ही
यावान्	= जितना	**विशते**	= मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।
अस्मि	= हूँ,		

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः,
मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्, ॥ ५६ ॥

और—

मद्व्यपाश्रयः	= मेरे परायण हुआ कर्मयोगी (तो)	**मत्प्रसादात्**	= मेरी कृपासे
		शाश्वतम्	= सनातन
सर्वकर्माणि	= सम्पूर्ण कर्मोंको		
सदा	= सदा	**अव्ययम्**	= अविनाशी
कुर्वाणः	= करता हुआ	**पदम्**	= परम पदको
अपि	= भी	**अवाप्नोति**	= प्राप्त हो जाता है।

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति,
भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया ॥ ६१ ॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन!		(उनके कर्मोंके अनुसार)
यन्त्रारूढानि	= शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए	**भ्रामयन्**	= भ्रमण कराता हुआ
सर्वभूतानि	= सम्पूर्ण प्राणियोंको	**सर्वभूतानाम्**	= सब प्राणियोंके
ईश्वरः	= अन्तर्यामी परमेश्वर	**हृद्देशे**	= हृदयमें
मायया	= अपनी मायासे	**तिष्ठति**	= स्थित है।

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत,
तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

इसलिये—

भारत	= हे भारत! (तू)	**तत्प्रसादात्**	= उस परमात्माकी कृपासे (ही तू)
सर्वभावेन	= सब प्रकारसे		
तम्	= उस परमेश्वरकी	**पराम्**	= परम
एव	= ही	**शान्तिम्**	= शान्तिको (तथा)
		शाश्वतम्	= सनातन
शरणम्	= शरणमें*	**स्थानम्**	= परम धामको
गच्छ	= जा।	**प्राप्स्यसि**	= प्राप्त होगा।

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया,
विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु ॥ ६३ ॥

इति	= इस प्रकार (यह)	**एतत्**	= इस रहस्ययुक्त ज्ञानको
गुह्यात्	= गोपनीयसे (भी)		
गुह्यतरम्	= अति गोपनीय	**अशेषेण**	= पूर्णतया
ज्ञानम्	= ज्ञान	**विमृश्य**	= भलीभाँति विचारकर,
मया	= मैंने	**यथा**	= जैसे
ते	= तुझसे	**इच्छसि**	= चाहता है
आख्यातम्	= कह दिया। (अब तू)	**तथा**	= वैसे ही
		कुरु	= कर।

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, शृणु, मे, परमम्, वचः,
इष्टः, असि, मे, दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम्॥ ६४॥

इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर न मिलनेके कारण श्रीकृष्णभगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन!—

सर्वगुह्यतमम्	= सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय	**इष्टः**	= प्रिय
		असि	= है,
मे	= मेरे	**ततः**	= इससे
परमम्	= परम रहस्ययुक्त	**इति**	= यह
वचः	= वचनको (तू)	**हितम्**	= परम हितकारक वचन (मैं)
भूयः	= फिर (भी)		
शृणु	= सुन। (तू)	**ते**	= तुझसे
मे	= मेरा	**वक्ष्यामि**	= कहूँगा।
दृढम्	= अतिशय		

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे॥ ६५॥

हे अर्जुन! तू—

मन्मनाः	= मुझमें मनवाला	**माम्**	= मुझे
भव	= हो,	**एव**	= ही
मद्भक्तः	= मेरा भक्त	**एष्यसि**	= प्राप्त होगा, (यह मैं)
(भव)	= बन,	**ते**	= तुझसे
मद्याजी	= मेरा पूजन करनेवाला	**सत्यम्**	= सत्य
		प्रतिजाने	= प्रतिज्ञा करता हूँ,
(भव)	= हो (और)	**(यतः)**	= क्योंकि (तू)
माम्	= मुझको	**मे**	= मेरा
नमस्कुरु	= प्रणाम कर।	**प्रियः**	= अत्यन्त प्रिय
(एवम्)	= ऐसा करनेसे (तू)	**असि**	= है।

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः ॥ ६६ ॥

इसलिये—

सर्वधर्मान्	= सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको (मुझमें)	**शरणम्**	= शरणमें[१]
		व्रज	= आ जा।
		अहम्	= मैं
		त्वा	= तुझे
परित्यज्य	= त्यागकर (तू केवल)	**सर्वपापेभ्यः**	= सम्पूर्ण पापोंसे
एकम्	= एक	**मोक्षयिष्यामि**	= मुक्त कर दूँगा, (तू)
माम्	= मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही	**मा, शुचः**	= शोक मत कर।

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः ॥ ७० ॥

यः	= जो पुरुष	**च**	= भी
इमम्	= इस	**अहम्**	= मैं
धर्म्यम्	= धर्ममय	**ज्ञानयज्ञेन**	= ज्ञानयज्ञसे*
आवयोः	= हम दोनोंके	**इष्टः**	= पूजित
संवादम्	= संवादरूप गीताशास्त्रको	**स्याम्**	= होऊँगा—
		इति	= ऐसा
अध्येष्यते	= पढ़ेगा,	**मे**	= मेरा
तेन	= उसके द्वारा	**मतिः**	= मत है।

पाठकजन देखें! गीता अध्याय 18 श्लोक 70 में ''इष्टः'' शब्द है जिसका अर्थ ''पूजित'' यानि ''पूज्य'' किया है। श्लोक 64 में भी ''इष्टः'' शब्द है। यदि उसका अर्थ ''पूज्य देव'' यानि ''इष्ट देव'' कर दिया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि गीता ज्ञान दाता का इष्ट देव भी परम अक्षर ब्रह्म है।